

Impact Factor (IIFS) : 9.375

ISSN 2231-1351



PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

July 2026

Volume: 15

Issue: 7

यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित
UGC Approved Journal No. 49359 (Old)
www.muditeducation.com/padchinha

Impact Factor (IIFS): 9.375
UGC Approved Journal No. 49359 (Old)

ISSN 2231-1351
यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

July 2026 Volume: 15 Issue: 7

EDITOR

DR. AJAY PARMAR

B-30/239 Nagavan, Lanka, Varanasi - 221005

Co-EDITOR

DR. PANKAJ KUMAR SINGH

Mudit Shiksha Sanstha, Trimurti Nagar

Wardha (Maharashtra) PIN Code - 442001

Contact: 9823696685

E-mail: padchinha@muditeducation.com

Note:

- The views expressed in the journal "Padchinha" are not necessarily the views of peer reviewing board or publisher. Neither any member of the peer reviewing board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings.
- All disputes are subject to Varanasi jurisdiction only.

www.muditeducation.com/padchinha

संपादक-मंडल/ रेफ़रीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह

निदेशक

अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005**प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी**पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001**प्रो. मनोज कुमार राय**प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001**डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा**सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401**डॉ. अनिल कुमार**वरीय सहायक प्राचार्य, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, पश्चिमी परिसर
पी.जी. सेंटर सहरसा, बिहार. पिन : 852201**डॉ. रणजीत कुमार**सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहूरल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन - 800001**डॉ. स्वीटी कुमारी**सहायक आचार्य, प्राणिविज्ञान विभाग
श्री विश्वनाथ पी.जी. कॉलेज, कलानसुल्तानपुर
उत्तर प्रदेश. पिन - 228101**डॉ. प्रदीप त्रिपाठी**सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक. पिन - 737102**प्रो. अमरेन्द्र त्रिपाठी**प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन - 211002**डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय**सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005**डॉ. निमिषा त्रिपाठी**असिस्टेंट प्रोफेसर-सह-अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची**डॉ. राम मनोहर मिश्र**असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
अकबरपुर महाविद्यालय, अकबरपुर
कानपुर देहात (उ.प्र.) पिन : 209101**रवीन्द्र पाण्डेय**हिंदी विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उ. प्र.) पिन - 273009**सलाहकार समिति****डॉ. राजीव रंजन गिरि**एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007**डॉ. रवेन्द्र राजपूत**एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग
श्री वाष्णोय महाविद्यालय, अलीगढ़
उत्तर प्रदेश. पिन - 202001**डॉ. निशीथ राय**सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या
आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

पदचिन्ह PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

जुलाई (July) 2026 वर्ष (Vol.): 15 अंक (Issue): 7

अनुक्रम

संपादकीय	पृष्ठ संख्या
➤ डिजिटल प्लेटफार्म आधारित श्रमिकों के जीवन और कार्य दशाओं का अध्ययन _डॉ. विघनेश्वर सिंह	01-07
➤ दलित चेतना और सामाजिक परिवर्तन : एक ऐतिहासिक अध्ययन _संदीप कुमार	08-12
➤ सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका : सारण जिले का अध्ययन _Dr. Dilip Kumar Manjhi	13-20
➤ 'जींदे जमदूत' लघु नाटक : इक मूल्यांकन _अजय सिंह	21-31
➤ Organisational Product Preference and Knowledge Intermediation in Bank-Led Mutual Fund Distribution Evidence from India's Financial Services Sector _Arnav Bansal _Dr. O.P.B Shukla	32-46
➤ From Silence to Selfhood: A Critical Study of Female Empowerment in the Selected Novels of Preeti Shenoy _Uday Shankar Raj	47-61
➤ आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय चेतना का विकास : एक ऐतिहासिक विश्लेषण _कुणाल कुमार सिंह _प्रो. (डॉ.) सैय्यद रजा	62-71
➤ भारतीय ज्ञानमीमांसा के विशेष सन्दर्भ में आयुर्वेदशास्त्रोक्त तन्त्रयुक्ति का स्वरूप एवं महत्त्व _डॉ. निमिषा कुमारी	72-79
➤ भविष्य की शिक्षा का पुनर्निर्माण : वैश्विक अपेक्षाएँ एवं समकालीन विमर्श _डॉ. स्मिता सिंह	80-83
➤ From Iqta to Jagir: Continuity and Change in the Military Organization of the Delhi Sultanate and the Mughal Empire _Naveen	84-90
➤ मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री जीवन : अशिक्षा, पुरुष वर्चस्व और सामाजिक यथार्थ का अध्ययन _डॉ. वर्षा वर्मा _रीना राय	91-95
➤ नासिरा शर्मा के कथा-साहित्य में चित्रित विविध समस्याएँ _कल्पना नरसिंग फराटे _प्रो. (डॉ.) प्रमोद भागचंद पडवळ	96-101
➤ डिजिटल वित्तीय समावेशन का छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन पर प्रभाव : छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के संदर्भ में एक अनुभवजन्य अध्ययन _सिद्धार्थ जैन _टाकेश्वर साहू	102-107
➤ भारतेन्दु युगीन निबंधों में नवजागरण एवं मौलिक राष्ट्रबोध का विस्तार _सर्वानन्द साहा	108-111
➤ डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका और भारतीय संस्कृति पर प्रभाव _Aditya Kumar _Ranjeet Kumar Rai _Dr. Bala Lakhendra	112-118
➤ हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त कश्मीरी निर्वासन की त्रासदी _सुप्रिया कुमारी _डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव	119-122

पदचिन्ह PADCHINHA*A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal***जुलाई (July) 2026 वर्ष (Vol.): 15 अंक (Issue): 7**

- दलित साहित्य में अभिव्यक्त हाशिये का समाज और मीडिया की भूमिका **_शालिनी सागर** 123-129
- लखनऊ नगर की झुग्गी बस्तियों की लड़कियों के स्वास्थ्य और शिक्षा पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव **_डॉ. स्नेह लता यादव** 130-135
- Rural-Urban Labour Migration and Informal Waste Work: A Study of Environmental Injustice and Livelihood Vulnerability in Delhi-NCR **_RAHUL** 136-149
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भारतीय भाषाओं का संरक्षण एवं संवर्धन **_डॉ. नवनीत कुमार** 150-155
- गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि और भारतीय ज्ञान परंपरा **_डॉ. आशुतोष कुमार शुक्ल** 156-161
- From Leadership to Classroom Practice: Examining the Role of School Principals in Supporting Teachers for Inclusive Education **_Shri Narendra Khichi _Shri Radhey Shyam** 162-174
- हिन्दी भाषा और एआई : अवसर, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ **_डॉ. गेलजी भाटिया** 175-179
- अम्बेडकर के महिला संबंधी विचार : एक अध्ययन **_डॉ. चन्द्र किशोर कौशल** 180-184
- हिंदी-अंग्रेजी मशीनी अनुवाद में संदिग्धार्थकता का नियम-आधारित विसंदिग्धीकरण **_विजय करन** 185-190
- हिन्दी सन्त काव्य परंपरा : एक अनुशीलन **_डॉ. किरण कुमारी** 191-196
- चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा और भारत की रणनीतिक और विदेश नीति : संप्रभुता, सुरक्षा ढांचा और क्षेत्रीय शक्ति संतुलन **_प्रो. आशा राणा _सत्येंद्र कुमार** 197-202
- मिथिलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श **_अल्मा ग्रेस तिरके _डॉ. देशबंधु तिवारी** 203-205
- सामाजिक न्याय, शिक्षा और स्वतंत्रता संग्राम में ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस की भूमिका : बिहार के विशेष संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन (1920ई.-1947ई.) **_मो. शमीम** 206-211
- शमशेर बहादुर सिंह के गद्य का स्वरूप और वैशिष्ट्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन **_भानप्रताप साहू _डॉ. देशबंधु तिवारी** 212-216
- अकादमिक सामंतवाद और हाशिए का समाज : 'निष्कासन' उपन्यास में निहित सत्ता संरचना का आलोचनात्मक अध्ययन **_डॉ. शशिकान्त यादव** 217-221
- पंचायती राज से संसद तक महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व का विस्तार : नारी शक्ति वंदन अधिनियम के संदर्भ में सशक्तिकरण, प्रतिनिधित्व और लोकतांत्रिक समावेशन का विश्लेषण **_दिलीप कुमार** 222-228
- NOTES FOR AUTHORS

संपादकीय

समय निरंतर परिवर्तनशील है। सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तन हमारे जीवन और चिंतन के स्वरूप को निरंतर प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे समय में किसी भी शोधपरक एवं साहित्यिक पत्रिका का दायित्व केवल नवीन सामग्री को प्रकाशित करना नहीं, बल्कि बदलते हुए समय को समझने, उसके प्रश्नों को पहचानने और उनके विविध पक्षों पर सार्थक विमर्श को सामने लाने का भी है। 'पदचिन्ह' इसी उद्देश्य के साथ ज्ञान, विचार और सृजन के बीच एक सार्थक सेतु बनने का निरंतर प्रयास कर रही है।

वर्तमान समय में ज्ञान की सीमाएँ तेजी से विस्तृत हो रही हैं। साहित्य अब केवल सौंदर्यबोध और अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि वह सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक स्मृति, मानवीय संवेदना और परिवर्तनशील जीवन-मूल्यों को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम भी है। इसी प्रकार शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना प्रदान करना नहीं, बल्कि विवेकशील, संवेदनशील और उत्तरदायी नागरिक का निर्माण करना है। इसलिए साहित्य, समाज, शिक्षा, संस्कृति और समकालीन चिंतन के बीच अंतर्संबंधों को समझना आज पहले से अधिक आवश्यक हो गया है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा की दृष्टि से भी वर्तमान समय अनेक नए प्रश्न हमारे सामने रखता है। हमारी परंपरा में ज्ञान को जीवन से पृथक नहीं माना गया। दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान, शिक्षा और समाज-व्यवस्था के विभिन्न आयामों में परस्पर संवाद की समृद्ध परंपरा रही है। आधुनिक संदर्भ में इस विरासत को केवल गौरव-बोध तक सीमित रखने के बजाय उसके आलोचनात्मक अध्ययन, पुनर्पाठ और समकालीन प्रासंगिकता की पड़ताल आवश्यक है। शोध का वास्तविक महत्व तभी स्थापित होता है, जब वह अतीत को समझते हुए वर्तमान के प्रश्नों से संवाद करे और भविष्य के लिए नए विचारों की संभावनाएँ निर्मित करे।

आज का शोध-जगत भी तेजी से अंतर्विषयी स्वरूप ग्रहण कर रहा है। साहित्य का संबंध समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शन, शिक्षा, राजनीति-विज्ञान, मनोविज्ञान, संस्कृति-अध्ययन और तकनीकी विकास जैसे अनेक क्षेत्रों से जुड़ रहा है। इस प्रकार के अंतर्विषयी अध्ययन किसी विषय को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का अवसर प्रदान करते हैं। 'पदचिन्ह' ऐसे ही विविध विषयों और दृष्टियों को एक साझा मंच प्रदान करने की अपनी परंपरा को आगे बढ़ा रही है।

समकालीन समाज में सामाजिक न्याय, समानता, स्त्री-अस्मिता, वंचित समुदायों की आवाज, शिक्षा में समावेशन, सांस्कृतिक विविधता और मानवीय गरिमा जैसे प्रश्न विशेष महत्व रखते हैं। इन प्रश्नों पर गंभीर एवं तथ्यपरक विमर्श समाज को अधिक संवेदनशील और लोकतांत्रिक बनाने में योगदान दे सकता है। साहित्य और

शोध दोनों की शक्ति इसी में निहित है कि वे उन अनुभवों और आवाजों को सामने लाएँ जिन्हें अक्सर मुख्यधारा के विमर्श में पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाता।

डिजिटल युग ने ज्ञान के प्रसार की प्रक्रिया को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है। सूचना की उपलब्धता पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सरल हुई है, किंतु इसी के साथ सूचना और ज्ञान के बीच अंतर को समझना भी आवश्यक हो गया है। त्वरित सूचना के इस दौर में प्रमाणिकता, मौलिकता, संदर्भबोध और आलोचनात्मक दृष्टि का महत्त्व बढ़ गया है। शोधकर्ता और लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह उपलब्ध सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग करते हुए अपने अध्ययन को प्रमाणिक स्रोतों, तार्किक विश्लेषण और मौलिक दृष्टि से समृद्ध करें।

किसी शोध-पत्रिका की सार्थकता उसके पृष्ठों की संख्या से नहीं, बल्कि उसमें उठाए गए प्रश्नों की गंभीरता और प्रस्तुत विचारों की वैचारिक प्रासंगिकता से निर्धारित होती है। इसी विश्वास के साथ 'पदचिन्ह' शोधार्थियों, अध्यापकों, साहित्यकारों और विषय-विशेषज्ञों के बीच संवाद का अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास करती है। हमारा उद्देश्य विविध मतों और दृष्टियों को स्थान देते हुए ऐसा बौद्धिक वातावरण निर्मित करना है, जिसमें असहमति भी ज्ञान-विस्तार का माध्यम बने और विचार-विमर्श संवाद की संस्कृति को मजबूत करें।

इस अंक में प्रकाशित सामग्री इसी व्यापक उद्देश्य की दिशा में एक प्रयास है। प्रस्तुत आलेखों में विषयों की विविधता के साथ-साथ शोध-दृष्टि, विश्लेषणात्मकता और समकालीन सरोकारों की उपस्थिति दिखाई देती है। आशा है कि ये आलेख पाठकों को नए प्रश्नों पर विचार करने, स्थापित धारणाओं का पुनर्मूल्यांकन करने और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संबंधों को समझने के लिए प्रेरित करेंगे।

'पदचिन्ह' के लिए प्रत्येक अंक केवल प्रकाशन की एक औपचारिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि ज्ञान-सृजन की सतत यात्रा का एक पड़ाव है। हमें विश्वास है कि हमारे लेखक, शोधकर्ता और पाठक इस यात्रा में निरंतर सहभागी बने रहेंगे। उनके सुझाव, आलोचनाएँ और रचनात्मक सहयोग ही पत्रिका को अधिक सार्थक और समृद्ध बनाने की आधारभूमि हैं।

इसी विश्वास के साथ जुलाई 2026 का यह अंक हमारे सुधी पाठकों को समर्पित है। आशा है कि यह अंक अध्ययन, चिंतन और संवाद की नई संभावनाओं को जन्म देगा तथा ज्ञान और संवेदना के उन 'पदचिन्हों' को पहचानने में सहायक होगा, जो हमारे वर्तमान को समझने और भविष्य का मार्ग निर्मित करने में हमारी सहायता करते हैं।

डिजिटल प्लेटफॉर्म आधारित श्रमिकों के जीवन और कार्य दशाओं का अध्ययन

डॉ. विघनेश्वर सिंह*

vighneshwarsomsingh@gmail.com

सारांश –

गिग वर्कर उभरती हुई गिग इकॉनमी का हिस्सा हैं, जो नई टेक्नोलॉजी पर आधारित है। यह नई कैटेगरी ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, क्लाउड वर्किंग, फ्रीलांसिंग, ई-कॉमर्स, सप्लाय चैन और कई अन्य सेक्टर के ज़रिए सामने आई है। यह कहा जा सकता है कि नई टेक्नोलॉजी और बिज़नेस मॉडल ही इस नई तरह की लेबर कैटेगरी को आगे बढ़ा रहे हैं। ये वर्कर, जो ऐप के ज़रिए मिले टास्क या ऑर्डर के आधार पर काम करते हैं, असल में ई-कॉमर्स कंपनियों के ऐप से मिले निर्देशों के अनुसार ही काम करते हैं। हालाँकि, सरकारी परिभाषाओं के तहत उन्हें “वर्कर” नहीं माना जाता है; बल्कि उन्हें “फ्रीलांसर” कहा जाता है। हालाँकि सरकार ने गिग वर्कर की मदद करने और नए लेबर कानूनों के तहत उन्हें राहत देने के लिए कई कदम उठाए हैं, फिर भी यह पक्का करना ज़रूरी है कि प्लेटफॉर्म, एम्प्लॉयर और कंपनियाँ भविष्य में उनके हितों की सुरक्षा के लिए कदम उठाएँ।

सूचक शब्द –

ई-कॉमर्स, गिग इकॉनमी, नई टेक्नोलॉजी, गिग वर्कर, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था, श्रमिक

प्रस्तावना –

डिजिटल तकनीक, इंटरनेट और स्मार्टफोन के व्यापक प्रसार ने रोजगार के स्वरूप में अभूतपूर्व परिवर्तन किया है। गिग इकॉनमी इस परिवर्तन का प्रमुख उदाहरण है, जिसमें ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से अल्पकालिक एवं मांग-आधारित कार्य उपलब्ध कराए जाते हैं। भारत में Zomato, Swiggy, Blinkit, bigbasket Uber तथा Ola जैसे प्लेटफॉर्मों के विस्तार के साथ लाखों युवा इस क्षेत्र से जुड़े हैं। यद्यपि गिग कार्य लचीलापन और आय के नए अवसर प्रदान करता है, किन्तु सामाजिक सुरक्षा, रोजगार की स्थिरता, न्यूनतम वेतन और श्रमिक अधिकारों जैसी अनेक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इसलिए गिग इकॉनमी का समाजशास्त्रीय अध्ययन समकालीन भारतीय समाज में श्रम संबंधों के बदलते स्वरूप को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्विक कॉमर्स ई-कॉमर्स का एक नया रूप है। यह एक तय समय पर ऐप के ज़रिए किराने का सामान डिलीवर करने जैसा है। यह मॉडर्न क्विक कॉमर्स मॉडल सबसे पहले यूरोप और वेस्ट एशिया में सामने आया। उदाहरण के लिए, गेटि (टर्की) जो 2015 में शुरू हुआ, गोरिल्लाज (जर्मनी) जो 2020 में शुरू हुआ, फ्लिंक (जर्मनी) गोपफ (USA) आदि। इन कंपनियों ने बहुत तेज़ डिलीवरी के वादे के साथ डार्क स्टोर (एक तरह का वेयरहाउस) को पॉपुलर बनाया। भारत में, इन मॉडल्स को भारतीय स्टार्टअप्स और प्लेटफॉर्मों ने 2020-21 में अपनाया, खासकर COVID-19 महामारी के दौरान। वर्ष 2019 के नये श्रम संहिता में गिग वर्कर को इस प्रकार परिभाषित किया गया है “ऐसा व्यक्ति जो किसी कार्य को करता है या कार्य व्यवस्था में भाग लेता है और पारंपरिक नियोक्ताकर्मि सम्बन्ध के बाहर ऐसे कार्यों से आय अर्जित करता है।”

ऐप-बेस्ड ई-कॉमर्स के आने से, हम ‘गिग वर्कर्स’ नाम की वर्कर्स की एक नई कैटेगरी को उभरते हुए देख रहे हैं। कई बेरोज़गार लोग, कम बेरोज़गारी वाले युवा, और यहाँ तक कि कुछ एक्स्ट्रा इनकम कमाने की चाहत रखने वाले स्टूडेंट भी आसानी से इस काम की तरफ अट्रैक्ट हो जाते हैं। फिर, कम सैलरी देकर वर्कर्स का शोषण करने का खेल शुरू होता है। 2023 में यही हुआ जब ई-कॉमर्स कंपनियों ने डिस्ट्रीब्यूटर/डिलीवरी एजेंट को पेमेंट कम कर दिया। इससे वे नाराज़ हो गए और हड़ताल पर चले गए। हाल ही में, एक बार फिर, ‘गिग वर्कर्स’ ने अपने काम करने के हालात का विरोध करने के लिए छोटी हड़ताल की। उनकी एक मांग थी कि उन पर दबाव कम करने के लिए दस मिनट की डिलीवरी पॉलिसी को खत्म किया जाए।

* अतिथि व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, संत गुरुदासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरुद

शोध साहित्य की समीक्षा –

Anweshaa Ghosh, Risha Ramachandran, Mubashira Zaidi (2021) पोस्ट-फोर्डिज़्म और नवउदारवाद ने श्रम को देखने के नज़रिए को बदल दिया, वहीं प्रौद्योगिकी और व्यापक डिजिटलीकरण ने इन्हीं सिद्धांतों को आगे बढ़ाते हुए काम के एक नए रूप - गिग इकॉनमी - को जन्म दिया है। पिछले एक दशक में, उबर, ओला, अर्बन कंपनी, ज़ोमैटो आदि जैसे ऐप-आधारित प्लेटफॉर्मों द्वारा निर्देशित 'ऑन-डिमांड' काम शहरी भारत में काफी आम हो गया है। इन प्लेटफॉर्मों ने मौजूदा बड़े अनौपचारिक अर्थव्यवस्था को और मजबूत किया है, जो बढ़ते डिजिटलीकरण और स्मार्टफोन जैसे गैजेट्स की बढ़ती उपलब्धता से प्रेरित है। गिग इकॉनमी 'लचीलेपन' के विचार पर फलती-फूलती है, जिससे लोग 'स्वतंत्र ठेकेदार' के रूप में काम कर सकते हैं, जिनके पास अपनी सुविधानुसार और अपनी इच्छानुसार कहीं भी काम करने का 'विकल्प' होता है।

Aastha Behl, K. Rajagopal, Pratima Amol Sheorey, Ashish Mahendra

2022 पारंपरिक रोज़गार के वैकल्पिक इंतज़ाम, गिग इकॉनमी में एक उभरता हुआ क्षेत्र बन गए हैं, जहाँ तकनीकी प्रगति हर काम पर हावी है। इस पेपर का उद्देश्य फूड डिलीवरी सेक्टर से जुड़े गिग प्लेटफॉर्म पर गिग वर्कर्सों के प्रवेश में आने वाली रुकावटों का पता लगाना था। यह इंटरप्रिटिव स्ट्रक्चरल मॉडलिंग (ISM) का इस्तेमाल करके एक फ्रेमवर्क का प्रस्ताव देता है, यह विश्लेषण गिग प्लेटफॉर्म पर प्रवेश की रुकावटों के बीच के संबंध की जाँच करने में मदद करता है। यह अध्ययन गिग सेक्टर में प्रवेश की रुकावटों को कम करने के लिए रणनीतियों का भी प्रस्ताव देता है, जिससे उत्पादकता बढ़ाने और रोज़गार के अवसर पैदा करने में मदद मिलेगी। यह MICMAC विश्लेषण के साथ-साथ इस संबंध को मान्य भी करता है और उनके जुड़ाव के कारणों को भी समझता है। इस मॉडल को गिग वर्कर्सों और फूड डिलीवरी गिग प्लेटफॉर्म (जैसे Zomato और Swiggy) से जुड़े विशेषज्ञों से परामर्श करके डिज़ाइन किया गया था। निष्कर्ष: यह देखा गया कि कड़ी प्रतिस्पर्धा, लंबे लॉगिन घंटे और देर रात की डिलीवरी, प्रवेश की प्रमुख रुकावटें हैं, जिनकी ड्राइविंग शक्ति (driving power) ज़्यादा और निर्भरता शक्ति (dependence power) कम है। खराब भुगतान संरचनाएँ और प्रोत्साहन (incentives) प्राप्त करने के लिए कड़े नियम और शर्तें एक-दूसरे पर निर्भर हैं, और इनकी ड्राइविंग और निर्भरता शक्ति मध्यम स्तर की है। गिग वर्कर्सों द्वारा किए जाने वाले खर्च (जैसे इंटरनेट, ईंधन और वाहन के रखरखाव का खर्च) की निर्भरता शक्ति ज़्यादा और ड्राइविंग शक्ति कम है। इसलिए, वे अन्य रुकावटों की तुलना में अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हैं। यह अध्ययन फूड डिलीवरी प्लेटफॉर्म पर गिग वर्कर्सों के लिए प्रवेश की कम रुकावटों का पता लगाने का प्रयास करता है, क्योंकि इन कारकों के विश्लेषण की कमी है। यह अध्ययन ISM फ्रेमवर्क का उपयोग करके इन कारकों को एक साथ जोड़ेगा, ताकि गिग प्लेटफॉर्म को विभिन्न स्तरों पर इन रुकावटों को दूर करने में मदद मिल सके, और इस प्रकार यह साहित्य के भंडार में अपना योगदान देगा।

Sofia Alexandra Cruz Ana Gameiro 2023 डिजिटल आर्थिक गतिविधियों में तीव्र वृद्धि के कारण प्लेटफॉर्म की अवधारणा में विद्वानों की काफी रुचि बढ़ी है। साक्ष्य दर्शाते हैं कि डिजिटल कार्य प्लेटफॉर्म हाल के वर्षों में हुए सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तनों में से एक हैं और राष्ट्रीय एवं वैश्विक कार्य बाजारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हालांकि, इन परिवर्तनों को केवल कार्य क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करके नहीं समझा जा सकता, क्योंकि उपभोग क्षेत्र भी इस बहस का केंद्र बिंदु है। वास्तव में, डिजिटल प्लेटफॉर्म पर कार्य को व्यवस्थित करने, विभाजित करने और समन्वय करने के नए तरीके, उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सेवाओं के उपभोग के विशिष्ट तरीकों से परस्पर जुड़े हुए हैं। यह लेख तर्क देता है कि सेवा संबंध दृष्टिकोण डिजिटल कार्य प्लेटफॉर्म पर हो रही गतिविधियों को समझने में सहायक है, जिसमें प्लेटफॉर्म, श्रमिकों और ग्राहकों के बीच अंतर्संबंधों की संरचनात्मक और परिस्थितिजन्य संरचनाएँ, साथ ही उनके सामाजिक और आर्थिक परिणाम शामिल हैं। यह दृष्टिकोण विभिन्न प्रकार के प्लेटफॉर्म, श्रमिकों और ग्राहकों के बीच अंतर-निर्भरताओं के जाल का विश्लेषण करने और यह चर्चा करने की अनुमति देता है कि इसमें होने वाले दीर्घकालिक परिवर्तन प्लेटफॉर्म बाजार में अंतर्निहित परिवर्तनों से किस प्रकार प्रभावित होते हैं। इसलिए, भविष्य के शोध में प्लेटफॉर्म, श्रमिकों और ग्राहकों की आवाजों के नेटवर्क का पता लगाने की आवश्यकता है ताकि इन त्रिकोणीय संबंधों के साथ-साथ एल्गोरिथम और मानव प्रबंधन के बीच अंतर और अंतर्संबंधों से संबंधित चुनौतियों का एक ठोस विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सके।

Ankita Goyal, Anjali Sharma, Ashish Kumar Sharma 2023

भारत में मौजूदा कारोबारी माहौल अस्थिर, अनिश्चित, जटिल और अस्पष्ट (VUCA) है। इसने दुनिया भर में कारोबारी संगठनों के अपने स्ट्रेटजिस्ट्स के साथ बातचीत करने के तरीके को काफी हद तक बदल दिया है। आज, कंपनियाँ

इस कड़ी प्रतिस्पर्धा के दौर में अपने कारोबार को ज्यादा फ़ायदेमंद बनाने के लिए अपने नेटवर्क को फिर से बनाने के लिए टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल कर रही हैं। लेबर मार्केट में भी कई क्रांतिकारी बदलाव आ रहे हैं। इन तकनीकी और लेबर बदलावों का सबसे बड़ा असर एक नए तरह के लेबर मार्केट के उदय के रूप में सामने आया है - गिग इकॉनमी। 'गिग' एक ऐसा शब्द है जो आज के प्रतिस्पर्धी माहौल में अहमियत हासिल कर रहा है। मौजूदा हालात में, गिग इकॉनमी का मतलब है कि कर्मचारियों को फ्रीलांस काम, ऑन-कॉल काम, स्वतंत्र ठेकेदार, कौशल विकास वगैरह के मामले में ज्यादा आज़ादी मिलती है। गिग इकॉनमी में पारंपरिक मैनपावर के बजाय कैज़ुअल कर्मचारी शामिल होते हैं। मौजूदा हालात में मैनेजर-केंद्रित हायरिंग सिस्टम के पुराने कॉन्सेप्ट से हटकर एक नए सिस्टम की ओर बढ़ने की ज़रूरत है पुराना सिस्टम कर्मचारियों को कंपनी के कड़े नियमों और कानूनों से बांध देता है, जबकि नया सिस्टम समय, वेतन और दूसरे फ़ायदों के मामले में काफ़ी लचीलापन देता है। साथ ही, गिग इकॉनमी कारोबारी संगठनों के लिए भी फ़ायदेमंद होगी, क्योंकि यह रोज़गार के अवसर पैदा करके लागत कम करने का सबसे अच्छा तरीका है - जो छोटे या बड़े, सभी तरह के कारोबारों के लिए आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। मौजूदा बदलाव, भले ही रोमांचक हों, लेकिन साथ ही जोखिम भरे भी हैं ये संगठनों को नए सिस्टम और प्रक्रियाओं से जुड़े जोखिमों को संभालने के तरीकों के बारे में सीखने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। संभावित कर्मचारी भी कई तरह के रोज़गार के अवसर पैदा करने के लिए टेक्नोलॉजी की ओर देख रहे हैं, जिससे बदले में, काम के प्रति उम्मीदवारों की पसंद बदल रही है। इसके अलावा, इस बदलाव ने संभावित नियोक्ता और ज़रूरी योग्यता वाले कर्मचारी, दोनों को एक-दूसरे के और करीब ला दिया है।

भारत में गिग इकॉनमी कई वजहों से आगे बढ़ रही है, जिनमें डिजिटल टेक्नोलॉजी का उदय, काम के लचीले तरीकों की बढ़ती मांग, और कारोबारों के लिए क़िफ़ायती समाधानों की ज़रूरत शामिल है। स्मार्टफोन, मोबाइल ऐप और ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म जैसी डिजिटल टेक्नोलॉजी ने कारोबारों के लिए गिग कर्मचारियों से जुड़ना और गिग कर्मचारियों के लिए काम ढूँढना आसान बना दिया है। काम के लचीले तरीकों की मांग भी बढ़ रही है, खासकर युवा कर्मचारियों के बीच, जो काम और निजी जीवन में संतुलन (work-life balance) और अपनी शर्तों पर काम करने की आज़ादी को ज्यादा अहमियत देते हैं। हालाँकि, गिग इकॉनमी कई चुनौतियाँ भी खड़ी करती है, जिनमें गिग कर्मचारियों के लिए नौकरी की सुरक्षा, सुविधाओं और सामाजिक सुरक्षा की कमी शामिल है। इसके अलावा, कई गिग कर्मचारियों को कम वेतन, काम के लंबे घंटे और सुरक्षा के अपर्याप्त मानकों से जुड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। गिग इकॉनमी में नियमों की कमी का मतलब यह भी है कि गिग कर्मचारियों को अक्सर श्रम कानूनों का संरक्षण नहीं मिलता और न ही वे सामाजिक सुरक्षा के दायरे में आते हैं। यह अध्याय भारत में गिग इकॉनमी के उभरने से पैदा हुए विशाल अवसरों और जिस तरह से यह भारतीय श्रम बाज़ार को बदल रही है—जिससे देश की आर्थिक वृद्धि हो रही है—उसे उजागर करता है। गिग इकॉनमी के उभरने से पैदा हुए मौजूदा मुद्दों, रुझानों और चुनौतियों, साथ ही उनके संभावित समाधानों को भी इसमें शामिल किया गया है। गिग इकॉनमी पहले से ही भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में बड़े पैमाने पर योगदान दे रही है, और आने वाले दिनों में इसका हिस्सा बढ़ना तय है।

Razia. 2025 गिग इकॉनमी ने लचीला काम उपलब्ध कराकर श्रम बाज़ारों को नया रूप दिया है, लेकिन साथ ही आय अस्थिरता, सामाजिक सुरक्षा का अभाव, डिजिटल पहुँच में बाधाएँ और स्थिरता संबंधी चिंताएँ जैसी चुनौतियाँ भी पेश की हैं। यह अध्याय राइड-हेलिंग, फ़ूड डिलीवरी, फ़्रीलांसिंग और घरेलू सेवाओं से जुड़े 250 गिग वर्कर्स के सर्वेक्षण से प्राप्त द्वितीयक शोध और प्राथमिक डेटा का उपयोग करके इन मुद्दों की पड़ताल करता है। निष्कर्ष बताते हैं कि 70% गिग वर्कर्स आय अस्थिरता का सामना करते हैं, 60% को आवश्यक लाभों का अभाव है और 55% को नौकरी आवंटन में एल्गोरिथम पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ता है। डिजिटल पहुँच की सीमाएँ अवसरों को और भी बाधित करती हैं, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में। यह अध्ययन नियामक ढाँचों, तकनीकी नवाचारों और स्थिरता संबंधी पहलों की पड़ताल करता है और उचित वेतन नीतियों, एल्गोरिथम पारदर्शिता और बेहतर श्रमिक सुरक्षा जैसे समाधान प्रस्तावित करता है। संरचनात्मक असमानताओं को दूर करके, यह शोध श्रम अधिकारों, प्लेटफ़ॉर्म जवाबदेही और गिग इकॉनमी के सतत विकास पर चर्चा में योगदान देता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- 1 गिग वर्कर्स की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
- 2 गिग अर्थव्यवस्था में कार्यरत श्रमिकों की कार्य-परिस्थितियों, तथा रोज़गार सुरक्षा का विश्लेषण करना।

अध्ययन पद्धति –

इस अध्ययन में वर्णात्मक शोध प्ररचना का उपयोग किया गया है। उत्तरदाताओं का चयन रायपुर में swiggy, zomato तथा bigbasket में कार्य करने वाले 50 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया है। तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। तथ्य संकलन के समय उत्तरदाताओं के मनोभावों, प्रवृत्तियों आदि को ध्यान में रखते हुए अवलोकन किया गया है। तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत के रूप में पुस्तकें, शोध पत्रिकाओं और शोध पत्रों का उपयोग किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण –**तालिका क्रमांक 01 : आयु के आधार पर वर्गीकरण**

क्रमांक	आयु वर्ग	आवृत्ति	प्रतिशत
01	18 – 25	12	24
02	26 – 35	20	40
03	36 – 45	11	22
04	46 वर्ष व अधिक	07	14
	कुल	50	100

तालिका से स्पष्ट होता है कि 50 उत्तरदाताओं में से 40% (20) की आयु 26–35 वर्ष है, जो सर्वाधिक है। 24% (12) उत्तरदाता 18–25 वर्ष, 22% (11) उत्तरदाता 36–45 वर्ष तथा 14% (7) उत्तरदाता 46 वर्ष या उससे अधिक आयु वर्ग के हैं। इससे स्पष्ट है कि गीग कार्यों में युवाओं की भागीदारी अधिक है।

तालिका क्रमांक 02 : मासिक आय के आधार पर वर्गीकरण

क्रमांक	मासिक आय	आवृत्ति	प्रतिशत
01	10,000 से कम	08	16
02	10,001 -20,000	21	42
03	20,001 – 30,000	15	30
04	30,000 से अधिक	06	12
	कुल	50	100

42% (21) उत्तरदाताओं की मासिक आय ₹10,001–20,000 के बीच है, जबकि 30% (15) की आय ₹20,001–30,000 है। केवल 12% (6) उत्तरदाताओं की आय ₹30,000 से अधिक है। इससे पता चलता है कि अधिकांश गीग वर्कर्स मध्यम आय वर्ग में आते हैं।

तालिका क्रमांक 03 : शैक्षणिक योग्यता

क्रमांक	शिक्षा स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
01	माध्यमिक	10	20
02	उच्च माध्यमिक	15	30
03	स्नातक	18	36
04	स्नातकोत्तर व अन्य	07	14
	कुल	50	100

36% (18) उत्तरदाता स्नातक हैं, 30% (15) उच्च माध्यमिक, 20% (10) माध्यमिक तथा 14% (7) स्नातकोत्तर या अन्य योग्यता वाले हैं। इससे स्पष्ट है कि गीग कार्यों में शिक्षित युवाओं की भागीदारी अधिक है।

तालिका क्रमांक 04 : वैवाहिक स्थिति

क्रमांक	वैवाहिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
01	अविवाहित	22	44
02	विवाहित	26	52
03	अन्य	02	04
	कुल	50	100

52% (26) उत्तरदाता विवाहित हैं, जबकि 44% (22) अविवाहित तथा 4% (2) अन्य श्रेणी के हैं। इससे स्पष्ट होता है कि गीग कार्य विवाहित एवं अविवाहित दोनों वर्गों के लिए रोजगार का महत्वपूर्ण माध्यम है। यह निष्कर्ष दर्शाता है कि डिजिटल प्लेटफार्म आधारित कार्य विभिन्न वैवाहिक स्थितियों वाले व्यक्तियों के लिए आजीविका अर्जित करने का प्रभावी माध्यम बन गया है।

तालिका क्रमांक 05 : आर्थिक स्थिति के प्रति उत्तरदाताओं की राय

क्रमांक	आर्थिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
01	अच्छा	11	22
02	सामान्य	27	54
03	कमजोर	12	24
	कुल	50	100

54% (27) उत्तरदाताओं ने अपनी आर्थिक स्थिति सामान्य बताई, 24% (12) ने कमजोर तथा 22% (11) ने अच्छी बताई। इससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश गीग वर्कर्स की आर्थिक स्थिति सामान्य स्तर की है। यह परिणाम दर्शाता है कि डिजिटल प्लेटफार्म आधारित कार्य से प्राप्त आय अधिकांश श्रमिकों को केवल सामान्य आर्थिक स्तर बनाए रखने में सक्षम बनाती है, जबकि अपेक्षाकृत कम श्रमिक अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छा मानते हैं।

तालिका क्रमांक 06 : प्रतिदिन कार्य करने के घंटे

क्रमांक	कार्य घंटे	आवृत्ति	प्रतिशत
01	4 – 6	10	20
02	7- 9	24	48
03	10-12	13	26
04	12 से अधिक	03	06
	कुल	50	100

48% (24) उत्तरदाता प्रतिदिन 7-9 घंटे कार्य करते हैं, 26% (13) 10-12 घंटे, 20% (10) 4-6 घंटे तथा 6% (3) 12 घंटे से अधिक कार्य करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश डिजिटल प्लेटफार्म आधारित श्रमिक अपेक्षाकृत लंबे समय तक कार्य करते हैं। यह निष्कर्ष दर्शाता है कि अधिकांश श्रमिक प्रतिदिन 7-9 घंटे या उससे अधिक समय तक कार्य करते हैं, जो उनकी आय बढ़ाने की आवश्यकता तथा कार्य की समय-आधारित अनिश्चितता को इंगित करता है।

तालिका क्रमांक 07 : कार्य परिस्थितियों से संतुष्टि

क्रमांक	संतुष्टि	आवृत्ति	प्रतिशत
01	संतुष्ट	14	28
02	सामान्य	20	40
03	असंतुष्ट	16	32
	कुल	50	100

40% (20) उत्तरदाताओं ने कार्य-परिस्थितियों को सामान्य, 32% (16) ने असंतोषजनक तथा 28% (14) ने संतोषजनक बताया। इससे पता चलता है कि कार्य-परिस्थितियों में सुधार की आवश्यकता है। यह परिणाम दर्शाता है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म आधारित श्रमिकों में पूर्ण संतुष्टि का स्तर अपेक्षाकृत कम है तथा कार्य-परिस्थितियों में सुधार, सुरक्षा और सुविधाओं की आवश्यकता स्पष्ट रूप से महसूस की जा रही है।

तालिका क्रमांक 08 : रोजगार सुरक्षा की स्थिति

क्रमांक	रोजगार सुरक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
01	सुरक्षित	08	16
02	आंशिक रूप से सुरक्षित	17	34
03	असुरक्षित	25	50
	कुल	50	100

50% (25) उत्तरदाताओं ने रोजगार को असुरक्षित बताया, 34% (17) ने आंशिक रूप से सुरक्षित तथा केवल 16% (8) ने सुरक्षित माना। इससे स्पष्ट है कि गीग वर्क में रोजगार सुरक्षा का अभाव एक प्रमुख समस्या है। यह परिणाम दर्शाता है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म आधारित श्रमिकों में रोजगार की स्थिरता एवं भविष्य की सुरक्षा को लेकर पर्याप्त अनिश्चितता है, जिससे सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा संबंधी उपायों की आवश्यकता स्पष्ट होती है।

तालिका क्रमांक 09 : सामाजिक सुरक्षा सुविधाओं की उपलब्धता

क्रमांक	सामाजिक सुरक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
01	उपलब्ध	12	24
02	आंशिक उपलब्ध	15	30
03	उपलब्धता नहीं	23	46
	कुल	50	100

46% (23) उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्हें कोई सामाजिक सुरक्षा सुविधा प्राप्त नहीं होती, 30% (15) को आंशिक तथा 24% (12) को सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश गीग वर्कर्स सामाजिक सुरक्षा से वंचित हैं। यह परिणाम दर्शाता है कि सामाजिक सुरक्षा सुविधाओं का पर्याप्त अभाव श्रमिकों के जीवन एवं कार्य में असुरक्षा की भावना उत्पन्न करता है तथा उनके लिए प्रभावी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के विस्तार और क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

तालिका क्रमांक 10 : भविष्य में गीग कार्य जारी रखने की इच्छा

क्रमांक	राय	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हां	18	36
02	नहीं	14	28
03	निश्चित नहीं	18	36
	कुल	50	100

36% (18) उत्तरदाता भविष्य में गीग कार्य जारी रखना चाहते हैं, 36% (18) इस बारे में निश्चित नहीं हैं तथा 28% (14) इसे जारी नहीं रखना चाहते। इससे स्पष्ट होता है कि रोजगार की अनिश्चितता के कारण अनेक श्रमिक अपने भविष्य को लेकर आशंकित हैं। उत्तरदाताओं की राय से संकेत मिलता है कि गीग कार्य को अधिकांश श्रमिक स्थायी करियर के बजाय परिस्थितिजन्य रोजगार के रूप में देखते हैं, इसलिए भविष्य में इसे जारी रखने के प्रति उनका दृष्टिकोण पूरी तरह स्पष्ट नहीं है।

निष्कर्ष –

वर्तमान नेशनल डेमोक्रेटिक अलायंस (NDA) सरकार ने गिग वर्कर्स की समस्याओं पर ध्यान दिया है। भारत सरकार ने पहली बार लेबर कानूनों में गिग वर्कर्स और प्लेटफॉर्म वर्कर्स को आधिकारिक तौर पर मान्यता दी है। सोशल सिक्योरिटी कोड, 2020 में गिग वर्कर्स, प्लेटफॉर्म वर्कर्स, कलेक्टर्स आदि की स्पष्ट परिभाषा दी गई है। इससे पहले, गिग वर्कर्स को न तो कर्मचारी माना जाता था और न ही पूरी तरह से सेल्फ-एम्प्लॉयड (स्व-रोज़गार वाले) की श्रेणी में रखा जाता था। सरकार का मानना है कि भले ही गिग वर्कर्स रेगुलर कर्मचारी न हों, फिर भी उन्हें कम से कम सोशल सिक्योरिटी मिलनी चाहिए; उन्हें हेल्थ इंश्योरेंस, एक्सीडेंट इंश्योरेंस, लाइफ इंश्योरेंस, मैटरनिटी बेनिफिट्स और भविष्य में पेंशन की सुविधा मिलनी चाहिए। गिग वर्कर्स को ई-श्रम पोर्टल पर रजिस्टर करने की सुविधा दी गई है। रजिस्ट्रेशन के बाद, उन्हें एक यूनिक ID मिलती है और इसके ज़रिए वे केंद्र और राज्य सरकारों की कई सोशल सिक्योरिटी योजनाओं का लाभ उठा सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Ghosh, Anweshaa, Risha Ramachandran, and Mubashira Zaidi. *Women Workers in the Gig Economy in India: An Exploratory Study*. Institute of Social Studies Trust, 2021.
2. Behl, Aastha, K. Rajagopal, Pratima Amol Sheorey, and Ashish Mahendra. "Barriers to Entry of Gig Workers in the Gig Platforms: Exploring the Dark Side of the Gig Economy." *Aslib Journal of Information Management*, Jan. 2022. <https://doi.org/10.1108/AJIM-08-2021-0235>.
3. Cruz, Sofia Alexandra, and Ana Gameiro. "Digital Work Platform: Understanding Platforms, Workers, Clients in a Service Relation." *Frontiers in Sociology*, Jan. 2023.
4. Goyal, Ankita, Anjali Sharma, and Ashish Kumar Sharma. "Unleashing Infinite Employment Opportunities: Mapping the Path in India's Gig Economy." *Research Trends in Humanities, Social Sciences, Commerce and Management*, Bhumi Publishing, 2023, pp. 54–63.
5. Razia. "Building Inclusive and Equitable Gig Economies for Sustainable Global Growth." *Sustainability and Adaptability of Gig Economies in Global Business*, edited by Roshnie Anita Doon, IGI Global Scientific Publishing, 2025, pp. 261–296. <https://doi.org/10.4018/979-8-3693-9385-7.ch010>.

दलित चेतना और सामाजिक परिवर्तन: एक ऐतिहासिक अध्ययन

संदीप कुमार*

kmonu7095@gmail.com

सारांश

दलित चेतना एवं सामाजिक परिवर्तन भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही जातिगत भेदभाव, सामाजिक असमानता और छुआछूत की प्रथा के विरोध में उभरी एक विस्तृत सामाजिक-वैचारिक धारा को ही “दलित चेतना एवं सामाजिक परिवर्तन” के रूप में समझा जा सकता है। इस शोध-पत्र का लक्ष्य दलित चेतना की उत्पत्ति, उसके क्रमिक विस्तार तथा उससे उपजे सामाजिक बदलावों का इतिहास एवं विश्लेषणपरक अध्ययन प्रस्तुत करना है। भारत की सामाजिक संरचना में दलित वर्गों को दीर्घकाल तक सामाजिक तिरस्कार, सीमित शैक्षणिक साधन, आर्थिक पराश्रय तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में भेदभावपूर्ण बर्ताव झेलना पड़ा। इन्हीं परिस्थितियों के गर्भ से क्रमशः एक ऐसी वैचारिक जागृति ने जन्म लिया, जिसमें स्वाभिमान, समता, मुक्ति, अधिकारों की समझ तथा न्याय की चाह केंद्रीय तत्वों के रूप में उभर कर सामने आई।

प्रस्तुत अध्ययन में दलित चेतना को महज उत्पीड़न के विरुद्ध उपजी प्रतिक्रिया मात्र न मानकर, इसे संगठन-निर्माण, प्रतिरोध, शिक्षा-प्रसार, वैचारिक बोध तथा राजनीतिक भागीदारी से गढ़ी गई एक सजीव एवं परिवर्तनशील प्रक्रिया के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। समाज-सुधार की मुहिमों, आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था, दलित संगठनों, पत्र-पत्रिकाओं तथा भिन्न-भिन्न सामाजिक-राजनीतिक हलचलों ने इस जागृति को दिशा प्रदान की। इनमें डॉ. भीमराव आम्बेडकर के चिंतन का स्थान विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने दलित प्रश्न को सामाजिक समता, राजनीतिक भागीदारी, संवैधानिक अधिकार तथा न्याय की व्यापक बहस से जोड़ दिया। उत्तर भारत, और खासतौर पर उत्तर प्रदेश में, स्वामी अछूतानंद के आदि-हिंदू आंदोलन, अनेक दलित संगठनों, शिक्षा-केंद्रित प्रयासों तथा क्षेत्रीय सामाजिक हलचलों ने दलित समाज में आत्मगौरव व सामूहिक अस्मिता के विकास को बल दिया।

यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दलित चेतना केवल सामाजिक बदलाव की उपज नहीं थी, बल्कि स्वयं उस बदलाव को गति देने वाली एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरी। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा, सामाजिक संबंधों, राजनीतिक सहभागिता, प्रतिनिधित्व, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अधिकार-चेतना के दायरों में परिवर्तन की धारा प्रवाहित हुई। आजादी के उपरांत संविधान, सामाजिक न्याय, आरक्षण-व्यवस्था तथा जनतांत्रिक संस्थाओं ने इस जागृति को एक नया कानूनी आधार सौंपा। वर्तमान संदर्भ में यह चेतना शिक्षा, प्रतिनिधित्व, न्याय, समान अवसर, साहित्य, मीडिया एवं डिजिटल मंचों जैसे नवीन आयामों से भी जुड़ती जा रही है। इस प्रकार यह अध्ययन दलित चेतना को भूत और वर्तमान के मध्य निरंतर प्रवाहमान सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

मुख्य शब्द: दलित चेतना, सामाजिक परिवर्तन, आत्मगौरव, जातीय अस्पृश्यता, राजनीतिक भागीदारी, सामाजिक न्याय, सामाजिक अधिकार

भूमिका

“मेरा संघर्ष स्वाधीनता के लिए है उस मानवीय अस्मिता को पुनः प्राप्त करने के लिए, जिसे हिंदू सामाजिक ढांचे ने कुचल कर विरूपित कर दिया है।” - डॉ. भीमराव आम्बेडकर

* (ICSSR Doctoral Fellow), शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी 221005

आभार- मैं सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के प्रति आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस शोध कार्य के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की।

20 जुलाई 1942 को नागपुर में संपन्न अखिल भारतीय डिप्रेस्ड क्लासेज कॉन्फ्रेंस में अपने ऐतिहासिक संबोधन के दौरान डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने दलित समाज की लड़ाई को केवल आर्थिक लाभ या राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति तक संकुचित न मानकर उसे मानवीय अस्मिता और स्वतंत्रता की पुनर्स्थापना का व्यापक संघर्ष घोषित किया। इसी संबोधन के समापन पर उन्होंने अपने अनुयायियों से शिक्षित होने, आंदोलनरत रहने और संगठित होने का आह्वान किया।¹ यह विचार दलित चेतना के मूल स्वरूप को समझने की कुंजी है, क्योंकि इसमें सामाजिक रूपांतरण का स्रोत बाह्य सुधार में नहीं, बल्कि स्वयं वंचित वर्ग की आंतरिक जागृति, स्वाभिमान, संगठन-शक्ति और अधिकार-चेतना में निहित माना गया है। इसी परिप्रेक्ष्य से दलित चेतना तथा सामाजिक परिवर्तन का पारस्परिक संबंध भारतीय समाज की विषमता से समता की ओर बढ़ती दीर्घकालिक यात्रा को समझने का एक सशक्त माध्यम बन जाता है।

दलित चेतना: संकल्पना, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और क्रमिक विकास

भारतीय समाज का ऐतिहासिक क्रम विविध सांस्कृतिक धाराओं के संगम से बना है, किंतु इसी विकास-यात्रा में जातिगत श्रेणी-विभाजन ने सामाजिक संबंधों को विषमतापूर्ण ढाँचे में बाँध दिया। वर्ण-जाति आधारित संरचना ने समुदायों की सामाजिक हैसियत, व्यावसायिक भूमिका और सार्वजनिक जीवन में उनकी सहभागिता को निर्धारित किया।² जिन समुदायों को इस पदानुक्रम में निम्नतम स्थान दिया गया, उन्हें बहिष्कार, छुआछूत, शिक्षा से वंचना, आर्थिक परावलंबन तथा सामाजिक तिरस्कार का अनुभव लम्बे समय तक झेलना पड़ा। इन विषम परिस्थितियों ने दलित जीवन को न केवल आर्थिक संकट से, बल्कि मानवीय सम्मान और गरिमा के प्रश्न से भी गहराई से जोड़ दिया।

दलित चेतना को केवल पीड़ा की अनुभूति मात्र मान लेना इसके व्यापक स्वरूप को संकुचित करना होगा। यह वस्तुतः उस प्रक्रिया की सूचक है जिसके अंतर्गत दलित समुदाय अपनी सामाजिक अवस्था को पहचानता है, उसके मूल कारणों की खोज करता है और सामूहिक स्तर पर परिवर्तन की मांग करता है। इस चेतना के भीतर आत्मगौरव, समता, स्वाधीनता, सामाजिक न्याय, शिक्षा, संगठन, राजनीतिक हिस्सेदारी तथा अधिकार-बोध जैसे तत्व आपस में एक दुसरे से जुड़े हैं। संक्षेप में, दलित चेतना निष्क्रिय स्वीकार्यता से सक्रिय प्रतिरोध और अधिकार-अर्जन की दिशा में अग्रसर होने वाली एक सामाजिक गतिशील प्रक्रिया है। इस चेतना का निर्माण किसी एकल व्यक्तित्व या एकल आंदोलन का परिणाम नहीं रहा। इसके पीछे सामाजिक अनुभव, शैक्षिक प्रसार, सुधारवादी आंदोलन, आधुनिक राजनीतिक चिंतन, संस्था-निर्माण और सामूहिक संघर्ष की एक लंबी शृंखला काम करती रही। ज्योतिबा फुले ने शूद्र-अतिशूद्र वर्गों की सामाजिक दुर्दशा, शिक्षा-वंचना तथा ब्राह्मणवादी वर्चस्व के प्रश्न को प्रमुखता से उठाया³, जिनके प्रयासों ने वंचित समुदायों में शिक्षा और मुक्ति के विचार-बीज बोए। कालांतर में डॉ. आम्बेडकर ने दलित प्रश्न को व्यापक सामाजिक, राजनीतिक तथा संवैधानिक विमर्श से संयुक्त किया। आम्बेडकर के चिंतन में जाति मात्र सामाजिक पहचान की व्यवस्था नहीं, बल्कि एक ऐसी संरचना थी जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक समता को अवरुद्ध करती थी। उनकी कृति जाति का विनाश जाति-आधारित सामाजिक ढाँचे की मौलिक और तीक्ष्ण समीक्षा प्रस्तुत करती है। आम्बेडकर के अनुसार सामाजिक लोकतंत्र केवल राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना से पूर्ण नहीं होता; इसके लिए समाज में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों की प्रतिष्ठा भी अनिवार्य थी। इसी दृष्टिकोण ने दलित चेतना को सीमित सामाजिक सुधार से आगे बढ़ाकर संरचनात्मक परिवर्तन की मांग तक विस्तृत किया।

बीसवीं सदी के आरंभिक चरण में शिक्षा और संगठन दलित चेतना के दो प्रमुख स्तंभ बनकर उभरे। शिक्षा ने सामाजिक व्यवस्था को समझने और उस पर प्रश्नचिह्न लगाने की क्षमता का विकास किया। साक्षर दलित नेताओं और कार्यकर्ताओं ने अपने समुदाय की व्यथा को सार्वजनिक बहस का हिस्सा बनाया। संगठन-निर्माण की प्रक्रिया ने व्यक्तिगत अनुभवों को सामूहिक प्रश्न में रूपांतरित किया। इसी क्रम में बहिष्कृत हितकारिणी⁴ सभा जैसी संस्थाओं ने शिक्षा, सामाजिक सुधार और संगठन को आंदोलन की आधारशिला बनाया जो आम्बेडकर के 1942 के आह्वान में भी प्रतिध्वनित होता है। महाड़ सत्याग्रह ने सार्वजनिक जलाशय के समान उपयोग के अधिकार को एक व्यापक सामाजिक अधिकार के प्रश्न के रूप में स्थापित किया। यह संघर्ष केवल जल-स्रोत के उपयोग तक सीमित नहीं था, बल्कि इस घोषणा का प्रतीक था कि सार्वजनिक संसाधनों पर पहुँच जाति के आधार पर तय नहीं की जा सकती।⁵ इसी प्रकार मंदिर-प्रवेश तथा सामाजिक समता से संबद्ध आंदोलनों ने सार्वजनिक जीवन में दलितों की समान सहभागिता की मांग को और सुदृढ़ किया, जिससे दलित चेतना को स्पष्ट अधिकार-केंद्रित स्वरूप मिला।

महात्मा गांधी के अस्पृश्यता-निवारण संबंधी प्रयासों ने भी इस विषय को राष्ट्रीय सार्वजनिक विमर्श में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। यद्यपि जाति और सामाजिक रूपांतरण को लेकर गांधी तथा आम्बेडकर के दृष्टिकोणों में उल्लेखनीय भिन्नता थी, तथापि दोनों की गतिविधियों ने संयुक्त रूप से जातिगत विषमता और छुआछूत को राष्ट्रीय बहस का केंद्रीय विषय बनाया। उत्तर प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' तथा उनका आदि हिन्दू आंदोलन विशिष्ट महत्व रखते हैं। इस आंदोलन ने दलित समुदायों में सामाजिक पहचान, आत्मगौरव और संगठन-भावना के विकास का सुव्यवस्थित प्रयास किया। स्थानीय सभाओं, संस्थाओं, शैक्षिक पहलों तथा पत्रकारिता ने इस चेतना को ठोस सामाजिक आधार दिया।⁶ इससे यह स्पष्ट होता है कि दलित चेतना केवल राष्ट्रीय नेतृत्व की देन नहीं थी, बल्कि क्षेत्रीय अनुभवों और स्थानीय नेतृत्व ने भी इसके निर्माण में समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शिक्षा, संगठन, राजनीतिक चेतना और सामाजिक संघर्ष

दलित चेतना के विकास-क्रम में शिक्षा की भूमिका अत्यंत केंद्रीय रही है। ऐतिहासिक रूप से शिक्षा से वंचित रहे समुदायों के लिए शिक्षा मात्र ज्ञानार्जन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति के रूपांतरण का प्रभावी हथियार भी बनी। इसने व्यक्ति को अपने निजी अनुभवों को व्यापक सामाजिक ढांचे से जोड़कर समझने की दृष्टि दी, जिससे आत्मविश्वास बढ़ा और सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं में सहभागिता की संभावनाएँ प्रशस्त हुईं। आम्बेडकर के अनुसार जब तक दलित वर्ग अज्ञान के गड्ढे में गिरा था, उसमें आत्म सम्मान की भावना नहीं जगी थी, लेकिन जैसे जैसे दलितों के भीतर सम्मान की भावना जागी वैसे वैसे उसमें चेतना आने लगी।⁷ उनके आंदोलन में शैक्षणिक संस्थाओं, छात्रावासों और अध्ययन-व्यवस्थाओं पर बल इसी व्यापक दृष्टिकोण से उपजा था। शिक्षा के माध्यम से दलित समाज में एक ऐसा शिक्षित तबका उभरा जिसने सामाजिक समस्याओं को लेखन, संगठन और राजनीति के माध्यम से मुखरता दी इस प्रक्रिया ने दलित चेतना को वैयक्तिक अनुभव से सामूहिक विचार-धारा में परिवर्तित किया। संगठन इस चेतना को सामाजिक शक्ति में ढालने का माध्यम बना। जातिगत भेदभाव का व्यक्तिगत अनुभव तभी व्यापक सामाजिक प्रश्न बनता है जब वह समुदाय के अन्य सदस्यों के समान अनुभवों से जुड़ जाए। संगठन इसी सामूहिक अनुभव को राजनीतिक-सामाजिक मांग में ढालता है। इसीलिए दलित आंदोलनों में सभा, महासभा, परिषद, शैक्षिक संस्था और राजनीतिक दल जैसे विविध संगठनात्मक रूप विकसित हुए, जिन्होंने शिक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा, रोजगार, राजनीतिक भागीदारी और सार्वजनिक अधिकारों के प्रश्न उठाए।

राजनीतिक चेतना का उन्मेष दलित आंदोलन का एक निर्णायक चरण था। दीर्घकाल तक सामाजिक रूप से हाशिए पर रहे समुदायों को सत्ता-संरचना और निर्णय-प्रक्रिया में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला था। दलित चेतना ने यह प्रश्न उठाया कि लोकतंत्र में केवल राजनीतिक स्वाधीनता पर्याप्त नहीं; समाज के हर वर्ग को सत्ता-संरचना में सहभागिता का अवसर मिलना चाहिए यही मांग आम्बेडकरवादी चिंतन का मूल स्तंभ बनी। पूना समझौता (1932) इसी व्यापक राजनीतिक संदर्भ में एक निर्णायक घटना सिद्ध हुआ, जिसके माध्यम से दलित प्रतिनिधित्व का सवाल राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में आ गया।⁸ यद्यपि इसके राजनीतिक निहितार्थों को लेकर इतिहासकारों और चिंतकों में मतभेद रहे हैं, फिर भी निर्विवाद है कि इस घटना ने दलित प्रतिनिधित्व के प्रश्न को भारतीय राजनीतिक विमर्श में स्थायी स्थान दिलाया। सामाजिक संघर्षों का महत्व केवल तात्कालिक मांगों की पूर्ति तक सीमित नहीं था इन संघर्षों ने दलित समाज में आत्मगौरव और अधिकार-भावना का सृजन किया। जब किसी समुदाय को सार्वजनिक संसाधनों, शिक्षा, धार्मिक स्थलों या राजनीतिक संस्थाओं में समान सहभागिता से रोका जाता है, तो उसके विरुद्ध उठा प्रतिरोध सामाजिक संबंधों की संपूर्ण संरचना पर प्रश्न खड़ा करता है इसी प्रकार आंदोलन सामाजिक परिवर्तन के वाहक बन जाते हैं।

उत्तर प्रदेश में स्वामी अछूतानन्द का आदि हिन्दू आंदोलन इसका सशक्त उदाहरण है, जिसने दलित समुदायों में यह भावना जागृत की कि उनकी सामाजिक अस्मिता और इतिहास की व्याख्या स्वयं उनकी दृष्टि से होनी चाहिए। बाद के वर्षों में विभिन्न स्थानीय संगठनों, विशेषतः जाटव समुदाय के सामाजिक-शैक्षिक प्रयासों ने भी इस चेतना को गति दी, जिसमें शिक्षा, संगठन और सामाजिक प्रतिष्ठा परस्पर गुंथे रहे। दलित चेतना के निर्माण में पत्रकारिता और साहित्य की भूमिका भी उल्लेखनीय रही। समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं तथा पर्चों ने सामाजिक-राजनीतिक विचारों को व्यापक जनसमूह तक पहुंचाया। उत्तर प्रदेश में सीमित स्तर पर प्रकाशित होने वाले साहित्य ने भी ग्रामीण अंचलों में राजनीतिक चेतना के प्रसार में योगदान दिया। बद्री नारायण के अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि ऐसी सामग्री केवल साक्षर-अर्धसाक्षर वर्ग तक सीमित न रहकर मौखिक चर्चा के माध्यम से व्यापक समुदाय तक भी पहुंचती रही।⁹

दलित चेतना और सामाजिक परिवर्तन का पारस्परिक संबंध

दलित चेतना और सामाजिक परिवर्तन को एक-दूसरे से पृथक कर समझना संभव नहीं। सामाजिक विषमता ने चेतना के उदय हेतु उपयुक्त परिस्थितियाँ निर्मित कीं, और उभरी हुई चेतना ने उसी विषमता के विरुद्ध सामाजिक संघर्षों को जन्म दिया। इस अर्थ में दलित चेतना एक साथ सामाजिक परिवर्तन का परिणाम भी है और उसकी प्रेरक शक्ति भी। सामाजिक क्षेत्र में इसका सर्वाधिक स्पष्ट प्रभाव सम्मान और समता की मांग के रूप में प्रकट हुआ। जातिगत दूरी और छुआछूत को चुनौती देते हुए दलित समुदायों ने सार्वजनिक जीवन में समान भागीदारी की मांग रखी, जिससे सामाजिक संबंधों में परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ हुई। यद्यपि यह परिवर्तन सभी क्षेत्रों और समुदायों में समान गति से नहीं हुआ, फिर भी जातिगत भेदभाव को सहज-स्वाभाविक मानने की मानसिकता को गंभीर चुनौती अवश्य मिली। शिक्षा के क्षेत्र में दलित चेतना का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा। शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता और आत्मगौरव का साधन स्वीकार किया गया। सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं में प्रवेश के साथ दलित समुदाय में एक नया शिक्षित वर्ग विकसित हुआ, जिसने प्रशासन, अध्यापन, राजनीति, साहित्य और सामाजिक संगठनों में सक्रिय भूमिका निभाई इस प्रकार शिक्षा ने सामाजिक चेतना को संस्थागत रूप प्रदान किया। राजनीतिक क्षेत्र में दलित चेतना ने प्रतिनिधित्व के प्रश्न को केंद्रीय बनाया। संविधान-निर्माण के पश्चात समान नागरिकता, अस्पृश्यता-उन्मूलन और अनुसूचित जातियों हेतु विशेष संवैधानिक प्रावधानों ने दलित अधिकारों को कानूनी आधार प्रदान किया। आरक्षण-व्यवस्था ने शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी में नए द्वार खोले। किंतु मात्र संवैधानिक प्रावधानों की उपस्थिति को सामाजिक समता की पूर्ण उपलब्धि मान लेना भ्रामक होगा विधि और सामाजिक व्यवहार के बीच बना हुआ अंतर समझना आवश्यक है।

स्वतंत्रता-पश्चात उत्तर प्रदेश में दलित सार्वजनिक तथा राजनीतिक चेतना के विकास को समझने हेतु बद्री नारायण का अध्ययन विशेष रूप से सहायक है, जिन्होंने राज्य में दलित समुदायों के राजनीतिकरण, स्थानीय संघर्षों, सामुदायिक स्मृतियों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण की प्रक्रिया की गहन पड़ताल की है। स्थानीय आंदोलन यह प्रमाणित करते हैं कि दलित चेतना केवल राष्ट्रीय राजनीति की प्रतिध्वनि मात्र नहीं थी, अपितु स्थानीय सामाजिक संबंधों, आर्थिक दशाओं और सामुदायिक अनुभवों से भी उसका सतत निर्माण होता रहा। सांस्कृतिक क्षेत्र में दलित चेतना ने वैकल्पिक अस्मिता और सामूहिक स्मृति को महत्व दिया। दलित साहित्य तथा आत्मकथाओं ने सामाजिक अनुभवों को स्वयं दलित दृष्टिकोण से अभिव्यक्त किया, जिससे उन अनुभवों को सार्वजनिक मंच मिला जो लंबे समय तक मुख्यधारा साहित्य और इतिहास-लेखन में उपेक्षित रहे थे। अपने नायकों, संघर्षों और अतीत की पुनर्स्मृति ने सामुदायिक आत्मविश्वास को सुदृढ़ किया इस प्रकार संस्कृति भी सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनी। आर्थिक क्षेत्र में दलित चेतना ने परंपरागत पेशागत बंधनों और आर्थिक परावलंबन की चुनौती दी। शिक्षा, सरकारी सेवाओं तथा नवीन व्यवसायों ने सामाजिक गतिशीलता की संभावनाओं को विस्तार दिया। आम्बेडकर ने जाति-आधारित वंशानुगत व्यवसाय-व्यवस्था की आलोचना करते हुए सामाजिक-आर्थिक स्वाधीनता को व्यापक मुक्ति-प्रक्रिया से जोड़ा उनकी दृष्टि में सामाजिक समता केवल सम्मान-प्राप्ति तक सीमित नहीं, बल्कि आर्थिक अवसर और स्वतंत्र जीवन-संभावनाओं से भी संबद्ध थी। तथापि दलित सामाजिक परिवर्तन को एकसमान अथवा रैखिक प्रक्रिया मानना उचित नहीं होगा। दलित समुदायों के भीतर भी आर्थिक, शैक्षिक, क्षेत्रीय और सामाजिक असमानताएँ विद्यमान रही हैं कुछ समुदायों को शिक्षा और राजनीतिक प्रतिनिधित्व से तुलनात्मक रूप से अधिक लाभ मिला, जबकि अन्य समूह दीर्घकाल तक अपेक्षाकृत वंचित बने रहे।

समकालीन प्रासंगिकता एवं निष्कर्ष

आज के भारत में दलित चेतना ने अपनी ऐतिहासिक जड़ों को सुरक्षित रखते हुए नए आयामों को भी अपने भीतर समाहित किया है। शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, सामाजिक न्याय, संवैधानिक अधिकार, सांस्कृतिक अस्मिता, साहित्य और डिजिटल माध्यम इसके वर्तमान स्वरूप के प्रमुख आयाम हैं। वर्तमान में दलित समुदाय अपने अनुभवों को स्थानीय दायरों से बाहर व्यापक सार्वजनिक मंच पर व्यक्त करने में अधिक समर्थ हुआ है, और सामाजिक मीडिया तथा डिजिटल संचार ने अभिव्यक्ति व संगठन के नवीन अवसर उपलब्ध कराए हैं। फिर भी जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार, अवसरों की असमानता तथा प्रतिनिधित्व से जुड़े प्रश्न अभी पूर्णतः निर्मूल नहीं हुए हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि संवैधानिक समता और वास्तविक सामाजिक समता के बीच अंतराल अब भी बना हुआ है। इसलिए समकालीन दलित चेतना केवल ऐतिहासिक अन्याय की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान में समान अवसर, सम्मान और न्याय की सक्रिय मांग से भी जुड़ी हुई

है। समकालीन दौर में दलित चेतना की भाषा में भी बदलाव स्पष्ट दिखता है। प्रारंभिक चरण में जहाँ छुआछूत और सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध संघर्ष प्रमुख था, वहीं परवर्ती चरण में सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, संवैधानिक अधिकार और अस्मिता के प्रश्न अधिक मुखर हुए। आज गरिमा, समान अवसर, शिक्षा, रोजगार तथा सार्वजनिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व भी इसके महत्वपूर्ण पक्ष बन गए हैं। अतः दलित चेतना को स्थिर संकल्पना के रूप में नहीं, बल्कि काल और परिस्थिति के अनुसार निरंतर विकसित होने वाली सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए।

समग्रतः देखें तो दलित चेतना का इतिहास सामाजिक विषमता के अनुभव से आत्मगौरव और अधिकार-चेतना की ओर बढ़ने की यात्रा है। यह चेतना किसी एक नेता, संगठन अथवा आंदोलन की उपज नहीं। इसके निर्माण में सामाजिक अनुभव, शिक्षा, सुधारवादी आंदोलन, स्थानीय नेतृत्व, संगठन, पत्रकारिता, साहित्य तथा राजनीतिक संघर्ष सबकी संयुक्त भूमिका रही। डॉ. आम्बेडकर ने इस प्रक्रिया को व्यापक वैचारिक दिशा प्रदान करते हुए सामाजिक मुक्ति को स्वाधीनता, समता और मानवीय गरिमा से जोड़ा। उनका 1942 का आह्वान शिक्षित होने, आंदोलनरत रहने और संगठित होने का दलित चेतना को सामूहिक परिवर्तन की प्रक्रिया से अटूट रूप से जोड़ता है।

उत्तर प्रदेश के संदर्भ में स्वामी अछूतानन्द और आदि हिन्दू आंदोलन से लेकर जाटव संगठनों, शैक्षिक प्रयासों और स्वतंत्रता-पश्चात राजनीतिक लामबंदी तक अनेक स्थानीय प्रक्रियाओं ने इस चेतना को ठोस सामाजिक आधार दिया। इन प्रक्रियाओं ने दलित समाज को केवल सामाजिक सुधार का निष्क्रिय विषय बनाए रखने के बजाय उसे अपनी अस्मिता और सामाजिक स्थिति के परिवर्तन का सक्रिय पक्षधर बनाया। अतः यह निष्कर्ष सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि दलित चेतना सामाजिक परिवर्तन की केवल प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि स्वयं उस परिवर्तन की महत्वपूर्ण वाहक शक्ति है। जब वंचित समुदाय अपने अनुभवों को पहचानता है, उन्हें सामूहिक प्रश्न का रूप देता है और समान अधिकार हेतु संगठित होता है, तब सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को नई दिशा प्राप्त होती है। इस दृष्टि से दलित चेतना का अध्ययन केवल दलित समाज के इतिहास को समझने का साधन नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र में समता, सामाजिक न्याय, प्रतिनिधित्व और मानवीय गरिमा के विकास को समझने का भी महत्वपूर्ण आधार है।

संदर्भ :-

- ¹ माइकल, एस. एम., आधुनिक भारत में दलित दृष्टि एवं मूल्य, सेज, पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ.102-103.
- ² वही, पृ.262.
- ³ माइकल, एस. एम., आधुनिक भारत में दलित दृष्टि एवं मूल्य, सेज, पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 95.
- ⁴ Ambedkar, Babasaheb, Writings and Speeches, vol-17, part-2, dr. Ambedkar foundation, ministry of social justice and empowerment, government of India, 1979, P-421.
- ⁵ Dey, Monisha, Water Justice and Caste Exclusion Understanding Mahad Satyagraha and its Contemporary Implications, IMPR, Vol.3, Issue 1, January -June 2024, pp.88-91.
- ⁶ लाला, अंगले, राहुल, राज, उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, पृ. 23.
- ⁷ नैमिशराय, मोहनदास, भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास, वॉल्यूम-3, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 2022, पृ. 212.
- ⁸ सिंह, निशांत, दलित चेतना के विविध आयाम, सानिया पब्लिकेशन, 2024, पृ. 83.
- ⁹ सिंह, अर्चना, बद्रीनारायण (संपादक), माटी पानी में सनी बौद्धिकता, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2023 पृ. 129.

सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका: सारण जिले का अध्ययन

Dr. Dilip Kumar Manjhi*

dilipkr13@gmail.com

सारांश

सामाजिक न्याय और समावेशी विकास आधुनिक लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी राज्य की आधारभूत अवधारणाएँ हैं। सामाजिक न्याय का उद्देश्य केवल संसाधनों का वितरण नहीं, बल्कि समाज के वंचित, कमजोर और हाशिये पर स्थित समुदायों को समान अवसर, गरिमा, अधिकार तथा निर्णय-प्रक्रिया में सहभागिता उपलब्ध कराना है। भारत में सरकारी प्रयासों के साथ गैर-सरकारी संगठन सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भागीदार के रूप में उभरे हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र बिहार के सारण जिले के विशेष संदर्भ में शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, बाल अधिकार, कौशल विकास, सामाजिक सुरक्षा और सामुदायिक सहभागिता के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका का विश्लेषण करता है। अध्ययन वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा केस-अध्ययन आधारित है और मुख्यतः सरकारी अभिलेखों, जिला-स्तरीय आँकड़ों, संस्थागत रिपोर्टों पर आधारित है। सारण की 2011 की जनगणना-आधारित जनसंख्या 39.52 लाख थी और महिला साक्षरता पुरुषों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से कम थी, जो सामाजिक एवं लैंगिक असमानता की चुनौती को रेखांकित करती है। अध्ययन में मस्तीचक स्थित अखंड ज्योति के स्वास्थ्य एवं बालिका सशक्तिकरण मॉडल, 'उन्नयन सारण' की शिक्षा-आधारित प्रशासन गैर-सरकारी संगठन साझेदारी और 2025 में गैर-सरकारी संगठन की सूचना के आधार पर 17 नाबालिग लड़कियों के बचाव जैसी घटनाओं को स्थानीय उदाहरण के रूप में विश्लेषित किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि गैर-सरकारी संगठन सरकार के विकल्प नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की अंतिम-मील पहुँच, नवाचार, अधिकार-संरक्षण, सामाजिक जागरूकता तथा समुदाय-आधारित विकास में महत्वपूर्ण पूरक संस्थाएँ हैं। हालाँकि पारदर्शिता, वित्तीय स्थिरता, पेशेवर क्षमता, उत्तरदायित्व तथा स्वतंत्र प्रभाव-मूल्यांकन को सुदृढ़ किए बिना इनकी दीर्घकालीन भूमिका सीमित रह सकती है।

प्रमुख शब्द: सामाजिक न्याय, समावेशी विकास, गैर-सरकारी संगठन, सारण जिला, महिला सशक्तिकरण, बाल अधिकार, स्वास्थ्य, शिक्षा, नागरिक समाज।

प्रस्तावना

भारत का संविधान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था की कल्पना करता है। संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को राष्ट्र की आधारभूत प्रतिबद्धताओं के रूप में स्थापित किया गया है। अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद 15 भेदभाव के निषेध, अनुच्छेद 21 गरिमापूर्ण जीवन, अनुच्छेद 21A शिक्षा के अधिकार तथा राज्य के नीति-निर्देशक तत्व सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम करने की दिशा प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 38 विशेष रूप से ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने की अपेक्षा करता है जिसमें न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को प्रभावित करे। किन्तु संवैधानिक समानता और सामाजिक वास्तविकता के बीच अंतर भारतीय समाज की प्रमुख विकासात्मक चुनौती बनी हुई है। जाति, लिंग, गरीबी, ग्रामीण-शहरी अंतर, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच, दिव्यांगता, आय और सामाजिक स्थिति के कारण विभिन्न समूह विकास की प्रक्रिया में समान रूप से भाग नहीं ले पाते। इसी संदर्भ में 'समावेशी विकास' की अवधारणा महत्वपूर्ण होती है। समावेशी विकास का अर्थ केवल सकल आय में वृद्धि नहीं, बल्कि ऐसी विकास-प्रक्रिया से है जिसमें समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को विकास के अवसरों, संसाधनों तथा लाभों तक न्यायपूर्ण पहुँच प्राप्त हो।

* Vill -Ramnagar, Po- Sandha, Ps- Chapra Muffasil, Dist- Saran

अमर्त्य सेन (1999) ने विकास को केवल आर्थिक वृद्धि के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य की वास्तविक स्वतंत्रताओं और क्षमताओं के विस्तार के रूप में समझाया। इस दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका, निर्णय-क्षमता और सामाजिक भागीदारी स्वयं विकास के केंद्रीय तत्व हैं। इसी प्रकार Rawls (1971) का न्याय-सिद्धांत सबसे कम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों की स्थिति में सुधार को न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार मानता है। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में गैर-सरकारी संगठन राज्य और नागरिक समाज के मध्य एक महत्वपूर्ण संस्थागत सेतु बनते हैं। ये संस्थाएँ स्थानीय समुदायों के साथ निकट संपर्क, स्वैच्छिक पहल, सामाजिक नवाचार तथा विशिष्ट समस्याओं पर केंद्रित हस्तक्षेप के कारण सरकारी योजनाओं को अंतिम लाभार्थी तक पहुँचाने, वंचित समूहों को संगठित करने और सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में सहायक हो सकती हैं।

भारत सरकार की नीति-व्यवस्था भी स्वैच्छिक क्षेत्र की भूमिका को मान्यता देती है। नीति आयोग के Voluntary Action Cell के अनुसार स्वैच्छिक क्षेत्र देश की विकास प्रक्रिया और प्रभावी सार्वजनिक सेवा प्रदायगी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा सरकार-स्वैच्छिक क्षेत्र साझेदारी को बढ़ावा देना इसकी प्रमुख जिम्मेदारियों में सम्मिलित है। नीति आयोग की 2025-26 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार गैर-सरकारी संगठन दर्पण पर पाँच लाख से अधिक गैर-लाभकारी संस्थाएँ पंजीकृत हो चुकी थीं, जो भारत में स्वैच्छिक क्षेत्र के विस्तार का संकेत देती हैं। इसी संदर्भ में सारण जिला एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय अध्ययन प्रस्तुत करता है। घनी ग्रामीण आबादी, लैंगिक शैक्षिक अंतर, स्वास्थ्य आवश्यकताएँ, सामाजिक सुरक्षा की माँग तथा कमजोर समूहों की सुरक्षा जैसी स्थितियाँ गैर-सरकारी संगठन की भूमिका को विशेष रूप से प्रासंगिक बनाती हैं²।

सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की अवधारणा

सामाजिक न्याय को केवल आर्थिक सहायता के रूप में समझना पर्याप्त नहीं है। इसका संबंध संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण, सामाजिक मान्यता, अवसर की समानता, अधिकार-सुरक्षा और निर्णय-निर्माण में सहभागिता से है। सामाजिक न्याय की चार प्रमुख दिशाएँ समझी जा सकती हैं-

वितरणात्मक न्याय-शिक्षा, स्वास्थ्य, आय, रोजगार और सार्वजनिक सेवाओं तक न्यायपूर्ण पहुँच।

अवसरगत न्याय-व्यक्ति की जाति, लिंग, धर्म, निवास अथवा गरीबी उसकी प्रगति में अनुचित बाधा न बने।

मान्यतामूलक न्याय-वंचित समूहों की पहचान, अनुभव तथा गरिमा का सम्मान।

सहभागितामूलक न्याय-विकास से प्रभावित व्यक्ति और समुदाय नीति एवं कार्यक्रमों के निर्माण और क्रियान्वयन में भाग लें।

इसी प्रकार समावेशी विकास ऐसी प्रक्रिया है जिसमें आर्थिक वृद्धि का लाभ केवल उच्च आय वर्गों अथवा शहरी क्षेत्रों तक सीमित न होकर महिलाओं, दलितों, अल्पसंख्यकों, दिव्यांग व्यक्तियों, वृद्धजनों, गरीब परिवारों और ग्रामीण समुदायों तक पहुँचता है। इस दृष्टि से गैर-सरकारी संगठन का वास्तविक महत्व इस बात में है कि वे किसी लाभार्थी को केवल 'सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति' न मानकर अधिकार-संपन्न नागरिक में परिवर्तित करने की दिशा में कार्य करें।

सारण जिले की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

सारण बिहार का ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण जिला है। जिला प्रशासन द्वारा प्रकाशित जनगणना-आधारित आँकड़ों के अनुसार 2011 में सारण की कुल जनसंख्या 39,51,862 थी, जिसमें 20,22,821 पुरुष तथा 19,29,041 महिलाएँ थीं। जिले का क्षेत्रफल 2,641 वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या घनत्व 1,496 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था। लिंगानुपात 954 और बाल लिंगानुपात 926 था। औसत साक्षरता 65.96 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता 77.03 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता केवल 54.42 प्रतिशत दर्ज की गई थी³।

जिला शिक्षा विभाग की वर्तमान सार्वजनिक प्रोफाइल भी पुरुष और महिला साक्षरता के बीच स्पष्ट अंतर दिखाती है। इसमें कुल साक्षरता 67.17 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता 77.89 प्रतिशत और महिला साक्षरता 55.13 प्रतिशत सूचीबद्ध है। साथ ही जिले में 1,436 प्राथमिक विद्यालय, 1,003 मध्य विद्यालय तथा 357 उच्च विद्यालय दर्ज हैं। यह स्थिति एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने रखती है **संस्थागत उपलब्धता और सामाजिक परिणाम एक ही बात नहीं हैं**⁴। विद्यालयों की संख्या पर्याप्त होने पर भी महिला साक्षरता कम रह सकती है यदि गरीबी, बाल विवाह, घरेलू श्रम, सामाजिक रूढ़ियाँ और

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कमी जैसी बाधाएँ मौजूद हों। स्वास्थ्य क्षेत्र में सारण जिले में एक सदर अस्पताल, एक अनुमंडलीय अस्पताल, तीन रेफरल अस्पताल, 20 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, 43 अतिरिक्त प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और 414 स्वास्थ्य उपकेंद्र सूचीबद्ध हैं। इसके बावजूद दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों, विशिष्ट चिकित्सा, स्वास्थ्य जागरूकता और कमजोर समूहों की पहुँच के लिए पूरक सामुदायिक प्रयासों की आवश्यकता बनी रहती है। जिला प्रशासनिक संरचना में जिला ग्रामीण विकास एजेंसी, जिला कल्याण कार्यालय, सामाजिक सुरक्षा सेल, एकीकृत बाल विकास सेवाएँ और जिला बाल संरक्षण कार्यालय जैसी संस्थाएँ भी सम्मिलित हैं। अतः सारण में सामाजिक न्याय का प्रश्न सरकारी संस्थाओं के अभाव से अधिक इन सेवाओं की समान और प्रभावी पहुँच से जुड़ा है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. सारण जिले में सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास की प्रक्रिया में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका का अध्ययन करना।
2. शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, बाल अधिकार एवं कमजोर समुदायों के संदर्भ में गैर-सरकारी संगठन के योगदान का विश्लेषण करना।
3. सरकार और गैर-सरकारी संगठनों के बीच सहयोगात्मक विकास मॉडल का अध्ययन करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं केस-अध्ययन आधारित है। इसमें प्राथमिक सर्वेक्षण के काल्पनिक आँकड़े प्रस्तुत करने के बजाय उपलब्ध सत्यापित द्वितीयक अनुभवजन्य सामग्री का उपयोग किया गया है।

अध्ययन के स्रोतों में-

- सारण जिला प्रशासन;
- भारत की जनगणना;
- नीति आयोग;
- राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग;
- चयनित स्थानीय गैर-सरकारी संगठन के संस्थागत अभिलेख;
- peer-reviewed शोध-पत्र;
- गैर-सरकारी संगठन एवं नागरिक समाज संबंधी मानक अकादमिक साहित्य सम्मिलित हैं।

गैर-सरकारी संगठन की अपनी वेबसाइट से प्राप्त लाभार्थी अथवा उपलब्धि-संबंधी आँकड़ों को स्व-रिपोर्ट किया गया डेटा के रूप में माना गया है और उन्हें स्वतंत्र सरकारी मूल्यांकन के समान प्रस्तुत नहीं किया गया है।

साहित्य समीक्षा

Korten (1990) ने गैर-सरकारी संगठन के विकास को राहत-आधारित गतिविधियों से सामुदायिक विकास और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में विकसित होते हुए समझाया है। उनके अनुसार प्रारंभिक गैर-सरकारी संगठन तत्काल आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, जबकि अधिक विकसित संगठन स्थानीय समुदायों को अपनी समस्याओं का समाधान करने योग्य बनाते हैं⁵।

Lewis और Kanji (2009) ने गैर-सरकारी संगठन को विकास-प्रक्रिया में सेवा वितरण, उत्प्रेरक और साझेदारी की भूमिकाओं से जोड़ा। यह वर्गीकरण सारण जैसे क्षेत्र में विशेष रूप से उपयोगी है, क्योंकि गैर-सरकारी संगठन कभी चिकित्सा अथवा शिक्षा जैसी प्रत्यक्ष सेवा देते हैं, कभी सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करते हैं और कभी सरकारी प्रशासन के सहयोगी बनते हैं⁶।

Adhikari और Heller (2024) ने भारत में नागरिक समाज और कल्याणकारी अधिकारों के संस्थानीकरण के संबंध का विश्लेषण किया। उनका अध्ययन बताता है कि नागरिक समाज की लामबंदी ने शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, रोजगार और गरीबी उन्मूलन जैसे क्षेत्रों में rights-based welfare के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

बिहार में गैर-सरकारी संगठन-आधारित आजीविका कार्यक्रमों पर Kriti, Singh और Mohapatra (2025) ने 450 ग्रामीण महिलाओं का अध्ययन किया। परिणामों में गैर-सरकारी संगठन-नेतृत्व वाले आजीविका हस्तक्षेपों के बाद अनेक गतिविधियों में आय और बचत बढ़ने के प्रमाण मिले। उदाहरणतः सिलाई से जुड़ी महिलाओं की औसत आय अध्ययन में ₹7,600 से बढ़कर ₹16,000 बताई गई। ग्रामीण बिहार की 815 महिलाओं पर Leach et al. के अध्ययन ने सामुदायिक एवं नागरिक सहभागिता के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया और संगठित सामुदायिक विकास प्रक्रियाओं को महिला सहभागिता से जोड़ा। इन अध्ययनों से स्पष्ट है कि गैर-सरकारी संगठन का योगदान केवल प्रत्यक्ष सहायता तक सीमित न होकर आर्थिक क्षमता, सामाजिक सहभागिता और नागरिक सशक्तिकरण से भी जुड़ा हो सकता है। किन्तु सारण जिले पर केंद्रित समेकित सामाजिक न्याय अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है। यही इस अध्ययन का प्रमुख शोध-अंतराल है।

शिक्षा में समावेशन और गैर-सरकारी संगठन की भूमिका

शिक्षा सामाजिक न्याय का सबसे सशक्त साधन है। यह व्यक्ति को केवल रोजगार के अवसर नहीं देती, बल्कि सामाजिक गतिशीलता, नागरिक चेतना और निर्णय क्षमता विकसित करती है। सारण में बड़ी संख्या में सरकारी विद्यालय मौजूद हैं, किन्तु महिला साक्षरता में उल्लेखनीय अंतर बताता है कि केवल विद्यालय स्थापना पर्याप्त नहीं है। गैर-सरकारी संगठन यहाँ डिजिटल संसाधन, अतिरिक्त शिक्षण, सामुदायिक जागरूकता, स्कूल-छोड़ चुके बच्चों की पहचान तथा शिक्षक सहयोग जैसी भूमिका निभा सकते हैं⁷।

उदाहरण: उन्नयन सारण

उन्नयन सारण सरकार और नागरिक समाज की साझेदारी का उपयोगी उदाहरण है। कार्यक्रम के संस्थागत विवरण के अनुसार इसे अगस्त 2018 में सारण जिला प्रशासन ने सारस के सहयोग से प्रारंभ किया था। पाँच सरकारी विद्यालयों से शुरू किया गया कार्यक्रम बाद में 95 सरकारी माध्यमिक विद्यालयों तक विस्तारित हुआ और संस्था 40,000 से अधिक विद्यार्थियों तक पहुँच का दावा करती है। इस कार्यक्रम में डिजिटल पाठ्य सामग्री, स्मार्ट कक्षा, मूल्यांकन और मोबाइल आधारित सीखने जैसी गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। सामाजिक न्याय की दृष्टि से इसका महत्त्व इसलिए है कि तकनीकी शिक्षा केवल निजी विद्यालयों के संपन्न विद्यार्थियों तक सीमित न रहकर सरकारी विद्यालयों के बच्चों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया⁸। यद्यपि संस्था द्वारा बताए गए प्रभाव-आँकड़ों का स्वतंत्र मूल्यांकन आवश्यक है, यह मॉडल दिखाता है कि गैर-सरकारी संगठन सरकार के स्थान पर विद्यालय चलाने के बजाय **सरकारी शिक्षा व्यवस्था की क्षमता को मजबूत** कर सकता है।

स्वास्थ्य न्याय और अखंड ज्योति का उदाहरण

स्वास्थ्य में असमानता सामाजिक न्याय का प्रमुख प्रश्न है। गरीब ग्रामीण परिवार कई बार विशिष्ट चिकित्सा सेवा तक आर्थिक, भौगोलिक अथवा सूचना संबंधी बाधाओं के कारण नहीं पहुँच पाते। सारण जिले के मस्तीचक स्थित **अखंड ज्योति** इस संदर्भ में महत्वपूर्ण स्थानीय गैर-सरकारी संगठन उदाहरण है। संस्था 2005 में स्थापित हुई और उपचार योग्य दृष्टिहीनता को समाप्त करने के उद्देश्य से कार्य करती है। इसके सेंटर ऑफ़ एकसीलेस के सेल्फ-रिपोर्टेड जून 2023-मई 2024 आँकड़ों में **1,03,292 नेत्र-शल्यक्रियाएँ, 4,84,503 वयस्कों की स्क्रीनिंग, 1,35,370 बच्चों की स्क्रीनिंग तथा 1,032 बाल नेत्र-शल्यक्रियाएँ** दर्ज हैं। इन संख्याओं को संस्था द्वारा प्रकाशित प्रोग्राम डेटा के रूप में समझना चाहिए, फिर भी वे ग्रामीण क्षेत्र में बड़े पैमाने पर विशिष्ट स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने की गैर-सरकारी संगठन क्षमता का संकेत देते हैं। सामाजिक न्याय की दृष्टि से स्वास्थ्य सेवा का वास्तविक अर्थ तब है जब किसी व्यक्ति की आय अथवा निवास-स्थान उसके उपचार के अधिकार में बाधा न बने। गैर-सरकारी संगठन की आउटरीच, कम्युनिटी स्क्रीनिंग और रेफरल व्यवस्था स्वास्थ्य सेवा की 'लास्ट-माइल गैप' कम करने में सहायक हो सकती है।

महिला सशक्तिकरण: कल्याण से क्षमता निर्माण तक

महिला सशक्तिकरण सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की केंद्रीय शर्त है। सारण में पुरुष और महिला साक्षरता के बीच बड़े अंतर को देखते हुए महिला शिक्षा, कौशल और आर्थिक स्वावलंबन विशेष महत्त्व रखते हैं। गैर-सरकारी संगठन कार्यक्रमों में महिलाओं को केवल सहायता प्राप्त करने वाली 'लाभार्थी' मानने के बजाय उन्हें निर्णयकर्ता, पेशेवर और सामाजिक नेतृत्वकर्ता बनाना अधिक प्रभावी दृष्टिकोण है⁹।

"फुटबॉल टू आईबॉल" कार्यक्रम

अनोखे ज्योति का फुटबॉल टू आईबॉल गर्ल्स एम्पावरमेंट प्रोग्राम इसी प्रकार का उदाहरण है। संस्था के अनुसार कार्यक्रम ग्रामीण और आर्थिक रूप से कमजोर लड़कियों को शिक्षा, फुटबॉल और ऑप्टोमेट्री प्रशिक्षण से जोड़ता है ताकि वे स्वास्थ्य पेशेवर और सामाजिक परिवर्तन की वाहक बन सकें। यह मॉडल तीन स्तरों पर सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है-

- **लैंगिक रूढ़ियों को चुनौती:** फुटबॉल जैसे सार्वजनिक खेल में लड़कियों की भागीदारी परंपरागत लैंगिक भूमिकाओं का विस्तार करती है।
- **व्यावसायिक कौशल:** ऑप्टोमेट्री प्रशिक्षण उन्हें पेशेवर पहचान और आर्थिक अवसर से जोड़ती है।
- **सामाजिक नेतृत्व:** प्रशिक्षित लड़कियाँ स्वयं ग्रामीण स्वास्थ्य-व्यवस्था का हिस्सा बन सकती हैं।

आजीविका एवं आर्थिक न्याय

आर्थिक निर्भरता सामाजिक बहिष्करण का महत्वपूर्ण कारण है। गरीब परिवारों, विशेषतः ग्रामीण महिलाओं के लिए आय-सृजन सामाजिक और पारिवारिक निर्णय-क्षमता को प्रभावित कर सकता है। बिहार की 450 महिलाओं पर गैर-सरकारी संगठन- आजीविका संबंधी पहल का नेतृत्व किया के अध्ययन में सिलाई, खेती, हस्तशिल्प, पशुपालन, गृह-आधारित कृषि और खाद्य प्रसंस्करण गतिविधियों में आय एवं बचत बढ़ने के प्रमाण मिले। हालांकि यह अध्ययन केवल सारण पर आधारित नहीं है, इससे सारण जैसे ग्रामीण जिले में गैर-सरकारी संगठन के लिए एक उपयोगी विकास मॉडल प्राप्त होता है- **कौशल + वित्तीय साक्षरता + बाजार संपर्क + सामुदायिक समूह = अधिक टिकाऊ आजीविका**। केवल सिलाई मशीन अथवा पशु वितरित करने से दीर्घकालिक गरीबी उन्मूलन नहीं होता। गैर-सरकारी संगठन की भूमिका प्रशिक्षण के साथ बाजार, ऋण, उत्पादन, डिजिटल भुगतान और उद्यमिता से लाभार्थी को जोड़ने में होनी चाहिए¹⁰।

बाल अधिकार और सामाजिक न्याय

बच्चे किसी भी समाज के सबसे संवेदनशील समूहों में हैं। बाल श्रम, तस्करी, यौन शोषण, स्कूल से बाहर होना और बाल विवाह सामाजिक न्याय के गंभीर प्रश्न हैं। सारण में 2025 की एक घटना गैर-सरकारी संगठन की निगरानी और अधिकार-संरक्षण भूमिका का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की 19 मई 2025 की आधिकारिक प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार आयोग को एक गैर-सरकारी संगठन से सूचना मिली कि सारण जिले में स्थानीय ऑर्केस्ट्रा ग्रुप्स में कई नाबालिग लड़कियों को अश्लील नृत्य करने के लिए मजबूर किया जा रहा है। आयोग के निर्देश के बाद सारण पुलिस ने विशेष बचाव अभियान चलाया और 17 नाबालिग लड़कियों को रिहा-छह मशरक, सात पानापुर और चार इसुआपुर से। लड़कियों को पुनर्वास संबंधी निर्णय के लिए बाल कल्याण समिति के उदाहरण प्रस्तुत किया गया। **यह घटना गैर-सरकारी संगठन की चार महत्वपूर्ण भूमिकाएँ दिखाती है-**

- शोषण की पहचान;
- पीड़ित समूह तक पहुँच;
- संवैधानिक/कानूनी संस्था को सूचना;
- प्रशासन को जवाबदेह बनाने में सहयोग।

अर्थात गैर-सरकारी संगठन केवल कल्याण प्रदाता नहीं बल्कि अधिकार प्रहरी भी हो सकता है।

दिव्यांगजन, विधवा एवं वृद्धजन के संदर्भ में सामाजिक समावेशन

सामाजिक न्याय की चर्चा तब अधूरी रहती है जब दिव्यांग व्यक्तियों, विधवाओं तथा वृद्धजनों को शामिल नहीं किया जाता। सारण जिला सामाजिक कल्याण विभाग की सूची में बिहार राज्य दिव्यांगता पेंशन, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय दिव्यांगता पेंशन, लक्ष्मीबाई सामाजिक सुरक्षा पेंशन, विधवा पेंशन तथा वृद्धावस्था पेंशन जैसी योजनाएँ उपलब्ध हैं। इन योजनाओं का संचालन सरकार करती है, परंतु गैर-सरकारी संगठन की उपयोगी भूमिका हो सकती है—

- पात्र लाभार्थियों की पहचान;
- दस्तावेज तैयार कराने में सहायता;
- दिव्यांग प्रमाणपत्र की प्रक्रिया की जानकारी;

- डिजिटल आवेदन सहायता;
- बैंकिंग एवं वित्तीय साक्षरता;
- अधिकारों के प्रति जागरूकता;
- सरकारी कार्यालयों और लाभार्थी के बीच संपर्क।

इस प्रकार सामाजिक न्याय में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका हमेशा अपनी अलग योजना चलाना नहीं है; कभी-कभी मौजूदा सरकारी अधिकार और वास्तविक लाभार्थी के बीच की दूरी कम करना अधिक महत्वपूर्ण होता है¹¹।

राज्य और गैर-सरकारी संगठन: प्रतिस्पर्धा नहीं, सहभागिता

यह धारणा कि गैर-सरकारी संगठन सरकारी विफलता का विकल्प हैं, अत्यधिक सरल है। राज्य के पास संवैधानिक वैधता, कर-आधारित संसाधन, सार्वभौमिक सेवा दायित्व और कानूनी अधिकार हैं; गैर-सरकारी संगठन के पास ये सभी शक्तियाँ नहीं होतीं।

इसके विपरीत गैर-सरकारी संगठन की शक्तियाँ हैं-

- स्थानीय स्तर पर लचीलापन;
- समुदाय से प्रत्यक्ष संपर्क;
- छोटे पैमाने पर नवाचार;
- सामाजिक विश्वास;
- विशेष समूहों तक पहुँच;
- त्वरित प्रयोग।

इसलिए सामाजिक न्याय के लिए प्रभावी मॉडल सरकार-गैर-सरकारी संगठन-समुदाय साझेदारी है। नीति आयोग स्वयंस्वसेवी संगठनों को सार्वजनिक सेवा प्रदायगी और विकास प्रक्रिया में भागीदार मानता है। सारण में उन्नयन सारण इसकी शिक्षा-आधारित अभिव्यक्ति है, जबकि 2025 की बालिका बचाव घटना गैर-सरकारी संगठन-राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग-पुलिस-बाल कल्याण समिति के अधिकार-संरक्षण नेटवर्क का उदाहरण है।

गैर-सरकारी संगठनों की प्रमुख चुनौतियाँ

- अनेक छोटे गैर-सरकारी संगठन अनुदान, कॉर्पोरेट की सामाजिक जिम्मेदारी या दान पर निर्भर होते हैं। परियोजना वित्त समाप्त होते ही गतिविधियाँ बाधित हो सकती हैं। इससे दीर्घकालिक विकास के बजाय अल्पकालिक कार्यक्रमों की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।
- समाज सेवा का दावा अपने आप प्रभावशीलता सिद्ध नहीं करता। संस्था के ऑडिटेड अकाउंट्स, गवर्नेंस स्ट्रक्चर, बेनिफिशियरी सिलेक्शन और प्रोग्राम आउटकम्स साफ होने चाहिए।
- गैर-सरकारी संगठन दर्पण जैसी व्यवस्था इसी संस्थागत उत्तरदायित्व को मजबूत करने का प्रयास है। नीति आयोग की 2025-26 वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सरकारी अनुदान, FCRA पंजीकरण/नवीनीकरण तथा कुछ वित्तीय प्रक्रियाओं के संदर्भ में दर्पण ID का महत्व बढ़ा है।
- किसी गैर-सरकारी संगठन द्वारा 5,000 व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना उसका 'output' है; प्रशिक्षण के छह माह बाद कितने लोगों की आय, रोजगार अथवा सामाजिक स्थिति बदली, वह 'outcome' है¹²।
- कई परियोजनाएँ मुख्य सड़क अथवा शहरी केंद्र के आसपास अधिक सक्रिय रहती हैं। सामाजिक न्याय का वास्तविक परीक्षण यह है कि सबसे दूर स्थित गरीब, दलित, दिव्यांग अथवा सामाजिक रूप से अलग-थलग परिवार तक सेवा पहुँच रही है या नहीं।
- सामाजिक कार्य, डेटा प्रबंधन, वित्तीय अनुपालन, बाल सुरक्षा, लिंग विश्लेषण और निगरानी जैसी विशेषज्ञ क्षमताएं छोटे पैमाने पर सीमित हो सकती हैं।
- महिला रोजगार अथवा बालिका शिक्षा कार्यक्रम तभी सफल होंगे जब परिवार और समुदाय की सामाजिक मान्यताओं पर भी कार्य किया जाए। केवल प्रशिक्षण केंद्र खोलना पर्याप्त नहीं है।

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास लोकतांत्रिक समाज की ऐसी परियोजना है जो आर्थिक विकास से कहीं व्यापक है। इसका वास्तविक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति की जाति, लिंग, गरीबी, उम्र, दिव्यांगता अथवा निवास-स्थान उसके अवसरों को सीमित न करे। सारण जिले की सामाजिक संरचना से स्पष्ट है कि विकास की आवश्यकता केवल नई संस्थाएँ स्थापित करने तक सीमित नहीं हैं। विद्यालय, अस्पताल, पेंशन योजनाएँ और कल्याणकारी विभाग मौजूद होने के बावजूद सेवाओं की वास्तविक पहुँच, गुणवत्ता और सामाजिक स्वीकार्यता में अंतर बने रह सकते हैं। इसी अंतर में गैर-सरकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका सामने आती है।

अखंड ज्योति का उदाहरण दर्शाता है कि ग्रामीण स्वास्थ्य को महिला सशक्तिकरण से जोड़कर सामाजिक न्याय को बहुआयामी बनाया जा सकता है। उन्नयन सारण यह संकेत देता है कि नागरिक समाज तकनीक और स्थानीय समन्वय के माध्यम से सरकारी शिक्षा-व्यवस्था को मजबूत कर सकता है। वहीं सारण में 17 नाबालिग लड़कियों के बचाव का उदाहरण यह प्रमाणित करता है कि गैर-सरकारी संगठन मानवाधिकार उल्लंघन की पहचान और प्रशासनिक जवाबदेही में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। फिर भी सामाजिक न्याय की दृष्टि से गैर-सरकारी संगठन का रोमानीकरण नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्येक गैर-सरकारी संगठन स्वतः प्रतिनिधिक, पारदर्शी अथवा प्रभावी नहीं होता। धन के स्रोत, संगठनात्मक उत्तरदायित्व, लाभार्थियों का चयन, सामाजिक प्रतिनिधित्व तथा वास्तविक परिणामों का स्वतंत्र परीक्षण आवश्यक है। सारण जिले में एक टिकाऊ समावेशी विकास मॉडल का आधार **राज्य + नागरिक समाज + पंचायत + समुदाय** की सहयोगात्मक व्यवस्था होनी चाहिए। राज्य संवैधानिक अधिकार और संसाधन प्रदान करे, गैर-सरकारी संगठन नवाचार और अंतिम-मील पहुँच मजबूत करे, पंचायत स्थानीय उत्तरदायित्व सुनिश्चित करे और समुदाय निर्णय-प्रक्रिया में वास्तविक भागीदार बने। इसी प्रकार की सहभागितामूलक विकास व्यवस्था सामाजिक कल्याण को दान से अधिकार, लाभार्थी को नागरिक और विकास को केवल आर्थिक वृद्धि से सामाजिक न्याय की दिशा में परिवर्तित कर सकती है।

संदर्भ -

- ¹ अधिकारी, ए., और हेलर, पी. (2024). भारत में नागरिक समाज, राज्य और कल्याणकारी अधिकारों को संविधान बनाना। विश्व विकास, 182, 106687.
- ² एनहेयर, एच. के. (2014). गैर-लाभकारी संगठन: सिद्धांत, प्रबंधन, राजनीति (दूसरा संस्करण). रूटलेज.
- ³ बिहार सरकार. (2026). सारण जिले की जनसांख्यिकी. जिला प्रशासन, सारण.
- ⁴ बिहार सरकार. (2026). सारण जिले की शिक्षा प्रोफाइल. जिला प्रशासन, सारण.
- ⁵ लीच, के., जूलियन, एम., टेन बेन्सेल, टी., और थोम्ब्रे, ए. (2024). बिहार में गरीब ग्रामीण महिलाओं की नागरिक और सामुदायिक भागीदारी: एक पायलट अध्ययन. कैनेडियन जर्नल ऑफ़ नॉन-प्रॉफिट एंड सोशल इकोनॉमी रिसर्च, 15(2), 1-24.
- ⁶ लुईस, डी., और कांजी, एन. (2009). गैर-सरकारी संगठन और विकास. रूटलेज.
- राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग. (2025). सारण जिले में ऑर्केस्ट्रा समूह से 17 नाबालिग लड़कियों को तैनात किया गया. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार.
- ⁷ सरस. (2026). समेकित सारण: सारण में टेक्नोलॉजी और कम्युनिटी-बेस्ड एजुकेशन पहल.
- ⁸ कृति, के., सिंह, ए., और महापात्रा, एस. (2025). बिहार की ग्रामीण महिलाओं की आय बढ़ाने में NGO-संचालित आजीविका पहलों की परिमाण. इंडियन जर्नल ऑफ़ एक्सटेंशन एजुकेशन, 61(1), 61-65.
- ⁹ बिहार सरकार. (2026). समाज कल्याण विभाग: सामाजिक सुरक्षा और पेंशन योजनाएं. जिला प्रशासन, सारण.

- ¹⁰ पलायी, ए., कुमार, पी., और पडारिया, आर. एन. (2023). बिहार रूरल लाइवलीहुड्स प्रमोशन सोसाइटी (JEEViKA) के स्वयं-सहायता समूह (SHG) आधारित माइक्रोफाइनेंस कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी के कारक. इंडियन जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन.
- ¹¹ सरस. (2026). समेकित सारण: सारण में टेक्नोलॉजी और कम्युनिटी-बेस्ड एजुकेशन पहल.
- ¹² सलामन, एल. एम. (1995). पार्टनर्स इन पब्लिक सर्विस: गवर्नमेंट-नॉनप्रॉफिट रिलेशंस इन द मॉडर्न वेलफेयर स्टेट. जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस.

अन्य सहायक संदर्भ

- Korten, D. C. (1990). *Getting to the 21st Century: Voluntary Action and the Global Agenda*. West Hartford, CT: Kumarian Press.
- Leach, K., Julian, M., Ten Bense, T., & Thombre, A. (2024). बिहार में गरीब ग्रामीण महिलाओं की नागरिक और सामुदायिक भागीदारी: एक पायलट अध्ययन. *Canadian Journal of Nonprofit and Social Economy Research*, 15(2), 1–24.
- Lewis, D., & Kanji, N. (2009). *Non-governmental Organizations and Development*. London: Routledge.
- कृति, के., सिंह, ए., एवं महापात्रा, एस. (2025). बिहार की ग्रामीण महिलाओं की आय बढ़ाने में NGO-संचालित आजीविका पहलों की भूमिका. *Indian Journal of Extension Education*, 61(1), 61–65.
- नीति आयोग. (2026). *वार्षिक रिपोर्ट 2025–26*. भारत सरकार.
- नीति आयोग. (2026). *वॉलंटरी एक्शन सेल*. भारत सरकार.
- बिहार सरकार. (2026). *समाज कल्याण विभाग: सामाजिक सुरक्षा और पेंशन योजनाएँ*. जिला प्रशासन, सारण.
- बिहार सरकार. (2026). *सारण जिले की जनसांख्यिकी*. जिला प्रशासन, सारण.
- बिहार सरकार. (2026). *सारण जिले की शिक्षा प्रोफाइल*. जिला प्रशासन, सारण.
- बिहार सरकार. (2026). *सारण जिले की स्वास्थ्य प्रोफाइल*. जिला प्रशासन, सारण.
- भारत सरकार. (1950). *भारत का संविधान*. भारत सरकार.
- भारत सरकार. (2007). *स्वैच्छिक क्षेत्र पर राष्ट्रीय नीति*. योजना आयोग.
- राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग. (2025). *सारण जिले में ऑर्केस्ट्रा समूह से 17 नाबालिग लड़कियों को तैनात किया गया*. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार.

‘जींदे जमदूत’ लघु नाटक: इक मूल्यांकन**अजय सिंह*****ajaysingh800089@gmail.com****सारांश:**

‘जिंदे जमदूत’ नाटक च लेखक ने जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से समाजक समस्याएं दा चित्रण कीते दा ऐ। इसदे च मनुखवै दे संघर्ष दुख-दर्द, ते मनुखवी संवेदनाएं गी प्रभावशाली ढंगे कन्ने प्रस्तुत कीता गेदा ऐ। लेखक ने समाज की विसंगतियों गी सामने रखदे होई मानवता ते संवेदनशीलता दा सनेहा दिते दा ऐ। रचना पाठकें गी समाजक परिस्थितियों दे प्रति जागरूक करदी ऐ ते चंगे मनुखवी मुल्लें गी अपनाने की प्रेरणा दिदी ऐ।

मुख्य शब्द: जींदे जमदूत, सामाजिक यथार्थ, मनुखवी संवेदना, जीवन-संघर्ष, सामाजिक समस्यां, मानवता, सामाजिक चेतना।

भूमिका:-

जून 2024 गी कल्चरल अकैडमी दे के.एल.सैहगल हाल च पी.एल.परिहार ‘शौक’ हुंदियें च’ऊं कताबें दा किड़ा विमोचन होआ। जिंदे च ‘सुच्चा हिरख’ (डोगरी बाल-कविता संग्रह), ‘नीम कहीम खतरा-ए-जान’ (डोगरी बाल नाटक संग्रह), ‘सबूतरे दा सच्च’ (डोगरी कहानी-संग्रह), ते ‘जींदे जमदूत’ (डोगरी लघु नाटक संग्रह) बगैरा शामिल ना। एह चार कताबां जिसलै मेरे हत्थ लगियां तां मेरे मनै च बी जिज्ञासा जागी जे अ’ऊं बी इ’ने कताबें बारै किश लिखां पर किड़ा सभनें पर लिखना थोहड़ा औखवा कम्म बी ऐहा ते समग्री बी मती बनी जाने दा डर हा, इसकरी अ’ऊं इक कताब ‘जींदे जमदूत’ पर पेपर लिखन लगा जेहड़ा इक लघु नाटक संग्रह ऐ।

‘जिंदे जमदूत’ पी.एल.परिहार ‘शौक’ हुंदा छें लघु नाटकें दा संग्रह ऐ जेहदे च ‘कंजूस मक्खी चूस’, ‘पुलस थाना’, ‘मेरा मां डोगरी’, ‘धियां धन पराया’, ‘जींदे जमदूत’ ते ‘लेट’ बगैरा सब्भे हास्य नाटक शामिल ना। 120 सफे दा एह नाटक संग्रह 2023 बरै च प्रकाशत होआ।

इस संग्रह दा पैह्ला नाटक ‘कंजूस मक्खी चूस’ इक हास्य नाटक ऐ, जेहदे च लेखक ने उ’ने शाहें बारै दस्सै दा ऐ जेहदे सारी उमर पैसा ते कमादे न पर खर्चने पर बड़ी कंजूसी करदे ना। इ’यां गै इस नाटक च इक शाह जेहड़ा सूदे पर पैसे देइयै लोकें शा व्याजू पैसे लैदा ऐ ते नोटें गी गल्लै च दिक्खियै बड़ा खुश होंदा ऐ। उत्थें गै गारू नांs दा जागत शाह कशा पैसे दुहारे लैन औंदा ऐ पर शाह उसगी पैसे देने थमां इन्कार करी दिंदा ऐ कीजे उसने पैहलें गै शाह कशा पैसे दुहारे लेदे होंदे न ते अपने गैहने-गट्टे बी बंझै रखवे दे होंदे ना। शाह उसगी सिद्दी नांs करी दिंदा ऐ। संवाद थमा इस चाल्ली स्पष्ट होंदा ऐ:-

“लाला- बै तेरा पिछला स्हाब-कताब बड़ा ऐ। इस करी तुगी होर दुहार नेई लब्भी सकदा, सूद ठोकियौ।”¹

मना करने पर गारू उत्थूआं चली जंदा ऐ। इन्ने चिरें च शाहनी होर उत्थें आइयै शाह गी रुट्टी खाने आस्तै गलांदिआं न पर शाह होर मना करी दिन्दे न ते दुझै दे गलासै दी मंग करदे ना। शाहनी होर दुझ आहन्नी दिंदियां ना। शाह बड़ा गै कंजूसपूना करदा ऐ ओह सोचदा ऐ जे ध्याड़ी दे द’ऊं फुलके बी बची जान तां चंगा ऐ। दुझ पींदे गै दुझै च मक्खी पेई जंदी ऐ तां शाह होर मक्खी गी चुसियै सुटदे ना।

“दुझै आले गलासै च मक्खी पेई गेदी होंदी ऐ। शाह हुंदी नजर चानचक्क गलासै च पेई गेदी मक्खी पर पौंदी ऐ। शाह थोहड़ा भैड़ा ते रोहै आह्ला मूह बनाई सज्जे हत्थै नै मक्खी गी फगड़ियै मुंहै च पाइयै शैल करी चुसियै बाहर सुटियै गलांदा ऐ।

“शाह- ओह दुझै च मक्खी। थुआदी एह मजाल ऐ जे तूं म्हाड़ा दुझ पियें। इस बारी तुगी चुसियै बाहर सुट्टी ओड़ेआ ई। जेकर तूं दूई बारी ऐसी जुरत कीती तां तुगी में जंडे समेत निंगली जांड, सूद ठोकियौ।”²

* पी-एच. डी., शोधकर्ता, डोगरी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

उत्थें गै जिसलै गारू दी कोई पेश नेई चलदी तां ओह परतियै उत्थें आई जंदा ऐ ते शाह् गी दुआई संगाइयै बेहोश करियै सब किश लुट्टी लेई जंदा ऐ। शाह्नी जिसलै शाह् गी बेहोश दिखदी ऐ तां जागतें गी सदियै शाह् गी अंदर लेई जाने आस्तै आखदी ऐ ते अपने जागत गुल्ले गी डॉक्टरै गी तौले सदी आह्ने आस्तै आखदी ऐ, पर शाह् कुत्थें मनदा ऐ। शाह् गी ते पैसे कन्नै प्यार होंदा ऐ। जिंद भामें निकली जा पर दुआन्नी बोज्जेआ निं खिसकनी चाहिदी।

“शाह्नी- चंगा पुत्तर गुल्लेआ, बै जा हां डॉक्टरै गी सदी आह्ना हां।

गुल्ला- चंगा बेबे, अ’ऊं हुनै जन्ना ते, सदी आह्ना।

शाह्- ओ बौह ओए टकाई करियै। समझै करो। डाक्टरै फीस लैनी ऐं, सूद ठोक्कियै। हाए-हाए।

शाह् दे मना करने पर बी जागत डॉक्टरै गी सदी आह्नादा ऐ। डॉक्टरै दे पुजदे गै शाह्नी ते डॉक्टरै दे संवाद इस चाल्ली होए दे न, जेह्दे सारें गी हस्सने पर मजबूर करदे ना।

“शाह्नी- डॉक्टर साहब इनेंगी बचाई लैओ। हाल्ली म्हाड़ी बरेस गै केह् ऐ। इसकरी मीं नि जे चिट्ठा दपट्टा लैना।

शाह्- ओह रौली निं पा। इनें चिट्ठा दपट्टा निं लैना। ओह चिट्ठा सूहे कोला सस्ता पौना ऐ, सूद ठोक्कियै। हाए...हाए...।”³

डॉक्टर होर शाह् होरें गी चेक करदे न ते उ’नेंगी काढ़ा खलाने दी सलाह् दिंदे न पर शाह् डॉक्टरै कन्नै बी बैह्स करन लगदा ऐ जे ओह उ’नेंगी पुट्टी मत्त नेई देऐ कीजे घ्योऽ उ’नेंगी अगें कम्म देगा। डॉक्टर होर जिसलै जंदे मौके 500 रपेऽ फीस मंगदे न तां शाह् दा कलेजा फट्टी जंदा ऐ जिसगी रपेआ खर्चदे सौ बारी सोचना पौंदा ऐ ओह डॉक्टरै गी इन्ने पैसे कि’यां देई सकदा ऐ तां शाह् होर ऐसा ब्हान्ना बनांदे न जे डॉक्टरै गी खलासी कराना म्हाल होई जंदी ऐ।

“शाह्- ओह डॉक्टरा तूं केह् लोटी पाई दी ऐ। ना कोई दुआई दिती, ना टीका लाया। छड़ी टूटी लाने दे पंज सौ रपेऽ। हाए में मरी गेआ ओए, हाए में मरी गेआ ओए, ओह में नेई बची सकदा। ओ डॉक्टरै खरै मिगी केह् करी ओड़ेआ ऐ। ओह डॉक्टरै खरै मिगी कनेही टूटी लाई ऐ। में हून नेई बची सकदा, ओ, डॉक्टरै गी पुच्छो सूद ठोक्कियै। हाए-हाए...।

शाह्नी- डॉक्टर साहब शाह् होर केह् आखवै करदे न, तुसें केह् करी ओड़ेआ इनेंगी।

डॉक्टर- में-में केह्-केह् कीता ऐ। में ते किश निं कीता ऐ। तु’स म्हाड़ी फीस-फूस रौह् देओ।”⁴

डॉक्टरै कोला जिसलै शाह् हुंदी बमारी दा कोई चारा नेई होंदा तां ओह पंतै गी सदी आह्ने आस्तै आखदे न पर बमारी केह्डी ऐ एह् ते शाह् होरें गी आपूं गै पता हा पर उंदी सुनदा गै कोई नेई। पंतै दा नां सुनियै शाह् होरें गी होर गुस्सा आई जंदा ऐ ते ओह फ्ही पैसे बचाने दी गल्ल करदे न तां रामू उ’नेंगी समझांदा ऐ जे पैसे कोई कन्नै लेइयै थोह्दे जाना ऐ पर शाह् हुंदा रामू गी परता देना हस्सने पर मजबूर करदा ऐ। उदाहरण दिखो:-

“रामू- बापू फिर उ’ऐ केह्डी गल्ल, तुसें पैहे दी गंठ अपने कन्नै बन्नियै लेनी ऐं।

शाह्- ओ तूं चुप्प कर ओए टटैनेआं। तूं म्हाड़ा बब्ब निं बन, सूद ठोक्कियै। हाए...हाए...।”⁵

लक्ख मनां करने पर ओह पंतै गी बी सदी लेई औंदे ना। शाह्नी उ’नेंगी शाह् गी बचाने दी फरयाद करदी ऐ। पंत होर शाह्नी गी शाह् दा पुन्नदान कराने दी सलाह् दिंदे न, जेह्दे आस्तै ओह घट्ट-थमां-घट्ट इक कुआंटल नाज ते काली बच्छी दा फटा-फट इंतजाम करने आस्तै आखदे ना। शाह् होरें गी परतियै पैसें दा नास होंदे गशा पेई जंदी ऐ ते ओह पंतै दी घगरी फंडी टकांदे ना पंत ते शाह् हुंदे संवाद च हास्य दा पुट्ट इस चाल्ली प्रगट होंदा ऐ:-

“शाह्- ओ पंता कैह्ली पुट्ट मंगै करना। तूं ते जींदे गै म्हाड़ी चबरीऽ करोआन लगांऽ ऐ। केह्डी दुश्मनी दा बदला लै करना। म्हाड़े बारे च सोचा। पैहें दा नास निं करोआऽ। ओ मोहा इन्ना सम्यान कित लाना ई, ते बच्छी गी केह् करना ई, सूद ठोक्कियै। हाए...हाए...।।

पंत- शाह् जी अगर इत्थै दान कीते दा होऐ नां, ते अगै छड़े लंगर लगो रौह्दे न, ते रेही गल्ल बच्छी दी ते बच्छी ना तुसेंगी अपनी पूछल फगडाइयै, बतरनी नदी पार करोआनी ऐ।

शाह्- ओ पंता एह् कुन्नै दिखेआ। अ’ऊं रूआर गै खरा। ओ पुलसै गी सद्दो। तौल करो पुलसै गी सद्दो जेह्का असली कम्म करने आह्ला ऐ, ओह करो सूद ठोक्कियै। हाए...हाए...”⁶

पंत पुलसै दा नांs सुनियै डरी जंदा ऐ ते उ'नेंगी आखदा ऐ जे एह सब किश कुसै होर कोला करोआई लैयो। पंतै गी जंदी दिक्खियै शाह् होर पंतै गी गलांदे न:-

“शाह्- ओ पंता बलगी जा। आई लैन दे पुलसै गी, सूद ठोक्कियै। हाए...हाए...।

पंत- ओ नेई-नेई जी, मिगी जान देओ।

शाह्- चंगा तां पंता तेरी मर्जी। बलगी जंदा ऐं ते बड़ा खरा होंदा। ओह जागतो में तुसेंगी फही आक्खै करना, जे पुलसै गी सद्दो, ओह तौल करो तौल। सूद ठोक्कियै। हाए-हाए...।।”⁷

घरा आह्ले रहान हे जे बापू होर बमार न ते आक्खा करदे न जे पुलस सद्दी लेई आओ। पर असली कम्म ते पुलसै दा गै हा कीजे चोर ते पुलसै नै गै पकड़ना हा जेह्दे कारण शाह् होर बमार होए हे। शाह् होर घरा आह्लें गी सनांदे न जे चोर हट्टी लुट्टियै लेई गेआ ऐ तां सारे रहान होई जंदे न ते गलांदे न जे उनेंगी सनाया की नेई। शाह् ते रामू दे हसमुख संवाद इस चाल्ली होए दे न:-

“रामू- बापू तू पैहलें की निं असेंगी सनाया।

शाह्- म्हाड़ी कोई सुनै ते सनांs नां। तुस सब्भै अपनी गै सनाई जा करदे। हून मतियां टेटनियां निं पढ़ो, पुलसै गी सद्दो, सूद ठोक्कियै। हाए...हाए...।।”⁸

शाह् दा जागत गुल्ल पुलसै गी सद्दी आहनदा ऐ औंदे गै थानेदार शाह् गी पूरा भरोसा दुआंदा ऐ जे ओह चोरै गी पतालै चा बी तुप्पी ल्यौगा। इन्नी गुल्ल सुनियै शाह् उट्टियै बेही जंदा ऐ। ते गलांदा ऐ:-

“शाह्- एह्दा मतलब ऐ जे म्हाड़े पैहे मिगी बापस थोई जांडन, सूद ठोक्कियै।”⁹

शाह् खुश होंदा ऐ कीजे उसगी मेद होई जंदी ऐ जे हून पैसे थोई जाडना। शाह् ते मौती दे मूहें चा बाहर आई जंदा ऐ। उसगी होश फिरी जंदी ऐ। उसगी ठीक होंदे दिक्खी गुल्ला उसगी गलांदा ऐ।

“गुल्ला- बापू तू थोह्दे पैहलें, इन्ना लागर हा जे साढ़े साह् सुक्की गेदे हे। पर पैहें दा नांs सुनदे गै तू उट्टियै बेही गेआ ऐ। एह मिगी किश समझै निं आया।

शाह्- ओ बेबकूफआ पैसा चीज गै ऐसी ऐ। एह्दा नांs सुनियै मुड़दे उट्टियै बेही जंदे न। में ते हाल्ली जींदा ऐं, सूद ठोक्कियै। हीं...हीं...।।”¹⁰

शाह्नी बी खुश होइयै शाह् गी गलांदी ऐ जे हून तुस ठीक होई गे ओ ते जेकर साढ़े पैसै बी असेंगी थोई जाडन तां अस परमेसर दे नांs दा इक लंगर लागे तां शाह् परतियै अपनी हरकतें च पुज्जी जंदा ऐ ते गलांदा ऐ:-

“शाह्- तेरा दमाग ते निं खराब होई गेदा। पिंड पे नि ते मंगते पैहलै गै त्यारा। तू पैहे नास करोआने दा ठेका लेदा ऐ। जिसलै दिक्खो पुट्टियां सकीमां लांदी रौहन्नी ऐं। परमेसर साढ़े लंगरै दा भुक्खा निं। पैसा कि'यां ते कुत्थूं कमाना ऐ इस बारै सोचै कर, सूद ठोक्कियै।”¹¹

इन्ने चिरें च थानेदार ते अ'ऊं सपाही आनियै शाह् गी खुशखबरी दिंदे न जे उ'नें चोरै गी पकड़ियै उसदे कशा पैसे बरामद करी ले न। थानेदार ओड़ सारा पैसा शाह् गी अद्धो-अद्ध करने आस्तै आखदा ऐ। एह सुनियै शाह् दे पैरें खल्ला जमीन खीसकी जंदी ऐ। फही दौनें दे हसमुख संवाद इस चाल्ली होए दे न:-

“शाह्- ओ थानेदार तू ते किश लिहाज कर। कैह्सी मिगी टैक करोआन्ना ऐं, सूद ठोक्कियै।

थानेदार- ओ शाह् जी जेकर, तुसें मिगी अद्ध निं दित्ता नां, ते टैक मिगी होई जाना ऐ। इसकरी अद्धो-अद्ध करने गै पौना ऐ।

शाह् गी लगदा जे हून थानेदार सुक्का जंदा नेई लभदा तां शाह् परतियै ड्रामा करन लगी पौंदा ऐ ते दोऐ हत्थ दिलै पर रक्खी खट्टै पर लम्मा पेई बिलन ते करलान लगी पौंदा ऐ।

“शाह्- हाए मरी गेआ होए। खरै मिगी टैक होई गेआ ऐ। ओह में निं बची सकदा। एह्दा कसूरवार थानेदार ऐ। थानेदार दे खलाफ परचा देओ। ओ तौल करो, जाओ परचा देओ। ओ में निं बची सकदा, सूद ठोक्कियै। हाए...हाए...।

थानेदार- एह शाह् जी, शाह् जी, तुस केह् आक्खै करदे ओ। में तुसेंगी केह् कीता ऐ।

शाह- ओह थानेदारा तू आकखै करना जे तू मिगी किश निं कीता तू ते मिगी टैक करोआई ओड़ेआ ऐ। सूद ठोक्कियै।
हाए...हाए...।”¹²

थानेदार घबराई जंदा ऐ ते सोचदा ऐ जे होर कुतै शाह मेरे जिम्मे लगदा ऐ। ओह सारे गै पैसे शाह गी देइयै अपनी जान छड़काइयै
उत्थूआं निकली जंदा ऐ। ते पिच्छू शाह गलांदा ऐ जे मेरे शा पैहा लैना मगरमच्छै दे मुहें चां मच्छी कड़ढने आहली गल्ल ऐ।

एह इक हास्य नाटक ऐ जिसदे च लेखक ने मुहावरें ते खुआनें दा चुस्त-दरुस्त प्रयोग करियै इसदी भाशा-शैली गी होर बी मता
निखारने दी कोशश कीती दी ऐ। खुआन ते मुहावरे जि’यां मगरमच्छै दे मुहें चा मच्छी कड़ढना, पिंड पे निं ते मंगते पैहलै गै
त्यार, हड़डियें दा गंगा जाना, सिद्धी औंगली घ्योs निं निकलै ते औंग डींगी करी लैनी, इस नाटक गी होर बी मता सुआरदे ना
लौहके-लौहके हास्से कन्नै भरोचे संवाद ते सादी भाशा बी पाठकें दे दिलै पर उत्तरने आहली ऐ। कुल मलाइयै अस एह आकखी
सकनेआं जे नाटककार ने नाटक च कंजूस लोकें दे जीवन दा चित्रण कीते दा ऐ जेह्दे शैल कमांदे ते हैं पर खर्चने च बड़ी गै
तंगी करदे ना। ऐसे लोकें कशा केई बारी घरा आहलें दे कन्नै-कन्नै समाज आहले बी तंग पेई जंदे।

पुलस थाना:- भ्रष्टाचार ने साढ़े समाज ते मुलखा गी खोखला करी टकाए दा ऐ ते अच्छी-खासी तनखाह थोने बावजूद बी
केई अफसरें ओपरी कमाई पर नजरां रक्खी दियां होंदियां न, जेह्दे पर उंदा सारा टब्बर पला करदा होंदा ऐ ते ऐसे अफसर अपने
हेठ कम्म करा करदे कर्मचारियें गी लोकें शा रिश्त लैने आस्तै मजबूर करदे न ते केई भोले-भाले, गरीब, बे-दोशें दे सिर दोश
मढ़ियै उंदा शा पैसा वसूल करदे ना।

‘जींदे जमदूत’ नाटक संग्रह च प्रकाशत दूआ नाटक ‘पुलस थाना’ इक हास्य नाटक ऐ। च’ऊं दक्खें च बंडोए दा इस नाटक च
अज्ज दे समाज च फैसा करदी भ्रष्टाचारी दी समस्या गी बांदे कीते दा ऐ। नाटक दी शुरूआत थानेदार दी सपाही कन्नै गल्ल-
बात कन्नै होंदी ऐ जेह्दे च थानेदार सपाही गी चाह-पानी दे इंतजाम बारै पुच्छदा ऐ कीजे उसगी बगैर चाह-पानी दे नींदर नेई
औंदी उदाहरण दिक्खो:-

“थानेदार- टून...टून...

शपाई- जी जनाब, हुऐ करंग जो आखगेओ, संघद तुं दी खड़ियें मुच्छें दी।

थानेदार- में केह्दे तेरे कोला गंडे छलाने ना। मिगी लोड़दा चाह पानी निं तां रातीं मिगी नींदर निं औंदी।

सपाई- आकखो ते छिल्ली दिन्ना जनाब, संघद तुं दी खड़ियें मुच्छें दी।”¹³

थानेदार मुनशी गी सहियै झट्टो-झट्ट चाह-पानी दा इंतजाम करने आस्तै आखदा ऐ जिसकरी ओह बाहर जाइयै सैर करन आए दे
किश लोकें गी जबरदस्ती थाने लेई औंदे न ते उनेंगी मार चाढियै जबरन उंदा शा जुरम कबूल करवाने दी कोशश करदे न ते
जिसलै ओह सनांदे न जे अस ते सैर करन आए हे तां उंदी कोई नेई सुनदा ते थानेदार पैसे कमाने दे चक्करें च उंदा पलासै कन्नै
नेह् खिचने ते मर्चें दा बंदोवस्त करने आस्तै आखदे ना। एह सब सुनियै ओह डरी जंदे न ते अपना सब किश पैसे, घड़ियां,
डूठियां, चैनियां देने आस्तै मन्नी जंदे ना।

लोकें गी पकड़ी आहनने पर थानेदार कन्नै उंदी गल्ल बात इस चाल्ली होंदी ऐ:-

“थानेदार- अच्छा ते, एह न ओह नामी बदमाश, जि’नें सारे शैह्रै च थड़तल्ली मचाई दी ऐ। इ’यां करो ते इ’नें सब्भनें गी,
हवालात च ठोकी देओ, ते फही कराचै इ’नेंगी आन मिलो सज्जना दे दर्शना। मिगी चाही दा ऐ चाह पानी, निं तां रातीं मिगी
नींदर निं औंदी।

मुजलम- जनाब अस ते सैर करन जा करदे हे। तुंदे शपाहियें असें इ’यां गै फगड़ियै लेई आह्दा। असें कोई जुरम निं कीता
जनाब। अस ते बे-कसूर आं।

शपाही- हीं...हीं...हीं...जनाब एह ते मिगी सारें शा बड़डा बदमाश सेही होंदा ऐ। जेकर मिगी हुक्म देओ तां, अ’ऊं ठोलां न्हाड़े
पासे, संघद तुं दी खड़ियें मुच्छें दी।”¹⁴

रिश्त लैदे मौके उत्थें ऐंटी क्रप्शन दी टीम सिविल कपड़े च शाप्पा मारदी ऐ ते सपाहियें ते ठानेदारें समेत सब्भनें गी कोर्ट च पेश
कीता जंदा ऐ। जज दे पुच्छने पर सपाही सारी पोल खोलदे होई रिश्त लैने दा दोश थानेदार दे सिर मढ़दे होई गलांदा ऐ जे इंदे
अट्ट ज्याने न ते इंदी घरेआहली ने इक होर होने आह्ला ऐ जिसकरी मती टब्बरदारी होने करी सरकारी तनखाही कन्नै उंदा घर

नेई चलदा ते उनेंगी ओपरी कमाई करने पौंदी ऐ। एह सब सुनिये जज थानेदारै गी इक लख रपेस दा जुर्माना ते दस बरे दी सजा सनांदा ऐ ते सपाहिये गी बी 50 जहार रपेस दा जुर्माना ते पंज बरे दी सजा सनांदा ऐ।

कोर्ट च पेश होने पर अज्ज दे सपाही ते थानेदार कन्नै किश सुआल जवाब इस चाल्ली होंदे न:-

“जज- बै तु’स सब्भै अपनी सफाई च, किश आखना चांहदे ओ।

शपाही: हीं...हीं...हीं...जनाब, असली मुलजम ते साढ़े थानेदार न अस निं है, कीजे इंदा टब्बर मता ऐ। इस करी एह आखदे न जे घर खर्चा बी मता होंदा ऐ। एह हर गल्लै दे मगरा इक गल्ल आखदे जि’यां मिगी चाही दा ऐ चाह पानी, निं तां रातीं मिगी नींदर निं औंदी। हून तुस दस्सो जे कसूरबार अस आं जां फही एह ना। इस करी स’जा इनेंगी देनी बनदी ऐ, नां के असेंगी। सधंद इंदी खडिये मुच्छे दी।

जज: ओ थानेदारा, तूं इस बारे च केह आखना चाहगा।

थानेदार: जनाब मिगी माफ करी देओ। न्हाड़ा निक्का-निक्का टब्बर ऐ। उ’नें रूली जाना ऐ।”¹⁵

इस नाटक च नाटककार ने यथार्थत गी साढ़े सामने आहने दी कोशश कीती दी ऐ। माहनू अपनी बर्दी दा फायदा आम माहनुएं शा ठुआइयै कुत्थे तगर गिरी सकदा ऐ ते अपने लाह आस्तै अपनी पॉवर दा गल्ल इस्तेमाल बी करदा ऐ पर उत्थे गै नाटककार ने ऐसे लोकें गी सौहगा बी कीते दा ऐ जेह्दे ऐसे कम्म करदे न, कीजे ऐंटी-करप्शन जनेहियां टीमां नेह लोकें पर नकेल कस्सने दा कम्म बी करा करदियां न ते कोर्ट बी न्यापूर्वक फैसले करिये बे-दोशें गी रिहा ते दोशी ते भ्रष्टाचारें गी सजा सनाइयै जेल्लै अंदर बी भेजा करदा ऐ।

मेरी मां डोगरी:- जारें दक्खें च बंडोए दे इस नाटक च इक बच्चे दा अपनी मात्ती भाशा दे प्रति हिरख गी बांदै करदे होई अज्ज दे मनुक्खें दी नकारात्मक सोच गी बी बांदै कीते दा ऐ जेह्दे अपने ज्यानें गी अपनी मात्तरी भाशा बोलने च मना करदे ना। किश लोक अज्ज बी अपनी इस नकारात्मक सोच च गै घिरे दे न, जेह्दे कन्नै उंदा अपना नुकसान ते होंदा गै होंदा ऐ पर एह्दे कन्नै पूरे समाज दा नुकसान बी होंदा ऐ।

इस नाटक च दस्से-बाहरे बरें दा जागत लच्छू जेह्का अपनी मात्तरी भाशा डोगरी गी बोलने च जरा बी शर्म-झक्क नेई बुझदा ते अपनी भाशा च गै गल्ल करना चांहदा ऐ पर पिता मुरली ते माता बंती ते भैन तारो गी एह गल्ल चंगी नेई लगदी। ओह उसगी डोगरी बोलदे होई म्हेशां टोकदे रौह्दे ना। लच्छू गी केई तान्ने-मीहने सुनने पौंदे न, उसदी मैडम बी उसगी एह आखी दिंदी ऐ जे ओह अपनी जिंदगी च किश नेई करी सकदा कीजे ओह डोगरी च गल्ल करदा ऐ ते स्कूली बच्चे बी उसदा मजाक डुआंदे ना। उसदे माता-पिता बी उसगी हिंदी जां अंग्रेजी च गल्ल करने आस्तै आखदे ना। उंदी सोच ऐ जे हिंदी अंग्रेजी बोलने आहले तेज होंदे न ते डोगरी बोलने आहले नलैक। नाटक च दौनें दी गल्ल-बात इस चाल्ली होई दी ऐ:-

“मुरली: हाल्ली ते तूं द’ऊं अक्खर गै पढ़े न ते तूं मिगी एड्डा लम्मा भाशन देआ करना। जेकर तूं कोई द’ऊं कलासां पढ़ी-लिखी गेआ तां ते तूं म्हाड़े बब्बै दा बब्ब बनी जाहगा।

लच्छू: डैडी जी आप मेरी हर बात को उल्टा क्यों लेते हैं।

मुरली: लच्छू जेकर तूं हून अगै कोई गल्ल कीती ना, में तुगी कन्नै दै पजोआड़, द’ऊं छोड़नियां न ते तुगी अकल आई जानी ऐ। इस करी चुप्प करिये जेह्दा तेरा कल्ल स्कूलै च टैस्ट ऐ ना उसी तयार कर जाइयै।

लच्छू: ठीक है डैडी जी, अभी जाकर तयार करता हूं।

मुरली: ठीक ऐ ठीक ऐ।”¹⁶

लच्छू गी उसदे चाचा म्हेशां प्रेरत करदे रौह्दे हे ते ओह अपनी हर गल्ल अपने चाचा कन्नै सांझा करदा हा। घरे आहलें दी रोक-टोक उसगी पसंद नेई ही इसकरी ओह बाहर जाइयै पढ़ाई करने दा दिल बनाई लैदा ऐ ते बाहर भेजने आस्तै उसदे पिता बी राजी होई जंदे न पर उ’दे मन च इ’यै खतौला बने दा रौह्दा ऐ जे ओह किश करी नेई सकदा।

“मुरली: इस डोगरी बोलने आहले डोगे ने बाहर जाइयै गंढे पढ़ना ऐ। में इसी लख बारी समझाई ओड़ेआ ऐ, जे तूं डोगरी नेई बोल्लै करा। इसगी निक्की जेही गल्ल निं समज आवै दी ही ते एह आखै करदा ऐ जे इन्ने बाहर जाइयै पढ़ना ऐ। चुप्प करिये जित्थै पढ़ा करना ऐ ना, पढ़दा रौह्।

लच्छू: डैडी जी, अगर आप मुझे पढ़ने के लिए बाहर नहीं भेजोगे तो मैं, पढ़ना ही बंद कर दूंगा।

मुरली: लच्छू दी मां इसी समझा किश। एह्दा दमाक खराब होई गेदा ऐ।

बंती: तु'स हून चुप्प बी करो। इक्कै बारी एह्दे पिच्छै गै पेई गेदे ओ। अगर एह् हून जोर पा करदा ऐ ते, इसी भेजी ओड़ो। इन्नै दस्सें दिनें बाद गै, घर परतोई औना ऐ। न्हाड़ा बाहर जाने दा चाs, तौले गै चुक्की जाना ऐ।

मुरली: अच्छा जेकर तेरी बी इ'यै मर्जी ऐ ते पही करो त्त्यारी। इसी कल्ल गै भेजी दिन्ने आं।¹⁷

लच्छू बाहर जाइयै खूब मेहनत करदा ऐ ते डोगरी गी आपशनल सब्जैकट रक्खी आई.ए.एस दा म्तेहान पास करी लैंदा ऐ। तारो जिसलै एह् खबर अपने घर सनांदी ऐ तां उसदे माता-पिता बड़े खुश होंदे न ते उनेंगी मुख मैत्री टैलीफोन करियै मुबारखां बी दिंदे ना। सारे लोक लक्खू दी बडेआई करदे ना। उस दिन लक्खू दे घरेआहलें गी उसदे पर गौह् मसूस होंदा ऐ। ओह् बापस परतोने पर सभनें दा डोगरी भाशा प्रति बने दे बैह्म गी दूर करी दिंदा ऐ ते सभनें गी सनांदा ऐ जे डोगरी भाशा दी बदौलत गै अपने इस मोकाम गी हासल करी सकेआ ऐ।

इस नाटक गी रचने पिच्छें लेखक दा अपनी मात्तरी भाशा प्रति हिरख-प्यार ते झलकदा ऐ पर उत्थें गै अपनी मात्तरी भाशा गी भुल्ला करदे लोकें गी एह् सनेहा बी देना चांह्दा ऐ जे भाशा कोई बी लौह्की जां बड्डी नेई होंदी, ते नां गै कुसै भाशा गी बोलने आह्ला माहनू नलैक होंदा ऐ। हर भाशा दा अपना बजूद होंदा ऐ। अज्ज मात्तरी भाशा शा बच्चे गी दूर करने आस्तै घर-परोआर दे कन्नै-कन्नै स्कूलें दे शिक्षक बी जिम्मेबार न जेह्दे ज्यानें गी डोगरी बोलने च मना करदे ना। असेंगी इस सोच गी बदलना चाहिदा ऐ ते लच्छू आंगर केई युवाएं गी प्रेरत करना लोड़दा ऐ तां जे साढ़े समाज दे लोकें दे अंदर बस्से दे परम-भलेखे दूर होन ते समाज इक सभ्य समाज बनै।

धियां धन पराया:- एह् नाटक जारें दक्खें च बंडोए दा ऐ। नाटककार नै इस नाटक च ऐसी प्रथा दा चित्रण कीते दा ऐ जेह्डी परम्परा थमां चलदी आवा करदी ऐ ते इस भैडी प्रथा ने केई घर जुआड़ी टकाए न, ते केई धियें अपने प्राणें दी आहूती देई दिक्ती ऐ ते अज्ज बी देआ करदियां ना। नाटक दी शुरुआत मनीराम दे जागते दे ब्याह् कन्नै होंदी ऐ जित्थें जान्नी त्त्यार होई गेदी होंदी ऐ ते जनानियां ते कुड़ियां गीत गा करदियां होंदियां ना। गीते दे बोल इस चाल्ली न:-

“सेहरा पाई लैओ वीरा कल्ल तुसें सौहरे जाना...2

जेहबा पाई लैओ वीरा लौंग लाची दाना...2

ओह् केह् करने भैनें लौंग लाची दाना...2

साली मंगदी वीरा लौंग लाची दाना...2

कप्पड़े पाई लैओ वीरा कल्ल तुसें सौहरे जाना...2

जेहबा पाई लैओ वीरा...2”¹⁸

बसैंतराम ते लाजो बी बड़े खुश होंदे न कीजे उंदी धीs पारो शैल घर ब्होआ करदी होंदी ऐ। ब्याह् बडी सज्जी-दज्जियै होई जंदा ऐ ते पारो सौहरे चली जंदी ऐ। उसदे जाने पैंत घरे च जुआड़ पेई जंदी ऐ। मते दिनें तगर जिसलै पारो दा सुख-सांद नेई औंदा तां बसैंतराम उसदा पता लैन जंदा ऐ ते परतोने पैंत जिसलै ओह् सारी घटना बारै लाजो गी सनांदा ऐ जे उसदी धीs गी दाजै दे लालच पिच्छें मारी दिक्ता गेआ ऐ तां लाजो गी टैक आई जंदा ऐ ते ओह् बी परमेरस गी प्यारी होई जंदी ऐ।

नाटक च किश रोचक संवाद बी दिक्खने गी लभदे ना। ठंडू ते खबरी गी लगदा ऐ जे उं'दे हानमेल दे सब्भै जागत ब्होई गे न ते ओह् परोहते गी तौले शा तौले अपनी कड़माई कराने आस्तै आखदे ना। इक दिन ठंडू सुखने च घोड़ी बी चढ़ी जंदा ऐ पर खबरी उसगी नींदरा चा ठुआलियै उसदा पूरा मजा खराब करी दिंदा ऐ।

“खबरी: केह् करै दा ओए।

ठंडू: खुकें दा होर केह् करै दां।

खबरी: कुत्थै खुकें दां ओए।

ठंडू: पिट्टी पर खुकें दां, होर कुत्थै खुकें दां।

खबरी: एह् ते मेरी पिट्टु ऐ ओए।

ठंडू: पही मेरी कुत्थै ऐ।

खबरी: मिगी केह पता ओए। इत्थै गै होनी ऐं अगै-पिच्छै। सौ चिप्प करियै।”¹⁹

ब्याह आहले सुखने च बी इस चाल्ली हास्से दा पुट बांदै होंदा ऐ:-

“खबरी: दिक्ख हां सौहरा सुत्ते दा बी हस्सी जा दा ऐ। उठ ओए।

ठंडू: ओ तू मेरा यार ऐं जां दुश्मन

खबरी: एहदे बिच्च दुश्मनी आहली केहड़ी गल्ल ऐ ओए।

ठंडू: ओ सौहरा मेरा ब्याह होऐ करदा ऐ। तू मिगी सेहरा लगै दे, घोड़ी उप्पर भुंजा सुट्टी बैठा ऐं।

खबरी: दिक्ख हां सौहरा सुत्ते दा बी ब्याह दे सुखने लै करदा ई।

ठंडू: केह आखै करदा ओए।

खबरी: अ’ऊं सौहरेआ बिलकुल सच्च आखै करना। एह तेरा ब्याह सच्चें नि होऐ करदा। तू सुखना लै करना सुखना।

ठंडू: अ’ऊं सुखना लै करना, एह कि’या होई सकदा ऐ, तू ते मिगी आपै घोड़ी चाढ़ेआ ही ओए।

खबरी: ओ अक्खियां गुहाड़ अक्खियां, ते दिक्ख तू म्हाड़े कोल खट्टै पर बैठे दा ऐं।

ठंडू: ऐं।

खबरी ते ठंडू: हीं...हीं...।”²⁰

प्रीतो अपनी माऊ दे मरने पर बड़ी दुखी होंदी ऐ। लाजो दा दाह-संस्कार कीता जंदा ऐ ते बसैंत राम मनै च प्रण पाई लैंदा ऐ जे ओह अपनी धिऊ कनै होई दी बे-इन्साफी गी बरदाशत नेई करग ते उनेंगी सख्त-शा-सख्त सजा दी मंग करग। ओह कोर्ट च केस दर्ज करोआंदा ऐ ते परोहत बी उसदा पूरा-पूरा साथ दिंदा ऐ। वकील उनेंगी अश्वासन दिंदा ऐ जे उ’नें मुजरमें गी ओह सख्त-शा-सख्त सजा दुआग।

नाटक च ऐसे लोकें दा यथार्थ प्रस्तुत कीता गेदा ऐ जेहड़े अपनी मेहनत दी कमाई करियै राजी नेई होंदे ते कुसै दी धियें गी ब्याहियै दाज दी मंग करदे न, अपनियां सारियां डिमांडा मनवांदे न ते जसलै कोई उंदी मंग गी पूरा नेई करी सकदा तां ओह उनेंगी मारी दिंदे ना। ऐसियां केई घटनां अज्ज दे पढ़े-लिखे समाज च बी दिक्खने गी लब्धा करदियां ना। ऐसे माहनुएं गी मनुक्खे दी कदर नेई पैसे दी कदर होंदी ऐ ते पैसे आस्तै ओह लोक कुसै बी हद्द तगर गिरी सकदे न ते दूएं दी नुक्सान पजाई सकदे ना।

जींदे जमदूत:- एह नाटक छें दक्खें च बंडोए दा इक हास्य नाटक ऐ। एह नाटक अर्थिक समस्या गी अधार बनाइयै लिखेआ गेदा ऐ जित्थें आमदन घट्ट ते खर्चा मता ऐ ते कोई बी कुसै दी मजबूरी ते जिम्मेबारी गी समझियै राजी नेई ते सब अपना-अपना लुच सेकना चांहदे ना। घर परोआर दी गड्डी रेड़ने आस्तै सबभनें दा सैहयोग होना बड़ा जरूरी ऐ पर जित्थें कमाने आह्ला इक ते होऐ ते खाने आहले दस ते उपरा दा जिम्मेवारियें दा फ्हाड़ पेई जा ते फ्ही घरे दे सदस्य बी फरमैशें पर फरमैशां पान जेहदे कनै घरे च कलेश बने दा र’वै तां माहनू दी चंगी भली जिंदगी नर्क बनी जंदी ऐ। इस नाटक च जारां पात्तर न जिंदे च ईशरो ते तिलका मुख पात्तर ते खसम, त्रीमत ना। रजनी ते राजू उंदे ज्यानें ना। नाटक दी शुरूआत ईशरो ते तिलका दी गल्ल बात कनै होंदी ऐ ते ईशरो अपने घरेआहले गी तान्ने मारदी ऐ जे जिसलै कोई तेहार औंदा ऐ तां उंदै कोई-नां-कोई मरी जंदा ऐ ते उसदा आखना ऐ जे ओहदे करवाचौथी दे बर्त रक्खने कनै गै तिलका दी उमर बदा करदी ऐ। इनें गल्लें परा उंदी बैहस शुरू होई जंदी ऐ। उंदे संवाद नाटक च लोकें गी हस्सने पर मजबूर करदे न जेहड़े नाटक दे शुरूआत च इस चाल्ली होए दे न:-

“ईशरो: में आखेआ जी, सब खैरियत ऐ ना। बड़े चुप्प-चाप होई बैठे दे ओ। कुतै तुं’दा बब्ब ते म्हाड़ा सौहरा भलेआं लेई नमस्ते ते निं करी गेआ।

तिलका: ओ गल्ल सुन तू मिगी चौबी घेंटे, धूं करने दा ठेका लेदा ऐ। बुड्ढी होई गेई ऐं, पर हाल्ली तगर तुगी, गल्ल करने दे चज्ज निं आए। गल्लां इ’यां करै दी ऐ, जि’यां ओह थुआढ़ा किश निं लगदा ऐ।

ईशरो: लगदा ऐ, लगदा ऐ, पर तु’म्मी किश म्हाड़ा लगना ऐ ना। जिसलै बी कोई त्यहार लागै औंदा ऐ, थुआढ़े मां ते बब्ब, दोऐ ढली जंदे ना।

तिलका: मे तुगी आखै न, चुप्प रौह चुप्प, म्हाड़े शा कुतै, पुड़ निं करायां।

ईशरो: तू केह पुड़ करना ऐं। जेकर तू करवा-चौथी पर मिगी द’ऊं नमियां साढ़ियां, द’ऊं सूट ते सुन्ने दे झुमके नेई लेई दिते तां ते पुड़ में करी देना ऐं।

तिलका: किसी बलल्ली जनानी ऐ ओए। हाल्ली दस दिन पैहलें, थुआदी भैनु दी कुड़ी दे ब्याह पर तुगी नर्मी साढ़ियां, सूट ते सुन्ने दा पूरा सैट्ट बनोआई दिता हा ते फही बी तूं गल्लां करै करनी ऐ। ओ शर्म कर किश शर्म, पैहें दा नास निं करोआ, पैहा बड़े औकखे कमान होंदा ऐ।

ईशरो: ओ मोआ एहू तूं पैहा, मेरे आस्तै निं खर्च करना, एहू तूं अपना गै मरना करना ऐ।

तिलका: केहू आखे दी ऐ, में अपना गै मरना करना ऐ।

ईशरो: बिलकुल मोआ, अ'ऊं बिलकुल, सच्च आखे दी आं।

तिलका: सूट ते साढ़ियां तूं पानियां, ते मरना म्हाड़ा करै करदी ऐ। बाहू ओ सती सवीतरियो।”²¹

इक पाससै घरे आहली कनै खुडबो-खुडबो लग्गी दी होंदी ऐ उर्थें गै दुए पाससै उसदी धीस रजनी बी नमां फोन ते पैसे मंगदी ऐ ते तिलका जिसलै उसगी समझांदा ऐ जे इस बरै उसदा मता खर्चा होई गोआ ऐ ते फोन ओहू बाद च लेई देग पर रजनी नेई मनदी ते उसदा मनना ऐ जे कुड़ियां घरा आहलें दा बड़ा खर्चा करोआदियां न पर ओहू इन्नां नेई करांदी। रजनी दे जिद्द करने पर तिलका उसगी पैसे देई दिंदा ऐ, उर्थें गे उसदा जागत राजू बी उसगी परेशान करने आस्तै आई जंदा ऐ ते अपना ब्याह कराने आस्तै आखदा ऐ पर तिलका नेई मनदा कीजे इसदा बड़डा जागत ते कुड़ी कुआरे होंदे न ते जिन्ने तगर ओहू उंदा ब्याहू नेई करी लैग तां निकके दा पैहलें कि'यां करी सकदा ऐ। समाज च ते उसदी बी इज्जत ऐ पर राजू धमकियां देना शुरू करी दिंदा ऐ। हास्य दे उदाहरण इस चाल्ली न:-

“राजू: बापू जी, केहड़ियें सोचें च पेदे ओ। मिगी दस्सो जे केहू परेशानी ऐ। होई सकदा ऐ जे अ'ऊं कोई उसदा हल्ल, कड़्ढी सकां।

तिलका: ओ पुत्तरा, म्हाड़ी परेशानी गी लेइयै भगवान बी बेबस सेही होंदा ऐ। इस करी तूं म्हाड़ी परेशानी छोड़ ते अपनी दसा।

राजू: तुगी पता ऐ बापू जेहूकी म्हाड़ी परेशानी ऐ, पर तूं गल्ल मन्नियै राजी गै निं। मिगी लगदा ऐ जे जिन्ने चिर में कोई पुट्ट निं कीता नां, तूं नि मन्नना।

तिलका: ओ गल्ल सुन ओए, तूं मिगी डरास निं। में तुआदे इ'नें फोके डरावें शा निं डरदा-डुरदा।

राजू: बापू में तुगी डरा निं करदा। में तुगी समझास करना। मन्नी जा, हाल्ली बी बेल्ला ई, निं तां पछतागा।”²²

इंदी गल्ल बात होआ गै करदी होंदी ऐ तां भैन विश्वा आई पुजदी ऐ ते सनांदी ऐ जे उसदी भनेही दा ब्याहू जुड़ी गेदा ऐ ते उसदी इज्जतू दा सवाल ऐ ते इज्जत तां गे बची सकदी ऐ जेकर ओहू अपनी भनेही गी पंज लक्ख रपेस दे गैहने बनाई देन ते इक दाजै च नमां बुलट बम्बूकाट ते सारा फर्नीचर बी देन ते ओहू जंदे जंदे 51 जहार रपेस दा सगन बी मंगदी ऐ।

देने आहले घट्ट ते मंगने आहले मते पिच्छें पेदे होंदे ना। सभनें च लैने दी गै भावना होंदी ऐ देने दी नेई। तिलके दा भ्रास बेली उसदे शा द'ऊं गज जमीन दा इन्साफ मंगदा ऐ पर तिलका उसदा मूहू बंद कराई घरा कड़्ढी दिंदा ऐ कीजे जित्थें देने दी बारी होऐ उर्थें ओहू इक रपेआ नेई लांदा ते नां गै मां-प्योस दी सेवा करदा ऐ। इन्नें चिरें च तिलका दे मासी मसेइया सोमी ते मोहनी बी उसदे कश आई जंदे न ते ड्रामा बनाइयै उसदे शा पैसे लेई जंदे ना। ओहू नाटक रचदे न जे उसदे नूहू-पुत्तर उंदी सेवा नेई करदे ते ओहू तिलके कश रौहडन ते तिलके गी तरस आई जंदा ऐ ते ओहू उमेंगी हर म्हीनै पैसे देने गी मन्नी जंदा ऐ। इस चाल्ली हर कोई उसदा फायदा दुआंदा ऐ। तिलका इक दिन बमार होई जंदा ऐ पर उसदे घरे आहलें गी बी उसदी फिकर घट्ट ते उसदे पैसों दी फिकर मती होंदी ऐ।

“ईशरो: में आकखेआ तारेआ, थुआदे बापू दी हालत किस माड़ी होंदी जा दी ऐ। तूं तौले-तौले जा, ते कुसै स्याने जनेहू डॉक्टरे गी सदी आहना।

तारा: ठीक ऐ बेबे, मे हुनै गोआ, ते हुनै आया।

तिलका: ओ कोई फेदा निं। मिगी लगदा ऐ जे मे निं हून बचना।

ईशरो: तु'स कैसियां गल्लां करै करदे ओ जी, हाल्ली असें बड़े कम्म करने ना। तु'स मिगी अद्ध मझाटे नेई, छुड़ियै जाई सकदे, एहूदे आस्तै भाएं मिगी, बरै च द'ऊं द'ऊं बारी की निं करवा चौथी दा बर्त रक्खनै पौगा। अ'ऊं रक्खडा।

तिलका: तू हूँ भाएँ बरें च, द'ऊं बारी छुड़ियै, चार पंज बारी बर्त रक्ख, पर म्हाड़े, जिन्ने सुआस लिखे दे न, उन्नै गै रौहने ना ईशरो: आएओ मेरे सिरै देआ साहियां, नेह् कबोल नि बोला। ओ उठ पुत्तर रजनी, बड़ी गर्मी ऐ। अपने बापू गी पक्खी झोला। बिच-बिच फनाका मिगी बी दिंदी र'मेआं।”²³

तिलका एह सब दिक्खी बड़ा दुखी होंदा ऐ कीजे उसदी प्रवाह कुसै गी नेई होंदी सब्भने गी एह फीकर होंदी ऐ जे उसदे नेई रौहने करी सारें गी नुक्सान होई जाना ऐ। सब्भे बड़ा बरलाप करदे न पर सारें गी तिलका दी घट्ट ते अपनी चिता मती होंदी ऐ। संवाद दिक्खो:-

“तिलका: जमदूत जी, मिगी तौले-तौले लेइयै इत्थू नट्टने आहली गल्ल करो, नि तां इ'नें जीदे जमदूतें होर पता निं केह-केह डमांडां, रक्खी देनियां ना।

(तिलके दी लाड़ी यानि ईशरो उठियै खट्टे दे अगै बेही गलांदी ऐ।)

ईशरो: ओ नेई मेरिये जिंदे में निं तुगी जान देना। ओ कोई रोको इ'नेंगी। ओ राजू पुत्तरा रोकी लै अपने बापू गी।

(विश्री यानि तिलके दी भैन, गलांदी ऐ।)

विश्री: ओ बीरा, में नि तुगी जान देना। तेरे बगैर साढ़ा केह् होगा। तेरी भनेही दे ब्याह् दियां, असें साइयां बी सब देई ओड़ी दियां ना।

रजनी: ओ मेरेआ बापू, मेरे बारै बी, किश सोचदा जा।

मोहनी अपने घरे आहले गी यानि सोमी गी गलांदी ऐ।

मोहनी: ओ तु'म्मी किश बोल्ली लै झुड्डुआ। जो किश लैना ई, तोले-तोले लेई लै। मगरा किश निं जे थोना। लगदा ऐ साढ़ी पिन्शान हूँ गेई।

तिलका: जमदूत जी, दिक्खै केह् करदे ओ। मिगी तौले-तौले लेने आहली गल्ल करो। मेरी इ'नें जीदे जमदूतें शा खलासी कराओ, नि तां इ'नें जीदे जमदूतें मेरा होर बुरा हाल करी देना ऐ।

जमदूत: चल भाई, लेई चल इ'नेंगी।”

जमदूत तिलके गी ठुआलदे न ते एह्दे कन्नै गै, उसी लेई जान लगदे ना। ईशरो खट्टे दे अगै बाह्मां सिद्धियां करी, खड़ोई जंदी ऐ ते गलांदी ऐ।

“ईशरो: ओ में निं इसी जान देना। ओ मेरेआ शेरा इक्कली गी की छोड़ियै चलेआं ऐ।

राजू: ओ बापू मिगी कुआरा भूत बनने पर कैहसी मजबूर करै करना। ओ मेरा ब्याह् करोआई जंदा ते तेरा केह् जाना हा।

मोहनी: ओ झुड्डूआ फड़ ओए, गेई आ साढ़ी पिन्शान।

विश्री: ओ बीरा नानकियें दा फर्ज नभांदा जा।”²⁴

नाटक च परोआर ते रिश्ते नातें दे अंदर सुआर्थ दिक्खने गी लभदा ऐ ऐ। अज्ज पैसा कोल होऐ तां रिश्ते बचदे न, नेई तां सिर्फ तान्ने गै सुनने गी मिलदे ना। हर कोई अपने मतलब गी रोंदा ऐ ते जित्थें माह्नु दी कदर उसदे गुणें कन्नै नेई पैसे दे पिच्छें होंदी ऐ कीजे हर कुसै दे दिलै च अपना सुआर्थ झलकदा ऐ।

लेट:- एह् बी इक हास्य नाटक ऐ जिसदे च ऐसे ज्यानें दे माता-पिता दी सोच गी बांदै कीते दा ऐ जेह्ड़े अपनी लुआद गी सिर चाढ़ी रखदे न न ते उंदी गलती होनें पर बी उ'नेंगी दोश नेई दिंदे उल्टा दूएँ दे सिर दोश मढ़दे ना। ऐसा करने कन्नै ओह् अपना नुक्सान दे करदे गै न, पर अपने बच्चें दी जिंदगी बी बरबाद करदे ना। नाटक च दस्स पात्तर ना। बुगधू, मास्टर जी, विद्यार्थी जि'यां घसीटा, ठैन्, गुन्ना, फु'म्मन, लोटा, शैंकर लोटे दा बब्ब ते शैंकरी लोटे दी मां ऐ। नाटक च हास्य दी गल्ल करचै तां पात्तरें दे नांs सुनियै गै हास्सा निकली जंदा ऐ। नाटककार ने नाटक च ऐसे चुनिंदा नांs रक्खे दे न जेह्ड़े सब्भनें गी हस्सने पर मजबूर करदे न जि'यां- घसीटा, ठैन्, गुन्ना, फु'म्मन, लोटा। नाटक दी शुरुआत मास्टर ते बुगधू दी गल्ल-बात कन्नै होंदी ऐ, जेह्ड़ा स्कूलै च चपड़ासी ऐ। ओह् घरा दा बड़ा दुखी होंदा ऐ ते मास्टर दे हाल चाल पुच्छने पर बुगधू आपरच्छें च आई जंदा ऐ ते अपने घरे दी दशा सनांदे होई गलांदा ऐ:-

“मास्टर: ओ में आखेआ, बाल-बच्चा, घर परोआर बगैरा-बगैरा सब ठीक ऐ नां।

बुगधू: हीं...ही...ही जनाब उ'नें सौहरे गी केह् होवै करदा ऐ, बैहलियां खा दे, खु'ल्ला न्हाs दे, दब्बी सोहा दे ते कम्म करनै तै बुगधू सघंद तु'दी ढलदी बरेसै दी।

मास्टर जी: ओ बुगधू रामा, कम्म करना ते टब्बै गी पालना साढ़ा फर्ज ऐ।

बुगधू: हीं...हीं...हीं...जनाब छड़ा साढ़ा फर्ज ऐ। उं'दा कोई फर्ज निं, ओहू सौहरे छड़ियां मौजां लुट्टन आए दे ना जेहू माड़ा नेईं बुज्झो तां में, इ'यै आखड जे, उ'नें सौहरे गी जुट्टियै, बड्डलै, त्रकालें घटाप्पा फेरना चाही दा ऐ, सधंद तुं'दी ढलदी बरेसै दी।²⁵

मास्टर होर जि'यां गै पढ़ानें आस्तै क्लासा च जंदे न तां सारे विद्यार्थी मास्टर होरें गी नमस्ते करदे न पर उत्थें गै इक जागत लोटा क्लास च लेट औंदा ऐ तां सारे मास्टर अगें उसदी शकैल करदे न ते बुगधू मास्टर होरें गी सनांदा ऐ जे एहू उसदी साली दा जागत ऐ इसकरी ओहू उसगी निक्खरन नेईं, कीजे उसदी साली ने उसदे कन्नै नराज होई जाना ऐ। मास्टर होर जिसलै क्लास च हाजरी लांदे न तां उदे इस अंदाज ते बच्चें दे परते गी सुनियै हास्सा आई जंदा ऐ।

“मास्टर जी मेजै परा, रजिस्टर चुक्कियै विद्यार्थियें दी हाजरी लांदे ना सब्भै विद्यार्थी, अज्जे दी हाजरी सुनो:-

मास्टर: रोल नं. इक, घसीटा।
घसीटा: हाजर आं, जनाब।
मास्टर जी: रोल नं. दो, ठैनू।
ठैनू: जनाब, हाजर आं।
मास्टर जी: रोल नं. त्रै गुन्ना।
गुन्ना: हाजर आं, जनाब।
मास्टर जी: रोल नं. चार फुम्मना।
फुम्मन: जनाब, हाजर आं।
मास्टर जी: रोल नं. पंज, लोटा।

फुम्मन: मास्टर जी दिक्खो-दिक्खो, लोटा हुनै-हुनै अवै करदा ऐ। एहू रोज गै लेट औंदा ऐ।²⁶

मास्टर होर जिसलै लोटे गी लेट पुज्जने दे कारण बारे पुच्छे न तां ओहू आखदा ऐ जे इसदे च उसदा कोई कसूर नेईं ऐ ते ओहू अपने माता-पिता गी अगले दिन स्कूल सद्दी आहून्दा ऐ ते मास्टर होर उ'नेंगी दी कोशश करदे न पर लोटे दी मां शैंकरी परें'र पानी निं पौन दिंदी ते अपने पुत्तरे दी तरीफ करदी ऐ ते मास्टरै गी गलांदे होई आखदी ऐ:-

“मास्टर जी: जनाब तुसेंगी अज्ज इत्थें सद्दे दा, साढ़ा मतलब एहू ऐ जे तुंदे जागत लोटे दे बारे च किश गल्ल-बात करनी ही। शैंकर: दस्सो-दस्सो, केहू गल्ल-बात करनी ऐ। अस जरूर करने आं।

शैंकरी: केहू आखै देओ जे, इ'नें साढ़े जागतै गी कुट्टेआ ऐ। डुंडू भन्नी देड ओहूदे जेहूड़ा म्हाड़े लाडले पुत्तर गी हत्थ लागा।²⁷ लोटा मास्टर होरें गी सनांदा ऐ जे ओहू स्कूल लेट की औंदा ऐ। लेट होनें पर ओहू सारा कसूरबार अपने माता-पिता दे सिर चाढ़दा ऐ कीजे उसदे लेट होनें पिच्छें केई कारण न जिनेंगी सनांदे होई ओहू गलांदा ऐ:-

“लोटा: स.स.सारे शां पैहलें म...म... म्हाड़े माऊ बब्बै दा ब...ब... ब्याहू होआ लेटा। अ...अ...अ'ऊं जम्मेआ लेटा। में...में...टुरना शुरू कीता लेटा। में...में...में...बोलना शुरू कीता लेटा। मि...मि...मिगी स्कूलै च द...द...दाखल कराया लेटा।

इ...इ...इस करी में सोना बी लेट ते...ते...बड्डलै उट्टना बी लेटा। प...प...पर फही बी में घरा स...स...सबेला चलना पर प...प...पता निं कैहसी फही बी स...स...स्कूल पुज्जना लेटा। स...स...सच्च दस्सां तां मेरा हून टैमै सिर कु...कु...कुतै बी जाने गी दिल गै निं करदा।

मास्टर जी: लोटे पुत्तर जम्मना, बोलना ते टुरना एहू सब परमेसर दी गै, मौज होंदी ऐ।

लोटा: ज...ज...जनाब मिगी केहू पता ऐ जे ए...ए... एहू कोहूदी मौज होंदी ऐ। में...में...मेरे शा जो होआ करदा ऐ अ...अ...अ'ऊं उ'ऐ सनास करना।²⁸

मास्टर जी लोटे ते उसदे माता-पिता गी समझांदे न ते लोटे गी गलांदे न जे असेंगी अपना हर कम्म टैमे सिर करना चाहिदा, कीजे बेल्ला कदें बी हत्थ नेईं औंदा ते जिसलै अस इक बारी लेट होई जन्ने तां सारी उमर असेंगी पछताना पौंदा ऐ। नाटक च बच्चें दी अनुशासन दी कमी गी बांदै कीते दा ऐ ते एहू सनेहा दित्ते दा ऐ जे असेंगी समें दी कदर करनी चाहिदी कीजे बीते दा समां कदें बी बापस नेईं परतोंदा। असेंगी खूब मेहनत करनी चाहिदी ते अपने मकसद च कामजाब होना चाहिदा। उत्थें गै हर मां-प्योस गी अपने बच्चें दी गलती गी नजरअंदाज नेईं करियै उ'नेंगी गलती करदे टोकना जां चंड-धप्फ बी करनी चाहिदी तां जे

बच्चों की डर र'वै ते ओहू ऐसी कोई गलती परतिये नेई करन जिसदे कनै उसदे मां-प्योस की शर्मसार होना प'वै। बच्चों च अनुशासन की विकसित करना गै इस नाटक दा मुख उद्देश्य ऐ।

निष्कर्ष:

पी.एल.परीहार 'शौक' हुंदे नाटक "जींदे जमदूत" च जीवन की वास्तविक परिस्थितियें ते मनुखी संवेदनाएं दा प्रभावशाली चित्रण होए दा मिलदा ऐ। लेखक ने समाज की समस्याएं ते विसंगतियें की सरल ते रोचक भाषा च प्रस्तुत कीते दा ऐ। रचना दे माध्यम कनै मनुखी मुल्लें ते संवेदनाएं दा महत्त्व स्पष्ट होंदा ऐ। इसदे च जीवन दे संघर्षों ते अनुभवं की सैहज रूप कनै अभिव्यक्त कीता गेदा ऐ। लेखक दा उद्देश्य पाठकें की समाजक च फैला करदी विसंगतियें कनै रूह-बरूह करोआना ऐ। इसचाल्ली एह नाटक डोगरी साहित्य च अपनी विशेष पनछान बनाने दा हूनर रखदा ऐ।

ग्रंथ-सूची

- ¹ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-13
- ² पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-15
- ³ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-19
- ⁴ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-19,20
- ⁵ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-21
- ⁶ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-21
- ⁷ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-22
- ⁸ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-24
- ⁹ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-24
- ¹⁰ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-24
- ¹¹ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-25
- ¹² पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-25
- ¹³ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-29, 30
- ¹⁴ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-32
- ¹⁵ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-38
- ¹⁶ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-45
- ¹⁷ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-54, 55
- ¹⁸ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-65
- ¹⁹ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-75
- ²⁰ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-76
- ²¹ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-85, 86
- ²² पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-89, 90
- ²³ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-102
- ²⁴ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-104-105
- ²⁵ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-109
- ²⁶ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-110, 111
- ²⁷ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा-116
- ²⁸ पी.एल.परीहार 'शौक', जींदे जमदूत-2023, सफा -118, 119

Organisational Product Preference and Knowledge Intermediation in Bank-Led Mutual Fund Distribution: Evidence from India's Financial Services Sector

Arnav Bansal*

Dr O.P.B Shukla†

Abstract

The growth of India's mutual fund industry has made bank-led distribution channels really important. But most research has focused on how investors behave and how funds perform, without looking at how mutual funds are actually distributed. This study looks at the factors that affect mutual fund distribution, based on observations and interviews with bank employees, managers, and investors in the National Capital Region. It found that distribution outcomes are influenced by things like organisational priorities, performance measurement systems, digital platforms, and knowledge sharing between banks and asset management companies. The study introduces two new concepts: Organisational Product Preference, which explains why banks promote their own financial products more, and Knowledge Intermediation by Asset Management Companies, which highlights the role of asset management companies in providing investment knowledge and advice. To make India's mutual fund ecosystem stronger, banks and asset management companies need to work together to improve investment advice, financial literacy, and long-term wealth creation, and make sure their incentives align with what's best for investors. This can be achieved by enhancing collaboration and aligning organisational priorities with investor outcomes, ultimately leading to a more sustainable and effective mutual fund distribution network. Understanding Bank-Led Mutual Fund Distribution in India: Organisational Priorities, Advisory Capability and the Strategic Role of Asset Management Companies

Background of HDFC Bank

HDFC Bank Limited is a major player in India's private sector banking. It all started in August 1994, when the Reserve Bank of India decided to open up the banking sector. The bank began its journey as a scheduled commercial bank in January 1995. Over the years, HDFC Bank has grown rapidly, thanks to a mix of organic growth, innovative technology, strategic acquisitions, and a key merger with HDFC Limited. This merger really boosted the bank's retail banking and housing finance capabilities, setting it up for long-term success. As of now, HDFC Bank is looking ahead to 2025, with big plans to continue expanding and improving its services. With its strong foundation and commitment to innovation, the bank is well-positioned to remain a leader in the Indian banking sector. HDFC Bank is now the biggest private bank in India, with a strong presence in the market, a

* Research Scholar, Dept of Public Administration,
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow

† Head, Dept of Public Administration, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow

large customer base, and a big scale of business. By the end of June 2026, the bank had 9,694 branches and 20,958 ATMs in 4,175 cities and towns. Nearly half of its branches are in semi-urban and rural areas, which shows how far it has reached. The bank also has a big network of Business Correspondents, which helps to include more people in the financial system across India. This network is very important for the bank and helps it to reach even more people. The bank's large presence in semi-urban and rural areas is a key part of its strategy to expand its customer base and increase financial inclusion. With its big network of branches and ATMs, HDFC Bank is able to provide banking services to a large number of people in India. The merger of HDFC Bank and HDFC Limited resulted in the creation of a massive financial institution, with a huge market capitalisation. This move greatly increased the bank's customer base, and also expanded its deposit franchise, loan portfolio, and distribution capabilities. Today, HDFC Bank has one of the biggest deposit books among private banks in India, and it provides a wide range of banking and financial services to millions of customers, including retail, corporate, and institutional clients, all under one roof. As of 2025, HDFC Bank continues to be a major player in the Indian banking sector.

For the purpose of this research, HDFC Bank provides an ideal case because of its extensive branch network, diversified customer base, mature cross-selling ecosystem, and strong emphasis on investment product distribution through frontline relationship managers and branch employees. These characteristics make it an appropriate setting for examining employee perceptions regarding mutual fund cross-selling and SIP promotion.

The bank maintains one of the largest deposit franchises in the Indian banking industry. During the quarter ending **30 June 2026**, total deposits exceeded **₹31.7 lakh crore**, while gross advances crossed **₹30.6 lakh crore**, reinforcing its position as India's leading private sector lender. (HDFC Bank 2025)

Scale and Financial Strength of HDFC Bank

As of the financial year ended 31 March 2025, HDFC Bank reported a total deposit base of approximately **₹27.15 trillion**, making it the largest deposit franchise among India's private sector banks. Deposits represent the primary source of funding for commercial banks and are critical for supporting lending activities, maintaining liquidity, and ensuring financial stability. A large and diversified deposit base enables banks to reduce dependence on wholesale funding markets while improving profitability through lower funding costs (HDFC Bank 2025; Reuters 2025).

The bank gave out a huge amount of loans, over **₹26 trillion**, in the financial year 2024-25. This shows that it lends money to a wide range of customers, including individuals, big companies, small and medium-sized businesses, farmers, and infrastructure projects. The bank's loan portfolio is well-diversified, which means it doesn't rely too heavily on any one type of loan, reducing the risk of big losses. This diversification also helps the bank to keep growing its lending business in a sustainable way. After merging with HDFC Ltd., the bank's loan portfolio got a big boost from taking on one of India's largest housing finance portfolios, making its retail lending business even stronger. (HDFC Bank 2025)

One of the key indicators of **HDFC Bank's financial strength is its CASA franchise** (Current Account and Savings Account). CASA deposits are funds held in current and savings accounts that usually carry a lower interest expense than fixed deposits. A strong CASA franchise thus results in a lower cost of funds for the bank, better net interest margins and higher profitability in the long run.

HDFC Bank has always maintained one of the strongest CASA franchises in the Indian banking industry and this is a key competitive advantage for the bank in terms of both lending and investment distribution (HDFC Bank 2025).

Profitability metrics are also strong for the bank. These are Net Interest Income (NII) which is the difference between the interest earned on loans and investments and the interest paid on deposits and borrowings, Return on Assets (ROA) which is the measure of how efficiently the total assets are used to generate profits and Return on Equity (ROE) which is the measure of the returns generated for shareholders. Collectively, these indicators reflect the bank's operational efficiency and financial resilience amid the integration challenges of one of India's largest banking mergers (HDFC Bank 2025).

Another major strength of HDFC Bank is its asset quality. The bank has consistently reported relatively lower Gross Non-Performing Asset (GNPA) and Net Non-Performing Asset (NNPA) ratios as compared to overall Indian banking industry. Lower NPA levels signify a prudent credit appraisal, efficient loan monitoring and strong recovery mechanisms, thereby reducing credit risk and enhancing investor confidence (HDFC Bank 2025).

The bank's capital position is backed by a robust Capital Adequacy Ratio (CAR) under the Basel III regulatory framework. Capital sufficiency is a measure of a bank's ability to absorb unforeseen losses from credit, market and operational risks thru its capital. Depositor confidence and future company growth are supported by maintaining capital levels above regulatory minima (HDFC Bank 2025).

Another key financial indicator is the Loan to Deposit Ratio (LDR), which measures the ratio of deposits used for lending purposes. HDFC Bank's LDR hovered higher temporarily post the HDFC Ltd merger as the acquisition brought a sizable home-loan book without a concomitant rise in deposits. Since then, the bank has concentrated on enhancing deposit mobilisation, especially retail deposits and CASA balances, with management targeting a gradual return to a more balanced LDR over the medium term (Reuters 2025).

HDFC Bank is one of the most valuable listed corporations in India in terms of market capitalisation and is the largest private sector bank in India in terms of assets. This makes it a good bet for an investor. It has also been identified as a Domestic Systemically Important Bank (D-SIB) by the Reserve Bank of India (RBI) on the basis of its systemic importance to the Indian financial system. This designation indicates the systemic importance of the bank and the necessity for increased regulatory control (HDFC Bank 2025).

The financial strength of the bank has also enabled HDFC Bank to create one of the largest distribution networks in wealth management and third party financial products in India. Its wide branch network, diversified customer base, strong deposit franchise and solid capital position create a perfect environment for distribution of mutual funds, insurance products and other investment solutions. Relationship Managers, Personal Bankers, Imperia Relationship This financial strength and customer trust is leveraged by the managers and wealth advisers to promote long term investment products like Systematic Investment Plans (SIPs) and thereafter making HDFC Bank an acceptable institutional environment for the present research.

HDFC Bank Revenue and Earnings Model

HDFC Bank has a diversified universal banking model with income from interest based as well as non-interest (fee based) businesses. Interest generated on loans is the bank's greatest source of

revenue but revenue lines that are growing include commissions, distribution of third party financial products, treasury operations, digital banking services, foreign exchange transactions and wealth management. This diverse revenue structure also decreases dependence on a single business segment and improves the bank's profitability and resilience across several economic cycles (HDFC Bank 2025). • Net Interest Income (Primary Income Source) Net Interest Income (NII) is the most important contribution to HDFC Bank's revenues. It is the difference between the interest earned on interest earning assets and the interest paid on liabilities.

HDFC Bank's Net Interest Income (NII) for FY2024-25 amounted at ₹1.26 lakh crore (₹1.26 trillion), showing further expansion in its loan book, even as net interest margins softened post the HDFC Ltd. merger. The main income of the bank comes from house loans, personal loans, car loans, business loans, MSME finance, corporate loans, agricultural loans, working capital finance, overdraft and investment in government securities. Interest will be paid on savings accounts, current accounts (where applicable), fixed deposits, recurring deposits, borrowings and re financing facilities. The difference between these two cash flows is the principal operating income of the bank.

The NII accounts for 70-75% of the entire operational revenue of HDFC Bank. HDFC Bank's key business is lending.

- Income from interest on loan activities

Corporate and commercial lending provides a solid source of long-term income, while retail lending accounts for a considerable share of overall advances. Spreading business over customer groups lowers accumulation risk and smoothen interest earnings. • Fee income (non-interest income) HDFC Bank also makes significant non-interest income from its fee based operations other than lending. Other income for FY2024-25 was more than ₹44,000 crore, making it one of the biggest fee income franchises in the Indian banking space. This revenue stream is strategically essential because it does not involve the commitment of extra capital as does lending and consequently typically has greater operating margins.

The main components are:

Commission income, processing fees, loan documentation fees, distribution commissions, credit card fees, debit card fees, account service costs, foreign exchange income, treasury income, merchant acquisition charges, digital payment fees and asset management fees. • Fee income from distribution of mutual funds Commission gained from the distribution of third party investment products, especially mutual funds, is one of the fastest growing elements of fee income.

HDFC Bank is a registered distributor for many Asset Management Companies (AMCs) like HDFC Mutual Fund, SBI Mutual Fund, ICICI Prudential Mutual Fund, Nippon India Mutual Fund, Aditya Birla Sun Life Mutual Fund, Kotak Mahindra Mutual Fund, Axis Mutual Fund, Franklin Templeton, DSP Mutual Fund, Canara Robeco Mutual Fund and many more. The bank collects trail commission, upfront commission (whenever permitted by legislation), advising fees (where applicable) and distribution incentive as per SEBI and AMFI regulations. These commissions are recorded as fee income and not interest income.

SIPs are very valuable because they create trail income year after year for many years to come and they assist foster long-term client ties. Thus, the bank is driving its front line staff comprising of

Relationship Managers, Personal Bankers, Imperia Relationship Managers and Wealth Managers to attract the correct set of customers and push SIPs as part of the bank's cross selling initiatives.

Total Product & Service Portfolio "HDFC Bank has one of the most diversified product portfolios amongst the Indian private sector banks with over 300 products and services in banking, lending, investment, insurance, treasury, digital and wealth management across retail, commercial, corporate, rural and international banking segments.

Experiential report on distribution of mutual funds at HDFC Bank branches (Field Observations)

I was the sales head for National Capital Region (NCR) for a third party AMC for few months with HDFC Bank as the key distribution channel. This job was responsible for daily interaction with branch managers, cluster heads, RMs, PBs, Imperia RMs, Preferred Banking teams, Classic Banking teams and other front line banking workers from various branches.

I have not done any surveys. These are all observations based on significant field exposure. The provide practical insights into how mutual fund distribution works in the branch ecosystem and how it is preferred over other banking products.

1. Mutual fund distribution is a low strategic priority:

One of the most noticeable observations throughout this period has been the distribution of mutual funds, notably SIPs, getting relatively little attention from the frontline bankers.

Mutual funds are a significant investment product, but appear to play a comparatively little role in the performance scorecards of relationship managers, personal bankers and branches. Hence, front line workers do not typically perceive SIP mobilisation as a key consideration in their performance appraisals or career development.

per our interactions with senior executives at the banks including Cluster Heads, Regional As Leadership and several Relationship Managers, mutual fund distribution would be the least chosen key business objective for HDFC Bank. In a broad portfolio of approximately twenty-two key product categories, mutual fund distribution would probably be eighteenth or nineteenth in terms of management attention and predicted revenue contribution.

These sentiments were frequently expressed during conversations with veteran banking professionals such as Cluster Heads Karan Malhotra (K.G. Marg Cluster) and Yatin Sehgal (Defence Colony Cluster), Regional Head Manmeet Malik Singh, and a number of branch managers and relationship managers, including Nishant Agarwal, Komal Singh, Ankit Singh, Ruby Arora, and Vijay Kumar Aggarwal.

2 Shorter Redemption Period for Mutual Funds

There was virtually little time set aside to promote SIP among the branches.

Field investigations reveal that most branches appear to spend no more than one to two hours a month on SIP campaigns or mutual fund mobilisation. The majority of SIPs generated during this time were either on the account of: current consumer interest, repeat investments, long term investors already mapped to RM or opportunities uncovered unintentionally during the course of routine customer interactions. The high lump sum investments also seemed to be driven mostly by existing customer connections among wealthy individuals, rather than proactive sales efforts.

3. Scorecard Incentives, Contribution to Revenue

In talks with bankers one point that was raised was that the distribution of mutual funds is simply a minor part of the revenue of a branch compared to core banking products.

More crucially, bankers consistently stressed that SIP mobilisation does not matter much on their internal scorecard.

Performance evaluation appears to be far more sensitive to:

CASA takeover.

Loans to retail

Loans to individuals

Home loans.

Credit card

Insurance sales

Cross-sell core banking products

Estimated Revenue Contribution by Business Segment – HDFC Bank

Note: HDFC Bank does not publicly disclose revenue by individual products or sub-businesses. The percentage contributions below are analytical estimates derived from audited segment disclosures, annual reports, investor presentations, RBI reporting conventions and industry structure (HDFC Bank 2025; RBI 2025).

Rank	Business Segment	Estimated Contribution	Revenue Type
1	Retail Lending	34–36%	Interest Income
2	Corporate & Wholesale Banking	24–26%	Interest + Fees
3	Treasury & Investment Operations	11–13%	Treasury Income
4	CASA & Deposit Franchise	8–10%	Indirect via NII
5	Credit Card Business	5–6%	Interest + Fees
6	Commercial & MSME Banking	4–5%	Interest + Fees
7	Insurance Distribution	2.5–3.5%	Commission Income
8	Transaction Banking & Cash Management	2–3%	Fee Income
9	Merchant Acquiring & Digital Payments	1.5–2.5%	MDR & Fees
10	Trade Finance & International Banking	1.5–2.5%	Fee Income
11	Wealth Management & Advisory	1–2%	Advisory Fees
12	Mutual Fund Distribution	0.8–1.5%	Trail & Distribution Commission
13	Capital Markets & Securities	0.5–1.0%	Brokerage
14	NRI & International Retail Banking	0.5–1.0%	Forex & Service Fees
15	Ancillary Banking Services	0.2–0.5%	Service Charges

In-text citation: Estimated from HDFC Bank's audited financial statements, investor presentations, RBI reporting framework, and industry evidence (HDFC Bank 2025; Reserve Bank of India 2025).

These tasks are significantly more important in performance monitoring therefore it's reasonable that most of the effort of the front line would be focused to them.

In instance, insurance distribution was traditionally considered more significant than mutual fund mobilisation, because of the higher scorecard weighting, and the greater management emphasis.

4. Asset Management Companies 'Pressure

The mutual fund business is a lower organisational priority although branches still produce SIP business.

But much of the rationale appears to be continuous external pressure from the AMC's rather than any internal objectives of the branches.

In-house and third-party asset management organisations like Canara Robeco and HDFC Mutual Fund also promote SIP mobilisation and have representatives who visit branches regularly.

“From AMC perspective, banks are one of the biggest and most efficient distribution channels. Thus, asset management organisations heavily rely on bank branches for customer acquisition, asset mobilisation and long term profitability.

Thus AMC's put great efforts thru:

persistent branch visits product presentations sales campaigns contests incentive programs permanent follow-ups relationship development with branch personnel.

Without such continued engagement, it is probable that mutual fund mobilisation would receive even less attention in branches.

5. Organisational Culture Does Not Value Distribution of Mutual Funds

Another major observation is the organisational culture.

Mutual fund distribution did not appear to be the core business identity of most branches during the study period.

Rather, branch culture was intensely committed to:

mobilisation of CASA, loan growth, insurance business, customer acquisition, operational compliance, recovery, quality of service, regulatory targets.

Therefore, mutual fund sales often became a task that was done only after higher-priority goals had been achieved.

6. Employee Workload and Burnout

One of the most eye-opening things about branch operations was the workload carried by front-line employees.

Relationship Managers would generally arrive at the branches around 9 a.m. and often worked until about 7 p.m. for almost 10-hour workdays.

During this time, employees were also simultaneously managing:

customer servicing, relationship management, documentation, loan processing, CASA acquisition, compliance requirements, operational responsibilities, internal reporting, multiple product targets.

Many bankers reported being under constant pressure to meet challenging targets.

Therefore, mutual fund distribution often had a lower operational priority, as employees had only a limited amount of time and capacity available after fulfilling core banking responsibilities.

7. Pressure from various business vertical teams

Meanwhile, branch employees are being pressured by several different specialist sales teams.

In many branches insurance representatives are permanently present and all day long are actively pursuing insurance business.

And teams representing loans and liabilities, digital products and other banking verticals are also continuously looking for business from the same customer base.

This creates a very competitive internal environment where the mutual funds are competing with several other products for the limited attention of customers and the time of employees.

8. The Chief Driving Forces Behind SIP Sales

From repeated field interactions, SIP sales seem to be less of an intrinsic motivation and more of external incentives and organisational pressure.

The main drivers identified were: .

pressure from AMC reps, follow-ups by sales manager, short-term contests, recognition programs, informal rewards (pizza parties), short-term incentive campaigns.

These mechanisms seemed to cause temporary spikes in SIP mobilisation, but did not necessarily create a culture of mutual fund distribution.

9. Summary Evaluation

Overall, the results suggest that the distribution of mutual funds is of relatively marginal importance for the day-to-day operations of the branch, although of strategic importance for the asset management industry.

Banks continue to be an important distribution channel for mutual funds, but frontline bankers are engaged in activities that have a greater bearing on branch profitability, individual scorecards and managerial appraisal. Consequently, mutual fund distribution is often relegated to a secondary activity undertaken on the prompting of AMCs rather than as a core organisational priority.

These field observations provide important context to understand the behavioural, organisational and incentive-related factors that influence mutual fund cross-selling by frontline banking employees and form the basis of the empirical investigation undertaken in this study.

Organisational Product Preference (OPP) - A Conceptual Model

One of the key findings that emerges from the present field study is the presence of what this paper conceptualises as Organisational Product Preference (OPP).

HDFC Bank operates on an open-architecture mutual fund distribution model, which enables it to distribute products of various asset management companies (AMCs). Nonetheless, field observations indicate that the organisational ecosystem invariably provides greater visibility, familiarity and operational support to its own asset management company, HDFC Mutual Fund.

This preference is not expressed in the form of restrictions on the choice of the customer or the exclusion of competing products. Rather, it is a result of the cumulative impact of organisational procedures, digital infrastructures, employee knowledge, internal studies, product dissemination, and institutional culture, all of which contribute to a heightened visibility of in-house products in everyday banking activities.

Hence, this paper proposes the concept of **Organisational Product Preference (OPP)** as a lens through which to understand product distribution behaviour in integrated financial institutions.

Meaning

Organisational Product Preference (OPP) is defined as:

The natural tendency for an integrated financial institution distributing under an open-architecture distribution model to provide greater organisational visibility, operational familiarity, digital prominence, advisory support and institutional reinforcement to its own financial products while still distributing competing third-party products.

OPP does not eliminate customer choice like exclusive distribution models. Instead, it has an indirect effect on the environment in which product recommendations are made, increasing the likelihood that in-house products will be given more weight in the consulting and sales process.

Dimensions of Organisational Product Preference

Field observations suggest that Organisational Product Preference is mediated by several interlinked dimensions.

1. Visibility of the Organization

Increased exposure for in-house products is achieved thru:

internal comms, sales meetings, branch campaigns, employee engagement, management discussions, business reviews.

Repeated exposure creates organisational familiarity and confidence amongst front line employees.

2. Digital Preference:

The design of the investment platform and the investment workflows reinforce the organization's preference for the bank's own investment platforms.

Observable characteristics are:

highlighted recommended funds proprietary research default visibility of preferred products recommendation labels suitability prompts during investment selection

Although customers are free to select other AMCs, the digital environment exposes more to the institution's preferred products.

3. Preferential Advice

Relationship Managers and Personal Bankers naturally get more comfortable discussing products that they deal with regularly.

Repeated exposure to the organization leads to:

product familiarity, recommendation confidence, ease of explanation, customer comfort.

And so, advisory conversations tend to initially focus on in-house products, and then move to competing alternatives, as needed.

4. Commercialisation Alignment

From a commercial perspective, promoting its own products enables financial institutions to extract the maximum value from their integrated financial ecosystem.

And at the same time, an open architecture platform means the bank can serve customers who want to buy third party products, protecting customer relationships and the distribution income that comes with them.

5. Cultural Reinforcement

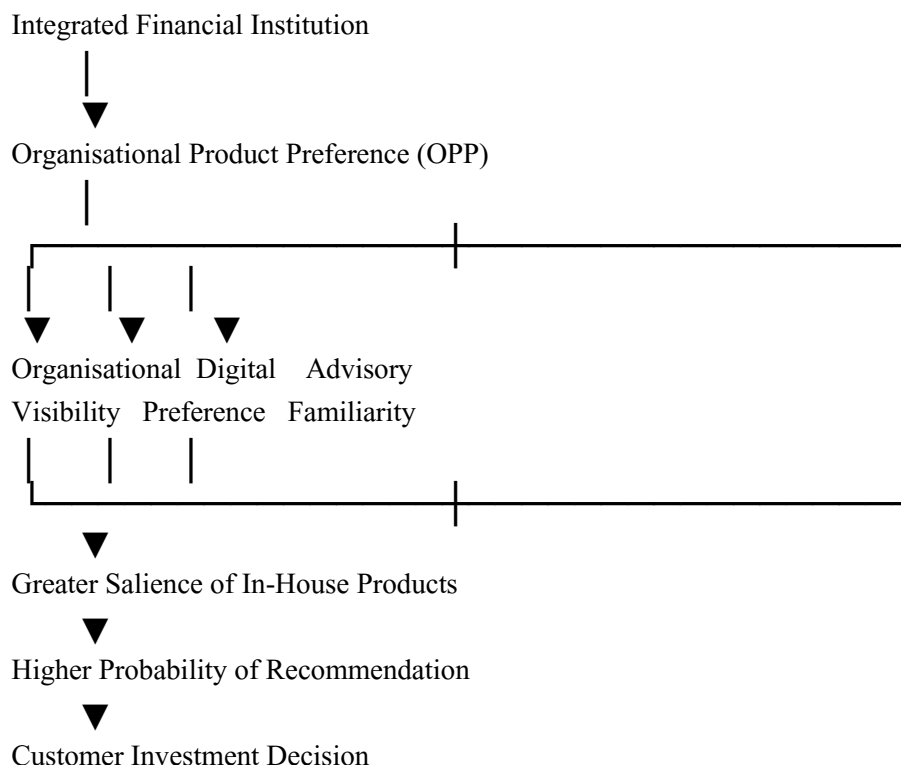
Institutional culture further reinforces organisational preference.

Product training, communication from the management, branch interactions and day-to-day operational practices reinforce familiarity with the institution's own products.

This reinforcement, over time, becomes embedded in routine advisory behaviour.

Suggested conceptual model

The field observations suggest the following conceptual pathway:



Importantly, OPP does not pre-determine customer selection. Instead it creates the environment in which recommendations are made and investment decisions taken.

Organisational Product Preference in the Current Study

Several observable indicators consistent with Organisational Product Preference were identified in the present field study including:

higher exposure of HDFC Mutual Fund products in the organization; greater awareness among employees about in-house schemes; integration of proprietary investment research with digital platforms; promotion of recommended funds in SmartWealth and InvestNow; extensive communication of HDFC Mutual Fund within the organization; continuous exposure of front-line employees to in-house products in day-to-day branch operations.

Third-party AMCs, however, generally relied on continued field presence, relationship building, product demonstrations, training sessions and ongoing interaction with Relationship Managers to maintain visibility within branches.

These observations suggest that the competitive success of third party AMCs is not only determined by product performance but also by their ability to overcome the structural advantages of Organisational Product Preference.

Theoretical Contribution

Organisational Product Preference contributes to the existing literature on cross selling, internal marketing, organisational behaviour and financial distribution by showing how institutional structures shape product visibility before customers make their choices.

Rather than treating product recommendations as outcomes of employee discretion or customer demand, OPP emphasises the role of organisational systems (including digital platforms, internal research, managerial communication, operational routines and institutional culture) in shaping advisory behaviour.

While the concept is based on evidence from HDFC Bank, it may be relevant to other integrated financial institutions that manufacture and distribute financial products at the same time, such as banking groups that offer proprietary insurance, mutual funds, wealth management products or investment services, alongside third party alternatives.

Future research may empirically test Organisational Product Preference across different banking organisations and financial markets to evaluate its influence on recommendation behaviour, product selection and distribution outcomes.

Information Asymmetry, Advisory Capabilities and Strategic Role of Asset Management Firms

Information Asymmetry and Retail Investment Decisions

A recurring theme throughout the field study was the presence of a large information asymmetry in India's retail mutual fund distribution ecosystem. Though there has been fast growth in mutual fund participation in the last decade, a significant number of retail investors still have limited knowledge of investment products and portfolio construction.

Customer interactions suggest that investment decisions are typically prompted by broad financial objectives such as wealth creation, inflation protection, tax efficiency and superior long-term returns rather than a detailed understanding of fund categories, asset allocation, portfolio diversification or risk-adjusted performance.

Thus advisory dependency dominates the mutual fund selection process and investors heavily depend on the recommendations of Relationship Managers, Personal Bankers and financial distributors. For many retail investors trust in the intermediary is more important than an independent evaluation of competing investment products.

Frontline Banking Employee Advisory Capabilities

The effectiveness of this advisory relationship is highly dependent on the investment knowledge of the banking personnel on the frontline.

Relationship Managers and Personal Bankers are expected to multi-task on liabilities mobilisation, lending, insurance distribution, customer acquisition, operational compliance, service delivery and relationship management. And it's a pretty demanding operating environment. So it is a considerable professional challenge to acquire and keep updating specialist knowledge across an increasingly diverse mutual fund landscape.

Field observations showed considerable heterogeneity in investment expertise among frontline employees. Some bankers were good at portfolio construction, asset allocation and mutual fund categorisation, whereas some others depended mainly on organization research, internal product recommendations or guidance given by Asset Management Company (AMC) representatives during customer interactions.

There were variations particularly in understanding concepts such as large-cap, mid-cap and small-cap investing, thematic funds, sectoral funds, hybrid funds, debt funds, arbitrage strategies, risk profiling and portfolio diversification.

The observations are not to be taken as shortcomings in professional competence. Instead, they reflect the realities of universal banking in the real world, where front-line staff are charged with

juggling a number of business priorities and being financial advisers in an increasingly sophisticated investment market.

Asset Management Companies as Knowledge Intermediaries

Field evidence shows that Asset Management Companies are much more than simply supporting product manufacturing and distribution. In the present bank-led distribution model, AMC's are playing an increasing role as knowledge intermediaries, transferring specialised investment know-how to frontline bank staff and, indirectly, to retail investors.

Unlike banks that have core businesses such as lending, deposit mobilisation, payments, insurance and a wide array of financial services, AMC's have specialised knowledge in portfolio management, capital markets, investment research, fund management and investor education. AMC's thus play a significant role in building capacity in the distribution ecosystem.

During the study, AMC representatives engaged in a variety of knowledge-enhancing activities, including:

Deliver product training programs for Relationship Managers and Personal Bankers; explain market developments and macroeconomic trends; interpret fund performance and portfolio positioning; help bankers match investment products with customer objectives and risk profiles; participate in joint customer meetings and investment discussions; organise investor awareness programs and financial literacy sessions; provide ongoing technical support in product recommendation and transaction execution.

These activities point to AMC's having a dual function in the financial system. In addition to the creation of investment products, they also contribute to strengthening the advisory capacity of banking distribution channels thru an ongoing dissemination of knowledge and technical assistance.

AMC – Bank Knowledge Partnership

Therefore, the relationship between banks and AMC's can be viewed as a co-knowledge partnership, rather than a transactional distribution relationship.

Banks have mass customer reach, trusted relationships and a nationwide branch infrastructure. AMC's provide specialised investment knowledge, research capability, market expertise and continuous product education. These complementary capabilities together enable the delivery of investment products to retail investors.

This partnership is particularly crucial in open-architecture distribution systems where Relationship Managers need to recommend products from various fund houses with little scope for deep product specialisation.

The findings show that sustained engagement by AMC's thru training, technical assistance and customer education significantly enhances the advisory confidence of frontline bankers and results in more informed investment discussions.

Implications for Investor Results

In an advisory dependency environment, the quality of investment recommendations depends not only on the awareness of the customer but also on the strength of the knowledge ecosystem supporting frontline advisers.

Sustained collaboration between banks and AMC's is given strategic importance for improving quality of recommendations, building investor confidence and promoting long term investment discipline where investors are heavily dependent on intermediary recommendations.

Therefore, the contribution of AMC's should be seen not just in terms of assets mobilised or products distributed but also in terms of their wider role in developing advisory capability, improving financial literacy and enabling better investment decisions across the retail mutual fund ecosystem.

Proposed Concept: Knowledge Intermediation by Asset Management Companies (KIAMC)

These observations lead this paper to propose the concept of Knowledge Intermediation by Asset Management Companies (KIAMC).

KIAMC can be defined as:

A structured process where Asset Management Companies share investment knowledge, market expertise, research insights and advisory support with banking distribution partners and retail investors to enhance advisory capability and improve the quality of investment decision making within the mutual fund distribution ecosystem.

In this framework, the AMC is not simply a financial product manufacturer. It is a strategic participant in the development of distributor competence, improvement of investor understanding and improvement of the effectiveness of wealth management services managed by banks.

Together with the concept of Organisational Product Preference (OPP) introduced earlier, KIAMC provides a complementary view to understand how product visibility, institutional support and knowledge transfer jointly affect mutual fund distribution within integrated banking ecosystems.

Conclusion and Final Arguments

With the rapid growth of the Indian mutual fund industry, the role of banks as financial distributors has undergone a major change. Although a considerable amount of academic work has concentrated on investor behaviour, financial literacy and mutual fund performance, limited attention has been paid to the organisational mechanisms through which investment products are delivered to retail investors. This study sought to fill this gap through an exploration of the institutional dynamics of bank-led mutual fund distribution, drawing on intensive field engagement with HDFC Bank and its front-line distribution ecosystem.

The findings suggest that mutual fund distribution is driven by much more than product performance or customer demand. Distribution outcomes are, instead, the result of a complex interaction of organisational priorities, performance measurement systems, digital platform design, advisory capability, institutional culture and knowledge transfer between banks and Asset Management Companies.

This study has two complementary conceptual contributions. First, Organisational Product Preference (OPP) describes the ability of integrated financial institutions operating under open-architecture models to deliver greater operational visibility, institutional familiarity and advisory reinforcement to proprietary products, while continuing to distribute competing third-party offerings. Second, Knowledge Intermediation by Asset Management Companies (KIAMC) stresses the role of AMC's as providers of investment knowledge, distributor capability and technical

support. It broadens the role of AMC's from product manufacturing to the development of advisory competence in banking channels.

Another important finding concerns the alignment of organization incentives with long-term investor outcomes. Field observations suggest that performance measurement systems that focus primarily on short term sales activity or transaction counts may inadvertently encourage behaviours that maximise immediate target achievement without necessarily building investor participation for the long term or sustained asset accumulation. This finding does not reveal the systemic frailties of any one institution, but instead raises a more general question about the design of performance indicators in the industry of financial distribution.

The study also finds that advisory capability has developed as an increasingly important determinant of distribution quality. The quality of advice delivered by frontline banking employees is strategically important, as retail investors continue to rely heavily on intermediaries for investment advice. To enhance this capacity, it requires continuous partnership between banks and Asset Management Companies thru well structured training, investment education, research dissemination and client engagement. In this context, the relationship between banks and AMC's should not be considered as a mere commercial distribution arrangement, but as a knowledge partnership in the long term that supports investor confidence and enhances the quality of financial decision-making.

From a policy perspective, the findings indicate that the future development of the mutual fund industry in India should transcend increasing investor participation or assets under management. The institutional quality of distribution should be improved in equal measure thru advisory excellence, performance measurement in terms of long-term investor outcomes, improving financial capability among distributors and ensuring that organisational systems support informed and suitable investment recommendations.

This study therefore indicates that the next phase of growth of the mutual fund industry in India will depend not only on expanding the investor base, but also on the strengthening of the institutions which deliver the investment products to the retail households. The manufacture of superior financial products alone will not achieve sustainable industry development; instead, a distribution ecosystem characterised by informed advice and aligned incentives, organisational transparency and collaborative knowledge creation will. The future of mutual fund distribution is not simply about selling more investment products, but about creating a financial advisory system that consistently places long-term investor welfare, professional competence and sustainable wealth creation at its center.

Traditional View

AMC

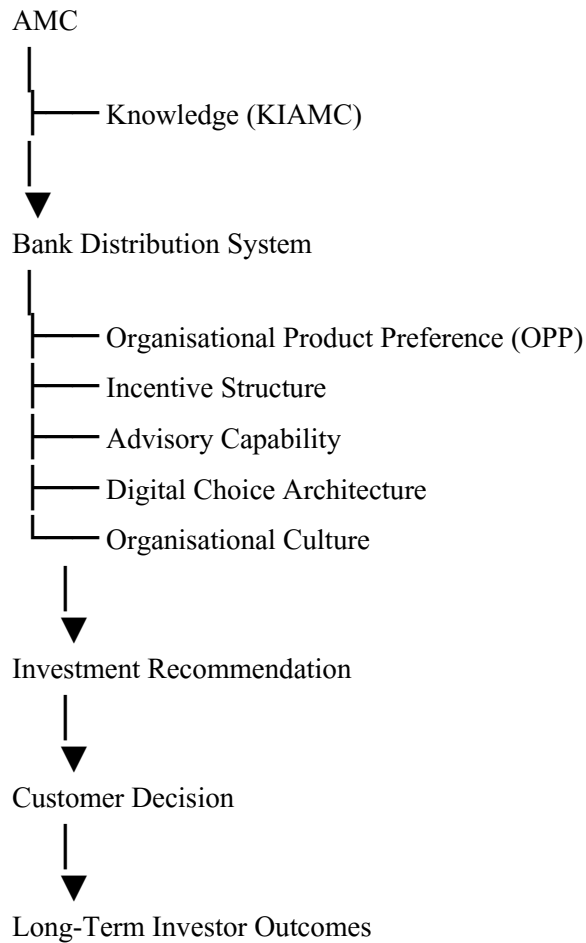


Bank



Customer

This Study



Reference:

HDFC Bank. 2026. Integrated Annual Report 2025–26. Mumbai: HDFC Bank Limited.

Chicago Author–Date References

HDFC Bank. 2025. Integrated Annual Report 2024–25. Mumbai: HDFC Bank Limited.

Reuters. 2025. "India's HDFC Bank Sees Loan-to-Deposit Ratio at 85%–90% by FY27, CFO Says." April 19, 2025.

Chicago Author–Date References

HDFC Bank. 2025. Integrated Annual Report 2024–25. Mumbai: HDFC Bank Limited.

HDFC Bank. 2025. Quarterly and Annual Financial Results. Mumbai: HDFC Bank Limited.

Reuters. 2025. "India's HDFC Bank Sees Loan-to-Deposit Ratio at 85%–90% by FY27, CFO Says."

From Silence to Selfhood: A Critical Study of Female Empowerment in the Selected Novels of Preeti Shenoy

Uday Shankar Raj*

raj.udayshankar@gmail.com

ABSTRACT

Women in many societies have historically experienced emotional suppression, marginalization, and restricted agency due to deeply rooted patriarchal structures. Such conditions often influence their representation in literature, where female characters frequently struggle with societal expectations, identity conflicts, and limited autonomy. Contemporary Indian fiction, however, increasingly highlights the voices and experiences of women, portraying their journey toward independence and self-realization. This study employs feminist literary criticism as a theoretical framework to analyze the representation of female empowerment in the selected novels of Preeti Shenoy. Through qualitative textual analysis, the research examines how Shenoy portrays the psychological, emotional, and social struggles faced by her female protagonists within the context of contemporary Indian society. The analysis reveals that the female characters initially experience silence, emotional suppression, and societal constraints, but gradually develop self-awareness, confidence, and the courage to challenge traditional gender roles. Their journey from marginalization to selfhood reflects a process of personal transformation and empowerment. The study concludes that Preeti Shenoy's narratives significantly contribute to contemporary Indian English fiction by highlighting themes of female resilience, identity formation, and empowerment, thereby encouraging a broader understanding of women's experiences and evolving roles in modern society.

Keywords:

Female Empowerment, Feminist Criticism, Women's Identity, Preeti Shenoy, Contemporary Indian English Fiction, Gender Studies

I. INTRODUCTION

1.1 Background of Women in Literature

The representation of women in literature has evolved significantly across different historical periods. In traditional literary works, women were often portrayed within restrictive roles defined by patriarchal social structures. Female characters were frequently depicted as passive, submissive, and dependent on male authority. Such portrayals reflected the prevailing social and cultural norms in which women were expected to remain silent, obedient, and confined to domestic spaces. Literature thus became a mirror of the gender hierarchy that existed within society.

* Research Scholar, Department of English, Sido Kanhu Murmu University, Dumka

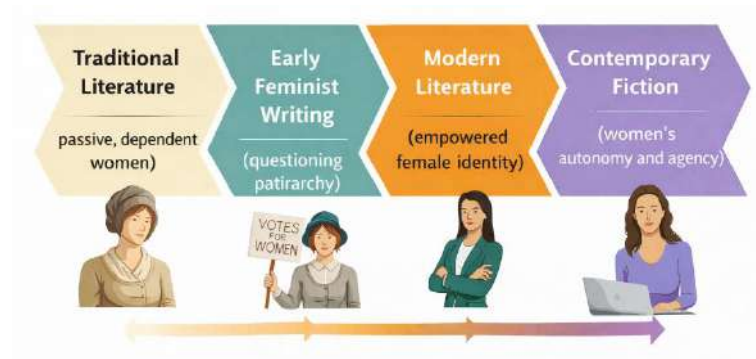


Figure 1: Evolution of the Representation of Women in Literature

For centuries, women's voices and experiences remained marginalized in literary narratives. Female characters were often represented as symbols of virtue, sacrifice, and emotional sensitivity, but their individuality and agency were rarely emphasized. In many classical and early modern texts, women existed primarily in relation to male characters, such as wives, mothers, or daughters, rather than as independent individuals with their own aspirations and identities.

However, the twentieth and twenty-first centuries witnessed a significant shift in the representation of women in literature. With the rise of feminist thought and gender studies, writers began to challenge traditional portrayals and highlight women's struggles for identity, autonomy, and equality. Modern literary works increasingly focus on women's personal experiences, emotional complexities, and the challenges they face within patriarchal societies. Contemporary literature often presents female characters who question social norms, assert their individuality, and strive for empowerment. As a result, literature has become an important medium for exploring themes of gender inequality, female agency, and the transformation of women's identities.

1.2 Contemporary Indian Women Writers

In contemporary Indian English literature, many women writers have contributed significantly to highlighting the realities of women's lives and their struggles for identity and empowerment. These writers address issues such as gender inequality, social expectations, emotional conflicts, and the search for selfhood within a complex cultural framework. Through their narratives, they give voice to the experiences of women who navigate personal, social, and psychological challenges in modern Indian society.

Indian women writers such as Shashi Deshpande, Anita Desai, Arundhati Roy, Jhumpa Lahiri, and Chitra Banerjee Divakaruni have played a crucial role in bringing women's perspectives to the forefront of literary discourse. Their works often explore themes of female identity, personal freedom, and the impact of patriarchal traditions on women's lives. By focusing on the inner lives of female characters, these writers highlight the emotional and psychological struggles that women face while negotiating societal expectations.

Contemporary Indian women's writing has thus become an important platform for examining gender relations and the evolving roles of women in society. These literary works challenge traditional stereotypes and encourage readers to reflect on the complexities of women's experiences.

In this context, the works of modern novelists contribute to the broader discourse on gender equality, empowerment, and the transformation of women's identities.

Author	Major Themes	Contribution
Anita Desai	Psychological struggles	Inner life of women
Shashi Deshpande	Gender inequality	Women's identity in society
Arundhati Roy	Social justice	Feminist political narratives
Jhumpa Lahiri	Identity & diaspora	Cultural and personal identity
Preeti Shenoy	Relationships & empowerment	Emotional journey of modern women

Table 1: Contemporary Indian Women Writers and Their Literary Contributions

1.3 Introduction to Preeti Shenoy

Among contemporary Indian authors, Preeti Shenoy has emerged as a widely recognized and popular novelist known for her engaging narratives and relatable characters. Her works often focus on themes of relationships, emotional growth, personal struggles, and the complexities of modern life. Shenoy's writing style is characterized by simplicity and emotional depth, which allows her to connect with a wide readership.

A significant aspect of Preeti Shenoy's novels is her portrayal of female protagonists who face various emotional and social challenges. Her narratives often explore the inner lives of women as they navigate issues such as family expectations, personal aspirations, love, mental health, and societal pressures. Through these portrayals, Shenoy highlights the struggles and resilience of women in contemporary society.

Many of her novels present female characters who undergo a process of personal transformation. These characters initially experience confusion, emotional conflict, or societal limitations but gradually develop self-awareness and independence. By depicting the journey of women toward self-discovery and empowerment, Shenoy's works contribute to the representation of modern women who seek to assert their identities and make independent choices.

1.4 Concept of Female Empowerment

Female empowerment refers to the process through which women gain greater control over their lives, develop self-confidence, and achieve independence in social, emotional, and economic aspects. It involves enabling women to challenge restrictive social norms, participate in decision-making processes, and pursue their personal aspirations without fear or limitation.

Empowerment is closely connected to the idea of self-realization, where individuals recognize their abilities, values, and potential. For women, empowerment often involves overcoming societal barriers that restrict their opportunities and freedom. Emotional independence, the ability to make decisions, and the confidence to express one's identity are important aspects of this process.

In literary narratives, female empowerment is frequently depicted through the transformation of characters who move from silence and marginalization toward self-awareness and autonomy. Such characters challenge traditional expectations and redefine their roles within society. By highlighting these journeys of transformation, literature plays an important role in encouraging discussions about gender equality and women's rights.

1.5 Research Objectives

The present study aims to examine the representation of female empowerment in the selected novels of Preeti Shenoy. The main objectives of the research are:

- To analyze the representation of female silence and marginalization in the selected novels.
- To examine the journey of women characters from silence to selfhood.
- To explore the themes of identity, independence, and empowerment in the narratives.

Through these objectives, the study seeks to understand how Preeti Shenoy portrays the transformation of female characters and how her narratives contribute to the broader discourse on women's empowerment in contemporary Indian English literature.

II. LITERATURE REVIEW

2.1 Feminist Literary Criticism and Representation of Women

Feminist literary criticism plays a significant role in examining the representation of women in literature. It focuses on how literary texts portray gender roles, power relations, and the social position of women within patriarchal societies. Early feminist scholars argued that literature has historically been dominated by male perspectives, which often resulted in the marginalization or stereotyping of female characters.

One of the most influential contributions to feminist thought is Simone de Beauvoir's concept presented in *The Second Sex*, where she explains that women have historically been constructed as "the Other" in relation to men. According to this perspective, patriarchal societies define women in relation to male identity rather than recognizing them as independent individuals. This concept has become central to feminist literary analysis because it helps scholars understand how female characters are often positioned within narratives.

Similarly, Elaine Showalter emphasized the importance of studying women's writing and female literary traditions. She introduced the concept of *gynocriticism*, which focuses on analyzing literature written by women and understanding how female authors represent women's experiences. Through feminist criticism, scholars have attempted to uncover the hidden voices of women and analyze how literature reflects or challenges patriarchal ideologies.

These theoretical perspectives provide a useful framework for analyzing the representation of women in contemporary fiction. By applying feminist literary criticism, researchers can examine how female characters confront societal expectations and assert their individuality.

2.2 Women's Identity and Agency in Literature

The question of women's identity has been a major theme in literary studies. Many literary scholars have explored how female characters negotiate personal identity within restrictive social structures.

Traditionally, women in literature were portrayed as passive and dependent figures whose identities were defined by their relationships with male characters. However, modern literary works increasingly depict women as individuals who struggle to define their own identities.

Researchers studying gender representation have noted that contemporary narratives often focus on the psychological and emotional development of female characters. These characters frequently experience internal conflicts as they attempt to balance personal aspirations with societal expectations. Through this process, literature portrays the gradual formation of female identity and agency.

Identity formation is closely connected to the concept of agency, which refers to the ability of individuals to make independent decisions and shape their own lives. In many modern literary works, female protagonists challenge traditional gender roles and seek autonomy in their personal and professional lives. These narratives highlight the transformation of women from passive figures to active agents who participate in shaping their own destinies.

Such representations reflect the changing role of women in contemporary society, where issues of independence, self-expression, and equality are increasingly emphasized.

2.3 Female Protagonists in Contemporary Indian English Fiction

Contemporary Indian English fiction has witnessed a significant shift in the portrayal of women. Many modern authors focus on the experiences of female protagonists who confront the challenges of living within a society influenced by both traditional values and modern aspirations.

Indian women writers such as Anita Desai, Shashi Deshpande, Arundhati Roy, and Jhumpa Lahiri have contributed extensively to the exploration of women's lives in literature. Their works often examine themes such as gender discrimination, emotional isolation, family expectations, and the search for identity. Through their narratives, these writers highlight the psychological complexities of female characters and the struggles they face while negotiating societal norms.

Scholars studying contemporary Indian fiction have observed that female protagonists often undergo a process of personal transformation. Initially, these characters may experience feelings of suppression or marginalization within patriarchal structures. However, as the narrative progresses, they begin to question these constraints and seek personal independence. This transformation reflects the broader social changes taking place in modern India, where women are increasingly asserting their rights and identities.

The representation of strong female protagonists in contemporary fiction has therefore become an important area of literary research, particularly within feminist studies.

2.4 Critical Studies on the Novels of Preeti Shenoy

In recent years, the novels of Preeti Shenoy have gained significant popularity among readers and scholars alike. Her works often explore themes related to relationships, emotional struggles, mental health, and personal growth. Shenoy's narratives are known for their relatable characters and realistic depiction of everyday life.

Several studies have examined the thematic aspects of Shenoy's novels. Researchers have observed that her stories frequently focus on female protagonists who experience emotional challenges within

the context of family and social relationships. These characters often struggle with issues such as marital expectations, societal pressure, and personal aspirations.

For example, critical discussions of *Life Is What You Make It* highlight the psychological journey of the protagonist as she confronts emotional difficulties and ultimately discovers her inner strength. Similarly, analyses of *The Secret Wish List* emphasize the protagonist's desire to break free from conventional expectations and pursue personal fulfillment.

Scholars have noted that Shenoy's novels often depict women who gradually develop confidence and independence through their experiences. However, most existing studies primarily focus on themes of romance, emotional conflict, or psychological development. There has been comparatively less emphasis on examining these narratives through a systematic feminist framework that explores the transformation of female identity and empowerment.

2.5 Research Gap

Although numerous studies have explored gender representation and female identity in Indian English literature, limited research has specifically examined the process of female empowerment in the selected novels of Preeti Shenoy from a feminist critical perspective. Existing studies tend to focus on the emotional or relational aspects of her narratives rather than analyzing how female characters transition from silence and marginalization toward selfhood and empowerment.

Therefore, the present study seeks to address this gap by applying feminist literary criticism to analyze the transformation of female protagonists in Preeti Shenoy's novels. By examining the journey of women characters from silence to self-realization, the research aims to contribute to the broader discussion on women's empowerment in contemporary Indian English fiction.

III. THEORETICAL FRAMEWORK AND METHODOLOGY

3.1 Feminist Literary Theory

Feminist literary theory provides an important framework for analyzing the representation of women in literature and examining how gender relations are constructed within literary texts. It seeks to explore how patriarchal structures influence the portrayal of female characters and how literature can challenge or reinforce gender inequality. Feminist criticism focuses on issues such as power dynamics, social expectations, identity formation, and the struggle of women to achieve autonomy and self-expression.

One of the foundational contributions to feminist theory is provided by Simone de Beauvoir, whose work *The Second Sex* examines the historical marginalization of women in society. Beauvoir argues that women have traditionally been defined in relation to men and positioned as "the Other," which limits their ability to establish an independent identity. This concept highlights how patriarchal social structures shape women's roles and restrict their opportunities for self-realization. In literary studies, Beauvoir's ideas help scholars understand how female characters often struggle against societal expectations that confine them to subordinate positions.

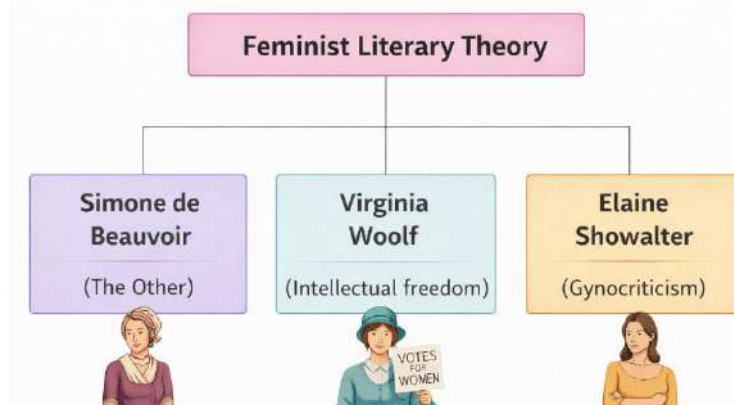


Figure 2: Feminist Theoretical Framework Applied in the Study

Another influential voice in feminist thought is Virginia Woolf, whose work *A Room of One's Own* emphasizes the importance of intellectual freedom and creative independence for women. Woolf argues that women require both economic independence and personal space in order to develop their identities and express their creativity. Her ideas have significantly influenced feminist literary criticism by highlighting the barriers that prevent women from achieving full self-expression within male-dominated societies.

Similarly, Elaine Showalter expanded feminist literary criticism through her concept of *gynocriticism*, which focuses on analyzing literature written by women and understanding how female experiences are represented in literary texts. Showalter emphasizes the need to examine women's writing as a distinct tradition that reflects the social, cultural, and psychological realities of women's lives.

The key concepts emerging from these theoretical perspectives include patriarchy, gender inequality, and the construction of women's identity. Patriarchy refers to a social system in which men hold primary power and authority, often leading to the marginalization of women. Gender inequality arises from these power structures, limiting women's access to opportunities and decision-making roles. Feminist literary criticism therefore seeks to analyze how female characters challenge these limitations and attempt to assert their identities within oppressive social systems.

In the context of contemporary fiction, feminist theory provides a valuable framework for examining how female characters move beyond silence and marginalization toward empowerment and self-realization. This theoretical perspective is particularly relevant when analyzing the works of modern authors who focus on women's experiences and struggles for independence.

3.2 Concept of Silence and Selfhood

The concepts of silence and selfhood are central to understanding the transformation of female characters in literature. Silence often symbolizes the social and emotional suppression experienced by women within patriarchal societies. In many cultural contexts, women are expected to remain silent, obedient, and compliant with social norms that restrict their freedom of expression. This silence reflects not only external social control but also the internalized limitations imposed on women by societal expectations.

In literary narratives, silence can represent the inability of female characters to express their desires, opinions, or aspirations openly. Female protagonists may initially accept the roles assigned to them by society, remaining confined within traditional expectations related to family, marriage, and social behavior. However, this silence often becomes a starting point for transformation as characters gradually begin to question the structures that limit their freedom.

The concept of selfhood, on the other hand, refers to the development of a strong sense of identity and personal agency. Selfhood involves recognizing one's individuality, making independent decisions, and asserting control over one's life. In feminist literary analysis, the journey from silence to selfhood represents a process of empowerment through which female characters gain confidence and autonomy.

This transformation often involves emotional growth, self-awareness, and the courage to challenge restrictive social norms. As female characters develop a clearer understanding of their desires and aspirations, they begin to redefine their roles within society. The movement from silence to selfhood therefore symbolizes the broader struggle of women to achieve independence and equality.

In the novels of Preeti Shenoy, this transition is frequently portrayed through the emotional and psychological journeys of female protagonists who confront societal expectations while seeking personal fulfillment.

3.3 Research Methodology

The present study adopts a qualitative research methodology based on textual analysis to examine the representation of female empowerment in the selected novels of Preeti Shenoy. Qualitative research is particularly suitable for literary studies because it allows researchers to explore themes, character development, and narrative structures in depth.

Textual analysis involves a close examination of literary texts in order to identify recurring themes, patterns, and meanings. In this study, the selected novels are analyzed from a feminist perspective to understand how female characters experience marginalization and how they gradually develop self-awareness and independence. The analysis focuses on the portrayal of female protagonists, their emotional struggles, and the ways in which they challenge social expectations.

The research also involves thematic analysis, which identifies key themes related to gender roles, identity formation, and empowerment. By examining these themes within the narratives, the study aims to understand how the novels depict the transformation of women from silence and dependence toward autonomy and selfhood.

This methodological approach allows for a deeper interpretation of the characters and narratives, enabling the researcher to explore the broader social and cultural implications of female empowerment as portrayed in contemporary Indian fiction.

3.4 Selection of Novels

The present study focuses on three selected novels by Preeti Shenoy:

- *Life Is What You Make It*
- *The Secret Wish List*

• *It Happens for a Reason*

These novels were chosen because they prominently feature female protagonists who experience significant emotional and social challenges. Each of these narratives explores the struggles faced by women in different circumstances and highlights their journey toward personal growth and self-realization.

Novel	Protagonist	Key Theme	Empowerment Aspect
Life Is What You Make It	Ankita	Mental health struggles	Emotional resilience
The Secret Wish List	Diksha	Marital expectations	Self-discovery
It Happens for a Reason	Vipasha	Single motherhood	Independence

Table 2: Selected Novels and Representation of Female Empowerment

Life Is What You Make It portrays the emotional journey of a young woman who confronts mental health challenges while attempting to rebuild her life and identity. The novel emphasizes resilience, self-discovery, and the importance of inner strength in overcoming adversity.

The Secret Wish List focuses on a married woman who feels trapped within the routine of domestic life and seeks to rediscover her individuality and aspirations. Through her journey, the narrative highlights the importance of personal freedom and self-expression.

Similarly, *It Happens for a Reason* presents the story of a woman who navigates the complexities of single motherhood and societal expectations while striving to maintain her independence and dignity.

These novels were selected because they collectively illustrate the transformation of female characters from emotional suppression and social limitations toward empowerment and selfhood. By analyzing these narratives through a feminist framework, the study aims to explore how Preeti Shenoy portrays the evolving identity of women in contemporary Indian society.

IV. TEXTUAL ANALYSIS AND DISCUSSION

4.1 Representation of Female Silence

In many literary narratives, silence functions as a powerful symbol of the social and emotional suppression experienced by women within patriarchal societies. Female silence often reflects the limitations imposed on women by cultural expectations, traditional values, and gender norms. In the selected novels of Preeti Shenoy, female characters initially appear constrained by these societal pressures, which restrict their ability to openly express their desires, opinions, and aspirations.

In *The Secret Wish List*, the protagonist Diksha experiences a sense of emotional confinement within her marriage. Although she fulfills her responsibilities as a wife and daughter-in-law, she gradually begins to realize that her life is shaped by routine and societal expectations rather than her own desires. Her silence represents the internalized acceptance of traditional roles that prioritize family obligations over personal fulfillment. Diksha's inability to openly communicate her dissatisfaction illustrates how women often suppress their feelings in order to maintain social harmony.

Similarly, in *Life Is What You Make It*, the protagonist Ankita initially faces intense emotional and psychological challenges. Societal expectations and personal struggles contribute to a sense of isolation and silence in her life. Her experiences highlight the stigma associated with mental health and the pressure placed on women to maintain emotional stability and social conformity. Ankita's silence reflects both her internal struggles and the lack of understanding from society regarding women's emotional complexities.

In *It Happens for a Reason*, the protagonist Vipasha confronts societal judgments associated with single motherhood. The expectations placed upon women to conform to traditional family structures often lead to criticism and social scrutiny. Vipasha's experiences demonstrate how women who deviate from societal norms may face subtle forms of silence imposed by social disapproval and judgment.

Through these narratives, Preeti Shenoy illustrates how female silence is not merely the absence of voice but a reflection of deeper social structures that restrict women's expression and autonomy.

4.2 Struggle for Identity

While silence characterizes the initial stage of the female characters' experiences, the selected novels also portray a gradual struggle for identity. The protagonists begin to question the roles assigned to them by society and attempt to redefine their sense of self. This struggle often involves emotional conflicts, self-reflection, and the desire to achieve personal independence.

In *The Secret Wish List*, Diksha begins to confront the limitations of her life when she realizes that she has neglected her own dreams and aspirations. Her internal conflict arises from the tension between societal expectations and her personal desire for freedom and self-expression. Through the process of rediscovering her wishes and ambitions, Diksha begins to reclaim her identity beyond the roles of wife and homemaker.

Similarly, Ankita in *Life Is What You Make It* undergoes a profound journey of self-discovery as she confronts her emotional challenges and works toward rebuilding her life. Her experiences highlight the psychological struggle involved in overcoming societal stigma and personal trauma. Ankita's determination to pursue her education and rebuild her confidence reflects her desire to reclaim control over her identity.

In *It Happens for a Reason*, Vipasha's struggle for identity is closely connected to her role as a single mother. Despite societal criticism and personal difficulties, she demonstrates resilience and determination in balancing her responsibilities while maintaining her individuality. Her journey reflects the broader challenges faced by women who attempt to assert their independence within restrictive social environments.

These narratives reveal that the struggle for identity is often a complex and gradual process in which female characters must confront both external societal pressures and internal emotional conflicts.

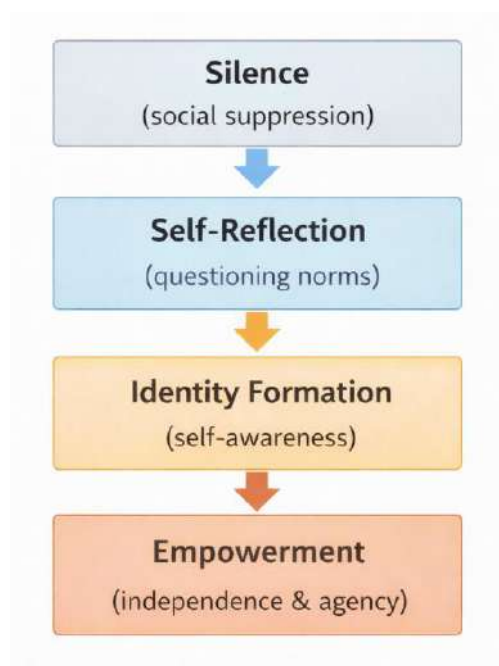
4.3 Journey Towards Empowerment

The transformation from silence to empowerment represents a significant theme in the selected novels of Preeti Shenoy. As the narratives progress, the female protagonists gradually develop self-awareness, emotional strength, and the confidence to make independent decisions. This journey

toward empowerment often emerges through personal growth and the recognition of one's own potential.

In *The Secret Wish List*, Diksha's decision to pursue her personal aspirations symbolizes a shift from passive acceptance to active self-determination. By acknowledging her own desires and taking steps toward fulfilling them, she demonstrates the importance of self-awareness and courage in achieving empowerment.

Ankita's transformation in *Life Is What You Make It* is particularly significant as it highlights the role of resilience and determination in overcoming adversity. Her journey from emotional struggle to personal growth illustrates how empowerment can emerge through self-acceptance and the



willingness to rebuild one's life despite challenges.

Figure 3: Transformation of Female Characters from Silence to Selfhood

Similarly, Vipasha in *It Happens for a Reason* embodies emotional strength and independence as she navigates the complexities of single motherhood and societal expectations. Her ability to maintain her dignity and self-confidence despite external pressures reflects the empowerment of modern women who refuse to be defined solely by societal norms.

Through these narratives, Shenoy portrays empowerment as a gradual and multifaceted process that involves emotional growth, self-reflection, and the courage to challenge traditional expectations.

4.4 Representation of Modern Indian Women

The selected novels also provide a significant portrayal of modern Indian women who navigate the complexities of contemporary society. These characters represent a generation of women who are increasingly aware of their rights, aspirations, and identities. While they continue to face societal expectations and cultural constraints, they also demonstrate resilience and determination in shaping their own lives.

Theme	Example from Novel	Interpretation
Silence	Diksha's marital routine	Emotional suppression
Identity Struggle	Ankita rebuilding life	Search for individuality
Empowerment	Vipasha raising child independently	Assertion of agency
Social Reality	Women balancing tradition & independence	Modern gender roles

Table 3: Thematic Representation of Female Empowerment in the Selected Novels

In Shenoy's narratives, female protagonists are not portrayed as entirely rebellious figures who reject tradition outright. Instead, they attempt to balance personal aspirations with social responsibilities. This nuanced portrayal reflects the realities of modern Indian women who often negotiate between traditional values and modern ideals of independence.

The novels highlight evolving gender roles in which women increasingly participate in education, professional life, and personal decision-making. At the same time, the characters' emotional journeys reveal the persistent challenges that women face in achieving complete autonomy within patriarchal structures.

By presenting relatable and realistic female characters, Preeti Shenoy's novels contribute to the broader discourse on women's empowerment in contemporary Indian literature. The transformation of these characters from silence to selfhood symbolizes the evolving identity of women in modern society and reflects the ongoing struggle for gender equality and personal autonomy.

V. FINDINGS AND DISCUSSION

The analysis of the selected novels of Preeti Shenoy reveals several significant insights regarding the representation of female empowerment and identity formation in contemporary Indian fiction. Through the experiences of female protagonists, the narratives illustrate the complex journey from silence and marginalization toward self-awareness, independence, and personal empowerment.

One of the primary findings of this study is that female characters in the selected novels initially experience various forms of social and emotional marginalization. These characters often find themselves confined within traditional gender roles and societal expectations that limit their personal freedom and decision-making power. Cultural norms related to marriage, family responsibilities, and social behavior frequently shape the lives of these women, leaving little room for personal aspirations or self-expression. As a result, many female characters initially adopt a position of silence and compliance in order to maintain social harmony and fulfill the expectations imposed upon them.

Another important observation is that the female protagonists gradually develop self-awareness and emotional resilience as the narratives progress. The characters begin to reflect on their lives, question the limitations placed upon them, and recognize their own desires and ambitions. This process of self-reflection marks a turning point in their journey toward identity formation. Instead of passively accepting societal expectations, the protagonists start to assert their individuality and explore possibilities beyond the roles traditionally assigned to them.

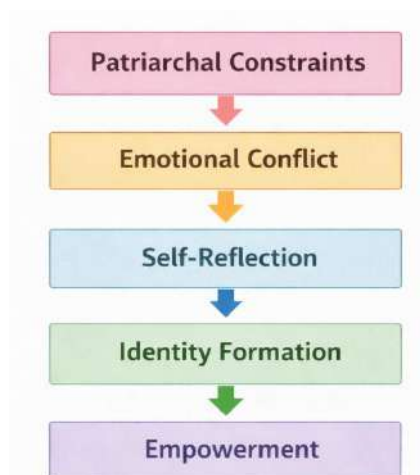


Figure 4: Conceptual Model of Female Empowerment in Preeti Shenoy's Fiction

The study also finds that the transformation of these characters is closely connected to their emotional growth and personal struggles. In many instances, the protagonists encounter significant challenges such as relationship conflicts, societal judgment, or psychological difficulties. However, these challenges often serve as catalysts for personal development. Through their experiences, the characters learn to confront their fears, overcome obstacles, and rebuild their confidence. This gradual transformation highlights the importance of resilience and inner strength in the process of empowerment.

Another key finding is that empowerment in the selected novels is not portrayed as a sudden or dramatic change but rather as a gradual process of personal growth and self-realization. The female characters move through different stages of emotional development, beginning with silence and uncertainty and eventually reaching a stage of independence and self-confidence. This journey reflects the broader experiences of many women who must navigate complex social structures while striving to maintain their individuality.

Furthermore, the analysis demonstrates that empowerment is often achieved through independent decision-making and the assertion of personal identity. As the female protagonists gain confidence, they begin to make choices that reflect their own aspirations rather than merely conforming to societal expectations. These decisions may involve pursuing education, redefining relationships, or prioritizing personal well-being. Such actions symbolize the characters' transition from dependence to autonomy.

The novels also highlight the changing role of women in contemporary Indian society. While traditional cultural expectations continue to influence women's lives, modern women increasingly seek opportunities for self-expression and independence. The female characters portrayed in Shenoy's novels reflect this evolving social reality. They demonstrate that empowerment does not necessarily require the rejection of cultural values but rather involves negotiating these values while asserting one's individuality.

Another important observation is that the narratives emphasize the importance of emotional strength and self-acceptance in achieving empowerment. The protagonists' journeys often involve confronting their own vulnerabilities and learning to accept themselves despite societal criticism or

personal setbacks. This process of self-acceptance allows them to develop a stronger sense of identity and confidence.

Overall, the findings of this study indicate that the selected novels of Preeti Shenoy portray female empowerment as a multifaceted and transformative process. Through the depiction of relatable female characters and realistic life situations, the narratives highlight the challenges women face in patriarchal societies while also celebrating their resilience and determination. The movement from silence to selfhood in these novels symbolizes the broader struggle of women to achieve independence, dignity, and recognition in contemporary society.

VI. CONCLUSION AND FUTURE SCOPE

The present study examined the representation of female empowerment in the selected novels of Preeti Shenoy through a feminist literary perspective. By analyzing the experiences and personal journeys of female protagonists, the research explored how women characters move from silence and marginalization toward selfhood, independence, and empowerment. The study aimed to understand how Shenoy's narratives portray the emotional, psychological, and social struggles faced by women in contemporary Indian society.

The analysis revealed that the female characters in the selected novels initially experience various forms of social and emotional suppression. These women often find themselves confined within traditional gender roles and societal expectations that limit their personal freedom and self-expression. Cultural norms surrounding marriage, family responsibilities, and social behavior frequently shape their identities and restrict their ability to make independent decisions. As a result, many female characters begin their journeys in positions of silence, compliance, and emotional uncertainty.

However, as the narratives develop, the protagonists gradually undergo a process of transformation marked by self-awareness, resilience, and personal growth. Through experiences of emotional struggle, introspection, and confrontation with societal expectations, the female characters begin to question the limitations imposed upon them. This process enables them to recognize their own desires, aspirations, and potential. Their journeys reflect the development of selfhood, where they gradually assert their individuality and regain control over their lives.

The study further demonstrates that empowerment in Shenoy's novels is portrayed as a gradual and deeply personal process rather than a sudden or radical transformation. The female protagonists achieve empowerment through emotional strength, self-reflection, and the courage to challenge restrictive social norms. By making independent choices and prioritizing their own well-being and aspirations, these characters redefine their roles within society and assert their identities beyond traditional expectations.

Another important observation of this study is that Preeti Shenoy's novels reflect the evolving position of women in contemporary Indian society. The characters portrayed in her narratives represent modern women who navigate the complexities of balancing traditional cultural values with personal aspirations for independence and self-realization. Through realistic and relatable storytelling, Shenoy highlights both the challenges and the possibilities that women encounter in their pursuit of empowerment.

Overall, the research concludes that Preeti Shenoy's novels contribute significantly to the discourse on women's identity and empowerment in contemporary Indian English literature. By portraying the transformation of female characters from silence to selfhood, these narratives emphasize the resilience, determination, and emotional strength of women who strive to redefine their identities within a changing social landscape.

Future Scope

The present study focuses on the analysis of selected novels of Preeti Shenoy from a feminist literary perspective. However, there are several opportunities for further research in this area. Future studies may conduct a comparative analysis of Preeti Shenoy's works with those of other contemporary Indian women writers in order to examine broader patterns of female empowerment in Indian English fiction. Researchers may also explore psychological perspectives on female identity and emotional resilience as depicted in modern literary narratives.

Additionally, further research could examine how themes of gender, empowerment, and identity are represented in different genres of contemporary literature, including popular fiction and digital narratives. Such studies would contribute to a deeper understanding of the evolving representation of women in literature and the role of literary narratives in shaping discussions about gender equality and women's empowerment.

REFERENCES

1. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Vintage Books, 2011.
2. Woolf, Virginia. *A Room of One's Own*. Harcourt Brace & Company, 1929.
3. Showalter, Elaine. *A Literature of Their Own: British Women Novelists from Brontë to Lessing*. Princeton University Press, 1999.
4. Butler, Judith. *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge, 1990.
5. Tong, Rosemarie. *Feminist Thought: A More Comprehensive Introduction*. Westview Press, 2009.
6. Tyson, Lois. *Critical Theory Today: A User-Friendly Guide*. Routledge, 2015.
7. Eagleton, Mary. *Feminist Literary Criticism*. Routledge, 2013.
8. Moi, Toril. *Sexual/Textual Politics: Feminist Literary Theory*. Routledge, 2002.
9. Bhasin, Kamla. *What Is Patriarchy?* Kali for Women, 2006.
10. Walby, Sylvia. *Theorizing Patriarchy*. Blackwell Publishers, 1990.
11. Deshpande, Shashi. *Writing from the Margin and Other Essays*. Penguin Books, 2003.
12. Desai, Anita. *Writing in India*. Sahitya Akademi Publications, 1998.
13. Roy, Arundhati. *The God of Small Things*. Penguin Books, 1997.
14. Lahiri, Jhumpa. *Interpreter of Maladies*. Houghton Mifflin, 1999.
15. Divakaruni, Chitra Banerjee. *Arranged Marriage*. Anchor Books, 1996.
16. Shenoy, Preeti. *Life Is What You Make It*. Srishti Publishers, 2011.
17. Shenoy, Preeti. *The Secret Wish List*. Westland Publications, 2012.
18. Shenoy, Preeti. *It Happens for a Reason*. Westland Publications, 2017.
19. Nayar, Pramod K. *Contemporary Literary and Cultural Theory: From Structuralism to Ecocriticism*. Pearson, 2010.
20. Barry, Peter. *Beginning Theory: An Introduction to Literary and Cultural Theory*. Manchester University Press, 2017.

आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय चेतना का विकास : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22029293>

कुणाल कुमार सिंह*
kumarkunalsingh2@gmail.com

प्रो. (डॉ.) सैय्यद रजा†
drrazajpu@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र “आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय चेतना का विकास: एक ऐतिहासिक विश्लेषण” में राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति विकसित होती चेतना का अध्ययन किया गया है। औपनिवेशिक शासन में अंग्रेजों ने जंगल, जमीन और जल संसाधनों का अपने आर्थिक हितों के लिए बड़े पैमाने पर उपयोग किया। इसका सीधा प्रभाव किसानों, आदिवासियों और ग्रामीण समुदायों के जीवन पर पड़ा। परिणामस्वरूप अनेक स्थानीय संघर्ष और आंदोलन सामने आए। राष्ट्रीय आंदोलन के विस्तार के साथ ये संघर्ष भी व्यापक राजनीतिक चेतना से जुड़ते गए। महात्मा गांधी ने स्वदेशी, ग्राम स्वराज, सादगी, आत्मनिर्भरता और प्रकृति के साथ संतुलित जीवन पर विशेष जोर दिया। उनके विचारों ने यह समझ विकसित करने में मदद की कि जंगल, जमीन और जल केवल आर्थिक संसाधन नहीं हैं, बल्कि ग्रामीण और आदिवासी समाज के जीवन तथा आजीविका का महत्वपूर्ण आधार हैं। इस अध्ययन में चंपारण जैसे किसान आंदोलनों तथा विभिन्न आदिवासी और स्थानीय प्रतिरोधों को पर्यावरणीय दृष्टि से समझने का प्रयास किया गया है। यद्यपि उस समय पर्यावरण संरक्षण आज की तरह एक स्वतंत्र मुद्दा नहीं था, फिर भी प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय समुदायों के अधिकार और उनके संरक्षण की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े प्रश्नों को भी सामने लाया। गांधीवादी विचारों तथा किसानों और आदिवासियों के संघर्षों ने भारत में पर्यावरणीय चेतना की प्रारंभिक पृष्ठभूमि तैयार की। आगे चलकर यही चेतना स्वतंत्र भारत में पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और सतत विकास की सोच के लिए महत्वपूर्ण आधार बनी।

कुटुम्बशब्द: आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, पर्यावरणीय चेतना, औपनिवेशिक शासन, प्राकृतिक संसाधन, वन, भूमि, जल, किसान आंदोलन, आदिवासी आंदोलन, महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज, स्वदेशी, पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास, राष्ट्रीय आंदोलन।

प्रस्तावना

भारत का राष्ट्रीय आंदोलन केवल अंग्रेजों से आजादी पाने की लड़ाई नहीं था। इसके साथ समाज, अर्थव्यवस्था, गांवों और लोगों के जीवन से जुड़े कई दूसरे सवाल भी सामने आए। इनमें जमीन, जंगल, पानी और प्राकृतिक संसाधनों का सवाल भी महत्वपूर्ण था। अंग्रेजी शासन के दौरान इन संसाधनों का इस्तेमाल मुख्य रूप से अपने आर्थिक लाभ के लिए किया गया। इसका सीधा असर किसानों, आदिवासियों और ग्रामीण लोगों पर पड़ा, क्योंकि उनकी रोजी-रोटी काफी हद तक जमीन, जंगल और पानी पर निर्भर थी। अंग्रेजी सरकार ने जंगलों पर अपने अधिकार को मजबूत करने के लिए कई वन कानून बनाए। जंगलों में रहने वाले लोगों के पारंपरिक अधिकार सीमित कर दिए गए और किसानों पर भी लगान तथा कृषि संबंधी कई तरह के

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

† शोध निर्देशक, इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

दबाव बढ़ाए गए। इससे ग्रामीण और आदिवासी समाज में असंतोष बढ़ा। कई जगह लोगों ने अपनी जमीन, जंगल और आजीविका को बचाने के लिए अंग्रेजी शासन का विरोध किया। इन संघर्षों को केवल राजनीतिक विरोध के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इनके पीछे प्राकृतिक संसाधनों और जीवन के अधिकार की चिंता भी थी। इस दौर में महात्मा गांधी के विचारों ने लोगों को एक अलग दिशा दी। गांधी सादा जीवन, स्वदेशी, ग्राम स्वराज और आत्मनिर्भर गांवों की बात करते थे। उनका मानना था कि मनुष्य को प्रकृति का जरूरत से ज्यादा शोषण नहीं करना चाहिए। उनके विचारों में गांव, स्थानीय संसाधन और प्रकृति के बीच संतुलन को विशेष महत्व दिया गया। इससे राष्ट्रीय आंदोलन में ऐसी सोच को बल मिला जिसमें विकास के साथ प्रकृति और सामान्य लोगों के हितों को भी महत्व दिया गया। चंपारण सत्याग्रह और विभिन्न किसान तथा आदिवासी आंदोलनों में भी जमीन, खेती, जंगल और आजीविका से जुड़े सवाल दिखाई देते हैं। हालांकि उस समय इन आंदोलनों को आज के अर्थ में पर्यावरण आंदोलन नहीं कहा जाता था, फिर भी इनमें प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति लोगों के जुड़ाव को साफ तौर पर देखा जा सकता है। इस शोध में इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान पर्यावरण के प्रति चेतना कैसे विकसित हुई और किसानों, आदिवासियों तथा गांधीवादी विचारों ने इसमें क्या भूमिका निभाई। साथ ही, यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान पैदा हुई यह सोच आगे चलकर स्वतंत्र भारत में पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की समझ के लिए किस तरह उपयोगी बनी।

अध्ययन के उद्देश्य

1. आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में पर्यावरणीय चेतना के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उसके वैचारिक आधार का अध्ययन करना।
2. औपनिवेशिक शासन की वन, भूमि, जल एवं प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित नीतियों तथा उनके पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. किसान एवं आदिवासी आंदोलनों में प्राकृतिक संसाधनों, जंगल, भूमि और जल के संरक्षण तथा पारंपरिक अधिकारों की रक्षा से जुड़ी चेतना का अध्ययन करना।
4. महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज, स्वदेशी, सर्वोदय, सादगी एवं सीमित उपभोग संबंधी विचारों का पर्यावरणीय दृष्टिकोण से ऐतिहासिक विश्लेषण करना।
5. राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विकसित पर्यावरणीय चेतना के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभावों तथा उसके भारतीय समाज पर पड़े प्रभाव का मूल्यांकन करना।
6. आधुनिक भारत में पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के संदर्भ में राष्ट्रीय आंदोलन से विकसित पर्यावरणीय चेतना की ऐतिहासिक प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

अध्ययन का महत्व

प्रस्तुत अध्ययन आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में पर्यावरणीय चेतना के विकास की ऐतिहासिक और सामाजिक महत्ता को समझने में उपयोगी है। यह औपनिवेशिक शासन की वन, भूमि और जल संबंधी नीतियों तथा उनके विरुद्ध हुए किसान और आदिवासी आंदोलनों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों के प्रति विकसित चेतना को स्पष्ट करता है। साथ ही, महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज, स्वदेशी, सर्वोदय, सादगी और सीमित उपभोग जैसे विचारों के पर्यावरणीय पक्ष को समझने का अवसर प्रदान करता है। वर्तमान समय में बढ़ते प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन और जलवायु परिवर्तन की समस्याओं के संदर्भ में यह अध्ययन पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के लिए राष्ट्रीय आंदोलन की वैचारिक विरासत को समझने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

साहित्य समीक्षा

रामचंद्र गुहा (2007) ने *गांधी बिफोर इंडिया* में गांधी के दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने और भारतीय सार्वजनिक जीवन में उनके प्रवेश की पृष्ठभूमि का अध्ययन किया है। इस कृति से गांधी के सामाजिक विचारों, ग्रामीण भारत के साथ उनके संबंध तथा भारतीय समाज की वास्तविक समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है। पर्यावरणीय दृष्टि से यह अध्ययन गांधी के विचारों के निर्माण और उनके बाद के ग्रामीण एवं स्वदेशी कार्यक्रमों की पृष्ठभूमि समझने में उपयोगी है।

मोहनदास करमचंद गांधी (1909) ने *हिन्द स्वराज* में आधुनिक सभ्यता, औद्योगीकरण, भौतिकवाद, मशीन और अनियंत्रित उपभोग की आलोचना की है। गांधी ने विकास को केवल भौतिक सुविधाओं की वृद्धि न मानकर नैतिक और मानवीय जीवन से जोड़ा। पर्यावरणीय चेतना के संदर्भ में यह कृति मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन, सीमित आवश्यकताओं तथा सादगी की गांधीवादी सोच को समझने का महत्वपूर्ण प्राथमिक स्रोत है।

मोहनदास करमचंद गांधी ने *ग्राम स्वराज* में आत्मनिर्भर गांव, स्थानीय उत्पादन, विकेंद्रीकरण, श्रम की प्रतिष्ठा और स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। गांधी का ग्राम स्वराज ऐसी ग्रामीण व्यवस्था की कल्पना करता है जिसमें गांव अपनी आवश्यकताओं को स्थानीय स्तर पर पूरा कर सके। यह विचार प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और सतत विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

मोहनदास करमचंद गांधी (1920–1947) ने *यंग इंडिया* के विभिन्न लेखों में स्वदेशी, ग्रामोद्योग, सादगी, आर्थिक आत्मनिर्भरता और आधुनिक औद्योगीकरण के प्रभावों पर अपने विचार व्यक्त किए। इन लेखों से स्पष्ट होता है कि गांधी स्थानीय उत्पादन और सीमित उपभोग को ऐसी आर्थिक व्यवस्था का आधार मानते थे, जिसमें मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन बना रहे।

मोहनदास करमचंद गांधी (1933–1948) ने *हरिजन* के विभिन्न अंकों में ग्रामीण जीवन, स्वच्छता, जल, ग्रामोद्योग, प्रकृति और सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़े विषयों पर विचार व्यक्त किए। इन लेखों से गांधी के पर्यावरणीय चिंतन के व्यावहारिक पक्ष को समझने में सहायता मिलती है। उनके विचारों में स्वच्छता, जल संरक्षण और जिम्मेदार जीवन-पद्धति को सामाजिक सुधार से जोड़कर देखा गया है।

रामचंद्र गुहा (1989) ने *द अनक्वाइट वुड्स: हिमालय में पारिस्थितिक परिवर्तन और किसान प्रतिरोध* में हिमालयी क्षेत्रों में औपनिवेशिक वन नीतियों, वनों के व्यावसायीकरण और उनके विरुद्ध किसानों के प्रतिरोध का अध्ययन किया है। यह कृति स्पष्ट करती है कि वन केवल सरकारी राजस्व का स्रोत नहीं थे, बल्कि स्थानीय समुदायों की आजीविका का आधार भी थे। इसलिए यह पुस्तक औपनिवेशिक शासन और पर्यावरणीय चेतना के संबंध को समझने में अत्यंत उपयोगी है।

माधव गाडगिल और रामचंद्र गुहा (1992) ने *दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया* में भारत के पर्यावरणीय इतिहास का व्यापक अध्ययन किया है। उन्होंने जंगल, कृषि, जल, वन्यजीव और प्राकृतिक संसाधनों पर औपनिवेशिक तथा आधुनिक हस्तक्षेपों के प्रभावों को स्पष्ट किया है। यह कृति बताती है कि भारत में पर्यावरणीय समस्याओं की जड़ें केवल आधुनिक औद्योगीकरण में नहीं, बल्कि औपनिवेशिक संसाधन-नीतियों में भी दिखाई देती हैं।

महेश रंगराजन (1996) ने *फेंसिंग द फॉरेस्ट: कंजर्वेशन एंड इकोलॉजिकल चेंज इन इंडियाज सेंट्रल प्रोविंसेज, 1860–1914* में मध्य भारत में औपनिवेशिक वन प्रशासन और प्राकृतिक संसाधनों पर सरकारी नियंत्रण का अध्ययन किया है। उन्होंने बताया कि वन संरक्षण के नाम पर बनाई गई औपनिवेशिक नीतियों ने कई बार स्थानीय समुदायों के पारंपरिक अधिकारों को सीमित किया। यह अध्ययन औपनिवेशिक वन नीति और आदिवासी-ग्रामीण प्रतिरोध को समझने में महत्वपूर्ण है।

डेविड अर्नोल्ड और रामचंद्र गुहा (1995) द्वारा संपादित *नेचर, कल्चर एंड इम्पीरियलिज्म: साउथ एशियन एनवायरनमेंटल हिस्ट्री* में दक्षिण एशिया के पर्यावरणीय इतिहास का अध्ययन किया गया है। इसमें औपनिवेशिक शासन, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन, वन नीति तथा स्थानीय समुदायों के संबंधों पर विभिन्न विद्वानों के अध्ययन शामिल हैं। यह पुस्तक पर्यावरण और औपनिवेशिक सत्ता के पारस्परिक संबंध को समझने के लिए उपयोगी है।

रामचंद्र गुहा (2000) ने *एनवायरनमेंटलिज्म: ए ग्लोबल हिस्ट्री* में पर्यावरणीय आंदोलनों और पर्यावरणवाद के विकास का व्यापक अध्ययन किया है। भारतीय संदर्भ में उन्होंने गांधीवादी विचार, ग्रामीण समाज और स्थानीय संसाधनों के महत्व को पर्यावरणीय चिंतन की पृष्ठभूमि से जोड़ा है। यह कृति भारतीय पर्यावरणीय चेतना को व्यापक वैश्विक संदर्भ में समझने में सहायक है।

अनुसंधान अंतराल

आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों, किसान एवं आदिवासी आंदोलनों तथा महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज, स्वदेशी और सर्वोदय संबंधी विचारों पर व्यापक शोध उपलब्ध है। इसी प्रकार भारत के

पर्यावरणीय इतिहास, वन नीति और प्राकृतिक संसाधनों के औपनिवेशिक दोहन पर भी अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किए गए हैं। किंतु आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में पर्यावरणीय चेतना के विकास का समग्र, ऐतिहासिक और आलोचनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। अधिकांश अध्ययनों में पर्यावरणीय प्रश्नों को वन नीति, किसान आंदोलनों, आदिवासी प्रतिरोध अथवा गांधी के विचारों के संदर्भ में अलग-अलग देखा गया है। विशेष रूप से यह प्रश्न कि औपनिवेशिक शासन की प्राकृतिक संसाधन संबंधी नीतियों ने भारतीय समाज में पर्यावरणीय चेतना को किस प्रकार प्रभावित किया, किसान और आदिवासी आंदोलनों ने जंगल, भूमि और जल के संरक्षण की भावना को किस रूप में व्यक्त किया तथा गांधी के ग्राम स्वराज, स्वदेशी, सर्वोदय और सीमित उपभोग के विचारों ने इस चेतना को किस प्रकार वैचारिक आधार प्रदान किया—इन सभी पक्षों को एक साथ जोड़कर देखने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत कम हैं। साथ ही, राष्ट्रीय आंदोलन की राजनीतिक चेतना और पर्यावरणीय चेतना के बीच संबंध तथा इन विचारों की स्वतंत्र भारत में सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा पर पड़े प्रभाव का भी पर्याप्त समेकित अध्ययन नहीं मिलता। इसी शोध-अंतराल को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन “आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय चेतना का विकास: एक ऐतिहासिक विश्लेषण” के माध्यम से औपनिवेशिक प्राकृतिक संसाधन नीतियों, किसान एवं आदिवासी आंदोलनों, गांधीवादी विचारधारा तथा राष्ट्रीय आंदोलन में विकसित प्रकृति और संसाधन संबंधी चेतना का समग्र एवं आलोचनात्मक ऐतिहासिक विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक (Historical and Analytical) शोध पद्धति पर आधारित है। इस शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत महात्मा गांधी के लेख, भाषण, *हिन्द स्वराज*, *ग्राम स्वराज*, *हरिजन*, *यंग इंडिया*, गांधी की संकलित रचनाएँ, राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित समकालीन दस्तावेज, सरकारी रिपोर्ट, समाचार-पत्र तथा किसान एवं आदिवासी आंदोलनों से संबंधित अभिलेखों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, गांधीवादी विचारधारा, औपनिवेशिक वन एवं भूमि नीतियों, किसान-आदिवासी आंदोलनों तथा पर्यावरणीय इतिहास से संबंधित पुस्तकों, शोध-पत्रों, शोध-प्रबंधों और विद्वानों के अध्ययनों का सहारा लिया गया है। अध्ययन में उपलब्ध स्रोतों का गुणात्मक (Qualitative), व्याख्यात्मक (Interpretative) एवं तुलनात्मक (Comparative) पद्धति से विश्लेषण किया गया है, जिससे आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान पर्यावरणीय चेतना के विकास, उसके सामाजिक एवं आर्थिक आधार, गांधीवादी विचारों की भूमिका तथा पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के संदर्भ में उसकी ऐतिहासिक प्रासंगिकता का वस्तुनिष्ठ एवं समग्र मूल्यांकन किया जा सके।

अध्ययन की सीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित ऐतिहासिक दस्तावेजों, महात्मा गांधी के लेखन, समकालीन पत्र-पत्रिकाओं, सरकारी अभिलेखों तथा उपलब्ध प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसलिए इसकी निष्पत्तियाँ उपलब्ध स्रोतों की प्रामाणिकता, विश्वसनीयता और उपलब्धता तक सीमित हैं। पर्यावरणीय चेतना की अवधारणा आधुनिक समय में विकसित हुई, इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान पर्यावरण से संबंधित विचारों और आंदोलनों को वर्तमान पर्यावरणीय दृष्टिकोण से समझने में कुछ वैचारिक सीमाएँ स्वाभाविक हैं। यह अध्ययन मुख्यतः औपनिवेशिक प्राकृतिक संसाधन नीतियों, वन, भूमि एवं जल से जुड़े प्रश्नों, किसान एवं आदिवासी आंदोलनों तथा महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज, स्वदेशी और सर्वोदय संबंधी विचारों के विश्लेषण तक सीमित है। भारत के सभी क्षेत्रों में हुए पर्यावरणीय संघर्षों और स्थानीय आंदोलनों का विस्तृत अध्ययन इसमें संभव नहीं हो पाया है। साथ ही, समय एवं स्रोतों की सीमाओं के कारण सभी अप्रकाशित अभिलेखों, स्थानीय दस्तावेजों और मौखिक परंपराओं को शामिल करना संभव नहीं है। फिर भी, उपलब्ध प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में पर्यावरणीय चेतना के विकास तथा उसके ऐतिहासिक महत्त्व का वस्तुनिष्ठ एवं समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और पर्यावरणीय चेतना

आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। इसके साथ किसानों, आदिवासियों और ग्रामीण समाज के जीवन से जुड़े भूमि, जंगल और जल के प्रश्न भी जुड़े हुए थे। औपनिवेशिक शासन ने प्राकृतिक संसाधनों को अपने आर्थिक हितों के अनुसार नियंत्रित किया। विशेष रूप से वन क्षेत्रों में सरकारी नियंत्रण बढ़ने से स्थानीय समुदायों के पारंपरिक अधिकार प्रभावित हुए।¹ भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े स्थानीय संघर्ष धीरे-धीरे व्यापक राजनीतिक चेतना का हिस्सा बनने लगे। चंपारण सत्याग्रह इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। नील की खेती के लिए किसानों पर बनाए गए दबाव ने उनकी कृषि, भूमि और आजीविका को प्रभावित किया। गांधी ने चंपारण में किसानों की समस्याओं को समझते हुए उनके आर्थिक और सामाजिक जीवन से जुड़े प्रश्नों को आंदोलन का आधार बनाया।² इस प्रकार किसान प्रश्न और औपनिवेशिक आर्थिक शोषण के बीच संबंध स्पष्ट हुआ। इसी तरह वन क्षेत्रों में आदिवासी समुदायों के संघर्ष भी प्राकृतिक संसाधनों पर उनके अधिकार से जुड़े थे। औपनिवेशिक वन नीतियों ने जंगलों के पारंपरिक उपयोग पर कई प्रकार की पाबंदियाँ लगाईं। इससे वन-आश्रित समुदायों की आजीविका प्रभावित हुई और विभिन्न क्षेत्रों में विरोध की भावना विकसित हुई। इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने भारतीय पर्यावरणीय इतिहास के संदर्भ में इन संघर्षों को आधुनिक पर्यावरणीय चेतना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से जोड़कर देखा है।³ महात्मा गांधी के विचारों ने पर्यावरणीय चेतना को एक वैचारिक आधार प्रदान किया। गांधी सादगी, सीमित आवश्यकताओं, स्वदेशी, ग्राम स्वराज और स्थानीय आत्मनिर्भरता पर जोर देते थे। *हिंद स्वराज* में उन्होंने आधुनिक औद्योगिक सभ्यता और असीमित भौतिक उपभोग की आलोचना की।⁴ गांधी की यह सोच बाद के भारतीय पर्यावरणीय चिंतन के लिए महत्वपूर्ण आधार बनी। माधव गाडगिल और रामचंद्र गुहा ने भी भारतीय पर्यावरणीय इतिहास के अध्ययन में गांधीवादी दृष्टिकोण को विशेष महत्व दिया है।⁵ राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विकसित यह पर्यावरणीय चेतना आज के संगठित पर्यावरण आंदोलनों जैसी नहीं थी। उस समय लोगों का मुख्य उद्देश्य अपने जीवन, जमीन, जंगल और आजीविका की रक्षा करना था। फिर भी इन संघर्षों में प्रकृति और मानव जीवन के बीच गहरे संबंध की समझ दिखाई देती है। किसानों और आदिवासियों के संघर्षों ने यह स्पष्ट किया कि प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण का प्रश्न सामाजिक न्याय और आर्थिक अधिकारों से भी जुड़ा हुआ है।⁶ इस प्रकार आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण आंदोलन को जन्म नहीं दिया, लेकिन उसने ऐसी सामाजिक और वैचारिक परिस्थितियाँ जरूर तैयार कीं, जिनसे आगे चलकर भारत में पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के अधिकार की चेतना मजबूत हुई। गांधीवादी विचार, किसान संघर्ष और आदिवासी प्रतिरोध इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के महत्वपूर्ण आधार रहे।

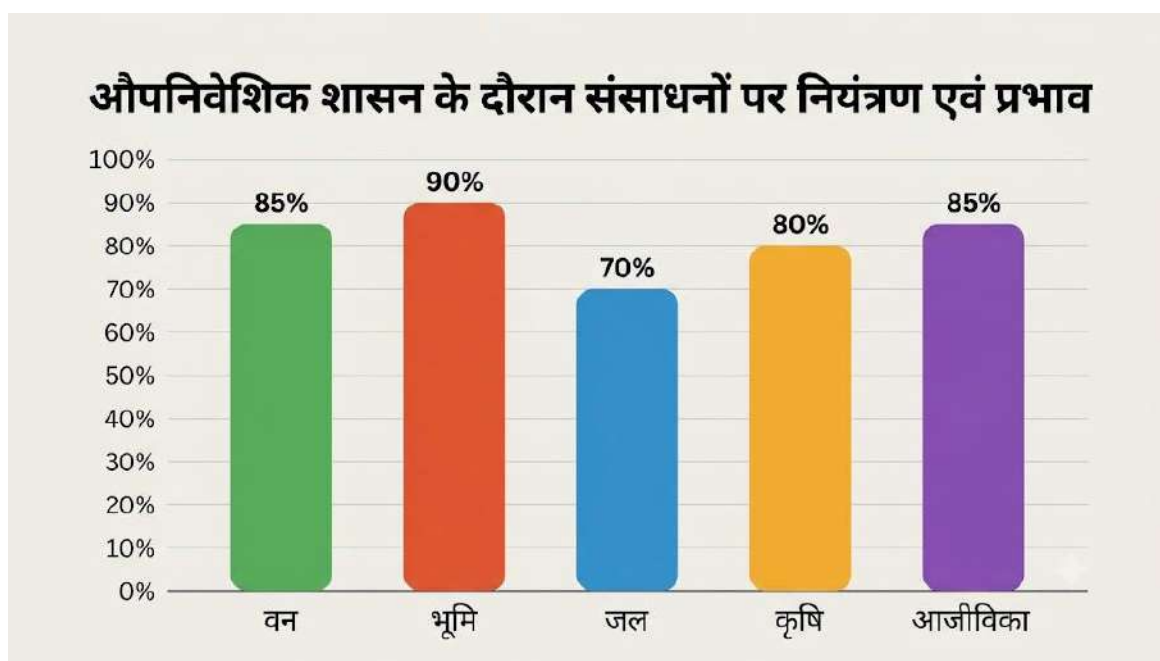
औपनिवेशिक शासन और प्राकृतिक संसाधन

औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत के प्राकृतिक संसाधनों पर अंग्रेजी सरकार का नियंत्रण लगातार बढ़ता गया। जंगल, जमीन और जल जैसे संसाधनों का उपयोग स्थानीय लोगों की जरूरतों से अधिक औपनिवेशिक आर्थिक हितों के लिए किया जाने लगा। विशेष रूप से जंगलों को राजस्व और व्यापार का महत्वपूर्ण साधन माना गया।⁷ 1850 के बाद रेलवे के विस्तार, जहाज निर्माण और औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए लकड़ी की मांग तेजी से बढ़ी। इसके कारण सरकार ने जंगलों को अपने नियंत्रण में लेने के लिए वन विभाग की स्थापना की और वन क्षेत्रों के उपयोग को कानूनों के माध्यम से नियंत्रित करना शुरू किया। इससे उन समुदायों के जीवन पर सीधा असर पड़ा, जो लंबे समय से जंगलों से लकड़ी, चारा, फल, शहद और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करते थे।⁸ 1865 और 1878 के वन कानूनों ने सरकारी नियंत्रण को और मजबूत किया। 1878 के भारतीय वन अधिनियम के तहत वनों को आरक्षित, संरक्षित और ग्राम्य वनों में बाँटा गया। आरक्षित वनों में स्थानीय लोगों के पारंपरिक अधिकारों पर अनेक प्रतिबंध लगाए गए। इससे आदिवासी और वन-आश्रित समुदायों में असंतोष बढ़ा और विभिन्न क्षेत्रों में औपनिवेशिक वन नीतियों के विरुद्ध विरोध सामने आया।⁹ औपनिवेशिक नीतियों का प्रभाव केवल जंगलों तक सीमित नहीं था। कृषि भूमि और राजस्व व्यवस्था में भी ऐसे परिवर्तन किए गए, जिनसे किसानों पर आर्थिक दबाव बढ़ा। नकदी फसलों की खेती को बढ़ावा देने और अधिक राजस्व प्राप्त करने की नीति ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। चंपारण में नील की खेती के लिए किसानों पर बनाया गया दबाव इसका महत्वपूर्ण उदाहरण था।¹⁰ प्राकृतिक संसाधनों पर औपनिवेशिक नियंत्रण ने किसानों और आदिवासियों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा की। जंगल और जमीन

उनके लिए केवल आर्थिक साधन नहीं थे, बल्कि उनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का आधार भी थे। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार का संघर्ष धीरे-धीरे औपनिवेशिक शासन के विरोध और राष्ट्रीय चेतना से जुड़ने लगा।¹¹ इस प्रकार औपनिवेशिक काल में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और उन पर सरकारी नियंत्रण ने अनेक सामाजिक संघर्षों को जन्म दिया। इन्हीं संघर्षों ने आगे चलकर भारत में प्राकृतिक संसाधनों, स्थानीय अधिकारों और पर्यावरण संरक्षण से जुड़ी चेतना के विकास की पृष्ठभूमि तैयार की।¹²

वन, भूमि, जल, किसान आंदोलन

औपनिवेशिक शासन में वन, भूमि और जल पर सरकारी नियंत्रण बढ़ने का सीधा प्रभाव किसानों और ग्रामीण समाज पर पड़ा। अंग्रेजी सरकार प्राकृतिक संसाधनों को राजस्व और व्यापार का साधन मानती थी, जबकि किसानों के लिए यही संसाधन उनकी आजीविका का आधार थे। वन क्षेत्रों में नए कानूनों के कारण ग्रामीणों के पारंपरिक अधिकार सीमित हुए



और खेती तथा पशुपालन से जुड़ी उनकी आवश्यकताएँ प्रभावित हुई।¹³ भूमि और लगान की औपनिवेशिक व्यवस्था ने किसानों की आर्थिक स्थिति को भी कमजोर किया। अधिक लगान, बेदखली और नकदी फसलों की खेती के दबाव के कारण किसान लगातार आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने लगे। चंपारण में नील की खेती के विरुद्ध किसानों का संघर्ष इसका प्रमुख उदाहरण था।¹⁴ इसी प्रकार खेड़ा और बारडोली जैसे किसान आंदोलनों में भी भूमि, लगान और किसानों के आर्थिक अधिकार महत्वपूर्ण मुद्दे रहे।¹⁵ जल संसाधनों पर औपनिवेशिक नियंत्रण ने भी ग्रामीण जीवन को प्रभावित किया। सिंचाई व्यवस्था और जल के उपयोग को राजस्व तथा कृषि उत्पादन से जोड़कर देखा गया। नहरों और सिंचाई परियोजनाओं का विकास मुख्यतः कृषि उत्पादन और सरकारी आय बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया, जिससे कई क्षेत्रों में किसानों के हित और सरकारी नीतियों के बीच टकराव पैदा हुआ।¹⁶ इन परिस्थितियों में किसान आंदोलनों ने केवल लगान या खेती से जुड़े प्रश्नों को ही नहीं उठाया, बल्कि भूमि, जल, जंगल और आजीविका के अधिकारों को भी सामने लाया। किसानों के लिए प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा उनके जीवन और भविष्य की रक्षा से जुड़ी हुई थी। इस कारण किसान आंदोलनों ने धीरे-धीरे औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के विरोध के साथ-साथ स्थानीय संसाधनों पर अधिकार की चेतना को भी मजबूत किया।¹⁷ महात्मा गांधी के नेतृत्व में हुए आंदोलनों ने इस चेतना को व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने का काम किया। गांधी किसानों की समस्याओं को केवल आर्थिक प्रश्न नहीं मानते थे, बल्कि उन्हें ग्रामीण जीवन, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय से जोड़कर देखते थे।¹⁸ इस प्रकार वन, भूमि और जल से जुड़े संघर्षों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में ऐसी चेतना को मजबूत किया, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय समुदायों के अधिकार को महत्व मिलने लगा।¹⁹

आदिवासी आंदोलन

औपनिवेशिक शासन के दौरान आदिवासी समुदायों का जीवन जंगल, जमीन और जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों से गहराई से जुड़ा हुआ था। अंग्रेजी सरकार द्वारा वन क्षेत्रों पर नियंत्रण बढ़ाने, नए वन कानून लागू करने और पारंपरिक अधिकारों को सीमित करने से आदिवासी समाज की जीवन-व्यवस्था प्रभावित हुई।²⁰ प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते सरकारी नियंत्रण के कारण आदिवासियों को जंगल

से लकड़ी, फल, चारा और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने में कठिनाइयाँ आने लगीं। इसके साथ ही साहूकारों, जमींदारों और औपनिवेशिक अधिकारियों के दबाव ने उनकी आर्थिक स्थिति को और कमजोर किया। परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में आदिवासी समुदायों ने अपने अधिकारों और जीवन-व्यवस्था की रक्षा के लिए आंदोलन किए।²¹ बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुआ **उलगुलान (1899-1900)** इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस आंदोलन का संबंध केवल भूमि और लगान के प्रश्न से नहीं था, बल्कि मुंडा समुदाय के पारंपरिक सामाजिक अधिकारों और उनकी भूमि-व्यवस्था की रक्षा से भी था। बिरसा आंदोलन ने औपनिवेशिक शासन और स्थानीय शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध आदिवासी असंतोष को संगठित रूप दिया।²² इसी प्रकार संथाल विद्रोह (1855-56) में भी भूमि, साहूकारी शोषण और औपनिवेशिक प्रशासन के विरुद्ध व्यापक असंतोष दिखाई देता है। आदिवासियों के लिए जमीन केवल संपत्ति नहीं थी, बल्कि उनकी सामाजिक पहचान और जीवन का आधार थी।²³ आदिवासी आंदोलनों को आज के अर्थ में सीधे-सीधे पर्यावरण आंदोलन कहना उचित नहीं होगा। फिर भी इन आंदोलनों में जंगल, भूमि और प्राकृतिक संसाधनों के साथ आदिवासी समाज के गहरे संबंध को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अपने प्राकृतिक संसाधनों और पारंपरिक अधिकारों की रक्षा के लिए किया गया उनका संघर्ष आगे चलकर भारत में पर्यावरणीय चेतना और समुदाय-आधारित संसाधन अधिकारों की समझ के लिए महत्वपूर्ण आधार बना।²⁴ इस प्रकार आदिवासी आंदोलनों ने औपनिवेशिक शासन के आर्थिक और प्रशासनिक नियंत्रण को चुनौती देने के साथ-साथ प्रकृति और समुदाय के बीच लंबे समय से चले आ रहे संबंधों की रक्षा की। इनके माध्यम से यह चेतना मजबूत हुई कि जंगल, जमीन और जल पर स्थानीय समुदायों के अधिकारों की रक्षा सामाजिक न्याय और उनके अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न है।²⁵

महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज, स्वदेशी

महात्मा गांधी के विचारों में प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन को विशेष महत्व दिया गया। उनका मानना था कि मनुष्य को प्रकृति से प्रतिस्पर्धा करने के बजाय उसके साथ सामंजस्य बनाकर जीवन जीना चाहिए। गांधी सादगी, सीमित आवश्यकताओं, अपरिग्रह और आत्मसंयम पर जोर देते थे। उनका विचार था कि प्रकृति मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त देती है, लेकिन लालच और अनावश्यक उपभोग के लिए नहीं।²⁶ गांधी आधुनिक सभ्यता और अत्यधिक भौतिक उपभोग के आलोचक थे। *हिन्द स्वराज* में उन्होंने ऐसी विकास व्यवस्था पर सवाल उठाया जिसमें अधिक उत्पादन और अधिक उपभोग को प्रगति का आधार माना जाता है। उनके अनुसार वास्तविक विकास केवल भौतिक सुविधाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि मनुष्य के नैतिक और सामाजिक विकास से भी जुड़ा होना चाहिए।²⁷ **ग्राम स्वराज** गांधी की इसी सोच का व्यावहारिक रूप था। वे ऐसे गांवों की कल्पना करते थे जो अपनी मूल आवश्यकताओं के लिए स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भर हों। स्थानीय उत्पादन, स्थानीय श्रम और स्थानीय संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग ग्राम स्वराज के महत्वपूर्ण आधार थे। इसी तरह **स्वदेशी** का अर्थ केवल विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं था, बल्कि स्थानीय वस्तुओं और स्थानीय श्रम को महत्व देना भी था। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होने के साथ प्राकृतिक संसाधनों के अनावश्यक दोहन को कम करने की



संभावना थी।²⁸ गांधी के जीवन की एक छोटी घटना उनके प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। एक बार मीरा बेन उनके लिए दातून की बड़ी डाल तोड़कर लाई थीं। गांधी ने उन्हें समझाया कि पेड़ से जरूरत से अधिक डाल तोड़ना उचित नहीं है, क्योंकि उसका उपयोग दूसरे जीव भी कर सकते हैं। यह घटना बताती है कि गांधी के लिए प्रकृति की रक्षा केवल विचार का विषय नहीं, बल्कि दैनिक जीवन और व्यवहार का हिस्सा थी। इसी भावना के कारण वे अपरिग्रह, असंग्रह और सीमित उपभोग को महत्व देते थे।²⁹ इस प्रकार गांधी का ग्राम स्वराज, स्वदेशी, सर्वोदय और सादगी का विचार मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण था। आधुनिक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में गांधी का यह चिंतन आज भी प्रासंगिक दिखाई देता है।

पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास और राष्ट्रीय आंदोलन

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान पर्यावरण संरक्षण आज की तरह अलग मुद्दे के रूप में सामने नहीं आया था, लेकिन प्रकृति, भूमि, जंगल, जल और स्थानीय संसाधनों से जुड़े प्रश्न आंदोलन का महत्वपूर्ण हिस्सा रहे। किसानों और आदिवासियों के संघर्षों में अपने प्राकृतिक संसाधनों और आजीविका को बचाने की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।³⁰ महात्मा गांधी ने इस सोच को व्यापक वैचारिक आधार दिया। वे सीमित उपभोग, सादगी, स्वदेशी, ग्राम स्वराज और स्थानीय आत्मनिर्भरता के पक्षधर थे। उनका मानना था कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को नियंत्रित करना चाहिए और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि आने वाली पीढ़ियाँ भी उनका लाभ उठा सकें। यह विचार आज की **सतत विकास** की अवधारणा से काफी हद तक जुड़ा हुआ दिखाई देता है।³¹ राष्ट्रीय आंदोलन में विकसित यह चेतना सामाजिक न्याय से भी जुड़ी थी। जंगल, भूमि और जल पर निर्भर समुदायों के लिए प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा उनके जीवन और आजीविका की रक्षा थी। इसलिए पर्यावरण संरक्षण का प्रश्न केवल प्रकृति बचाने तक सीमित नहीं था, बल्कि गरीबों, किसानों और आदिवासियों के अधिकारों से भी जुड़ा हुआ था।³² इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन ने प्रत्यक्ष रूप से आधुनिक पर्यावरण आंदोलन को जन्म नहीं दिया, लेकिन उसने ऐसी सोच को मजबूत किया जिसमें प्रकृति का सम्मान, सीमित उपभोग, स्थानीय संसाधनों का संरक्षण और भविष्य की पीढ़ियों के प्रति जिम्मेदारी शामिल थी। गांधीवादी विचारों और स्थानीय जनसंघर्षों ने स्वतंत्र भारत में पर्यावरण संरक्षण तथा सतत विकास की सोच के लिए एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार तैयार किया।³³

निष्कर्ष

आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। इसके साथ किसानों, आदिवासियों और ग्रामीण समाज के **जमीन, जंगल, जल और प्राकृतिक संसाधनों** से जुड़े प्रश्न भी जुड़े थे। औपनिवेशिक शासन ने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अपने आर्थिक हितों के लिए किया। वन कानूनों, भूमि व्यवस्था, लगान और व्यावसायिक कृषि ने स्थानीय लोगों के पारंपरिक अधिकारों को प्रभावित किया, जिससे किसानों और आदिवासियों में असंतोष तथा विभिन्न आंदोलनों का विकास हुआ। इन आंदोलनों में पर्यावरण संरक्षण की आधुनिक अवधारणा स्पष्ट रूप से नहीं थी, लेकिन प्राकृतिक संसाधनों के प्रति लोगों का गहरा संबंध दिखाई देता है। जंगल उनके भोजन, चारा और रोजगार का आधार था, भूमि आजीविका का साधन थी और जल ग्रामीण जीवन की मूल आवश्यकता। इसलिए संसाधनों पर अधिकार की लड़ाई औपनिवेशिक शोषण के विरोध का हिस्सा बन गई। महात्मा गांधी ने इस चेतना को **स्वदेशी, ग्राम स्वराज, सर्वोदय, सादगी, अपरिग्रह और सीमित उपभोग** के माध्यम से वैचारिक आधार दिया। वे प्रकृति के साथ संतुलित जीवन और आवश्यकताओं के सीमित उपयोग के पक्षधर थे। गांधी के लिए पर्यावरण संरक्षण केवल जंगल और जल बचाने का प्रश्न नहीं, बल्कि नैतिकता, सामाजिक न्याय और जीवन-शैली से जुड़ा विषय था। चंपारण जैसे किसान आंदोलनों तथा विभिन्न आदिवासी आंदोलनों ने भूमि, जंगल और पारंपरिक अधिकारों के प्रश्नों को सामने रखा। इन संघर्षों से स्पष्ट हुआ कि प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार सामाजिक और आर्थिक न्याय से जुड़ा है। इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विकसित **प्रकृति के प्रति सम्मान, आत्मनिर्भरता, सीमित उपभोग और सामुदायिक अधिकारों** की चेतना ने आगे चलकर भारत में पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की सोच को वैचारिक आधार प्रदान किया।

संदर्भ :

1. भारत सरकार, *भारतीय वन अधिनियम, 1927*, नई दिल्ली: भारत सरकार, 1927, पृ. 5-7
2. अनोल्ड, डेविड और गुहा, रामचंद्र, संपा., *नेचर, कल्चर एंड इम्पीरियलिज्म: साउथ एशियन एनवायरनमेंटल हिस्ट्री*, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995, पृ. 12-15.
3. गांधी, मोहनदास करमचंद, *सत्याग्रह इन चंपारण*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, पृ. 15-17.
4. गांधी, मोहनदास करमचंद (2000). *हिन्द स्वराज्य*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 38-40
5. गांधी, मोहनदास करमचंद (2000). *हिन्द स्वराज्य*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 73-75.
6. गुहा, रामचंद्र, *द अनक्वाइट वुड्स: हिमालय में पारिस्थितिक परिवर्तन और किसान प्रतिरोध*, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989, पृ. 25.
7. भारत सरकार, *भारतीय वन अधिनियम, 1927*, नई दिल्ली: भारत सरकार, 1927, पृ. 7-10.
8. रंगराजन, महेश, *फेंसिंग द फॉरेस्ट: कंजर्वेशन एंड इकोलॉजिकल चेंज इन इंडियाज सेंट्रल प्रोविंसेज, 1860-1914*, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996, पृ. 30.
9. अनोल्ड, डेविड और गुहा, रामचंद्र, संपा., *नेचर, कल्चर एंड इम्पीरियलिज्म: साउथ एशियन एनवायरनमेंटल हिस्ट्री*, पृ. 55-58.
10. गांधी, मोहनदास करमचंद, *सत्याग्रह इन चंपारण*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 35.
11. गुहा, रामचंद्र, *द अनक्वाइट वुड्स: हिमालय में पारिस्थितिक परिवर्तन और किसान प्रतिरोध*, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989, पृ. 25.
12. गाडगिल, माधव और गुहा, रामचंद्र, *दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1992, पृ. 20.
13. भारत सरकार, *भारतीय वन अधिनियम, 1927*, नई दिल्ली: भारत सरकार, 1927, पृ. 8-10.
14. गांधी, मोहनदास करमचंद, *सत्याग्रह इन चंपारण*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 30-35.
15. चंद्र, बिपिन आदि, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, 1857-1947*, नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स, 1989, पृ. 266-270.
16. डार्लिंग, इयान जे. जे., *द रूरल प्रॉब्लम ऑफ इंडिया*, लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 136-140.
17. गाडगिल, माधव और गुहा, रामचंद्र, *दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1992, पृ. 155.
18. गांधी, मोहनदास करमचंद (2000). *हिन्द स्वराज्य*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 55.
19. गुहा, रामचंद्र, *द अनक्वाइट वुड्स: हिमालय में पारिस्थितिक परिवर्तन और किसान प्रतिरोध*, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989, पृ. 25.
20. गाडगिल, माधव और गुहा, रामचंद्र, *दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1992, पृ. 125.
21. रंगराजन, महेश, *फेंसिंग द फॉरेस्ट: कंजर्वेशन एंड इकोलॉजिकल चेंज इन इंडियाज सेंट्रल प्रोविंसेज*, पृ. 55.

22. गुहा, रामचंद्र, *एनवायरनमेंटलिज्म: ए ग्लोबल हिस्ट्री*, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000, पृ. 85.
23. चंद्र, बिपिन आदि, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष 1857-1947*. दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 90.
24. अनोल्ड, डेविड और गुहा, रामचंद्र, संपा., *नेचर, कल्चर एंड इम्पीरियलिज्म: साउथ एशियन एनवायरनमेंटल हिस्ट्री*, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995, पृ. 88-90.
25. गाडगिल, माधव और गुहा, रामचंद्र, *दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, बर्कले, पृ. 145.
26. गांधी, मोहनदास करमचंद (2000). *हिन्द स्वराज्य*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 58-60.
27. गांधी, मोहनदास करमचंद (2000). *हिन्द स्वराज्य*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 70-75
28. गांधी, मोहनदास करमचंद, *ग्राम स्वराज*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, पृ.-18- 20
29. गांधी, मोहनदास करमचंद, *सर्वोदय*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, पृ. 50.
30. गुहा, रामचंद्र, *दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, बर्कले, 125.
31. गांधी, मोहनदास करमचंद (2000). *हिन्द स्वराज्य*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन. पृ. 75.
32. गाडगिल, माधव और गुहा, रामचंद्र, *दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, बर्कले, 145.
33. गुहा, रामचंद्र, *एनवायरनमेंटलिज्म: ए ग्लोबल हिस्ट्री*, नई दिल्ली, पृ. 95.

भारतीय ज्ञानमीमांसा के विशेष सन्दर्भ में आयुर्वेदशास्त्रोक्त तन्त्रयुक्ति का स्वरूप एवं महत्त्व

डॉ. निमिषा कुमारी*

tripathinimisha48@gmail.com

सारांश

भारतीय ज्ञानपरम्परा की विशिष्टताओं में एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ ज्ञान को केवल तथ्यों के संचय के रूप में स्वीकार नहीं किया गया, अपितु उसके समुचित निर्माण, सुव्यवस्थित संगठन, संरक्षण, व्याख्या तथा व्यावहारिक प्रयोग के लिए विशिष्ट पद्धतियों का विकास किया गया। ऐसी ही एक महत्वपूर्ण बौद्धिक पद्धति है—तन्त्रयुक्ति। 'तन्त्र' और 'युक्ति'—इन दो पदों के समन्वय से निर्मित 'तन्त्रयुक्ति' मूलतः ऐसी शास्त्रीय पद्धति है, जिसके माध्यम से शास्त्र में निहित संक्षिप्त, अप्रत्यक्ष, अनुक्त, विखण्डित अथवा प्रत्यक्षतः विरोधाभासी प्रतीत होने वाले कथनों के अभिप्रेत अर्थ का सम्यक् निर्धारण किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में तन्त्रयुक्ति को शास्त्र-रचना तथा शास्त्र-व्याख्या की ऐसी पद्धति के रूप में देखा गया है, जो विभिन्न विषयों, पदों और वाक्यों को तार्किक रूप से परस्पर सम्बद्ध करके शास्त्र के स्पष्ट एवं अभिप्रेत अर्थ का उद्घाटन करती है।

आयुर्वेद की प्रमुख संहिताओं में तन्त्रयुक्ति का सुव्यवस्थित प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। चरकीय परम्परा में ३६, सुश्रुतीय परम्परा में ३२ तथा अष्टाङ्गसंग्रह में ३६ तन्त्रयुक्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है। चक्रपाणिदत्त, दल्हन, इन्दु तथा अरुणदत्त आदि भाष्यकारों ने अपने-अपने भाष्यों में तन्त्रयुक्ति के स्वरूप एवं महत्त्व को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है। विशेषतः चरकसंहिता के विमानस्थान एवं सूत्रस्थान में इसके प्रयोग का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि तन्त्रयुक्ति केवल चिकित्सा-शास्त्र की व्याख्या-पद्धति नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-निर्माण एवं ज्ञान-व्याख्या की एक सुव्यवस्थित स्वदेशी पद्धतिशास्त्रीय प्रणाली है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में तन्त्रयुक्ति की व्युत्पत्ति, संकल्पना, प्रयोजन, स्वरूप, वर्गीकरण, विभिन्न आचार्यों के मतभेद, चरकसंहिता में इसके प्रयोग तथा समकालीन अनुसंधान के सन्दर्भ में इसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का मूल प्रतिपाद्य यह है कि तन्त्रयुक्ति को भारतीय ज्ञानपरम्परा में ज्ञान-निर्माण, ज्ञान-संगठन तथा ज्ञान-व्याख्या—इन तीनों का समन्वित पद्धतिशास्त्र माना जा सकता है।

मुख्य शब्द:

तन्त्रयुक्ति, भारतीय ज्ञानपरम्परा, चरकसंहिता, आयुर्वेद, ज्ञानमीमांसा, व्याख्याशास्त्र, युक्ति, विमानस्थान, शास्त्र-पद्धति।

भूमिका

प्राचीन भारतीय शास्त्र-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर एक तथ्य विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करता है कि शास्त्रकारों ने प्रत्येक विषय को सर्वत्र विस्तृत विवेचन के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। कहीं एक ही पद में विस्तृत अर्थ निहित है, कहीं कुछ ही शब्दों में सम्पूर्ण सिद्धान्त का संकेत प्राप्त होता है, कहीं कोई कथन पूर्ववर्ती विवेचन पर आश्रित होता है और कहीं उसका पूर्ण अर्थ परवर्ती प्रसंग में उद्घाटित होता है। यह संक्षिप्तता एक ओर भारतीय सूत्र-शैली की शक्ति है, तो दूसरी ओर अपरिचित अथवा अनभ्यस्त पाठक के लिए उसके दुर्गम होने का कारण भी है।

* विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डोरण्डा कालेज, राँची विश्वविद्यालय, राँची

अतः किसी शास्त्र का यथार्थ बोध प्राप्त करने के लिए केवल शब्दार्थ का ज्ञान पर्याप्त नहीं है; उसके लिए प्रसंग, प्रयोजन, पूर्वापर-सम्बन्ध, अनुक्तार्थ, तर्क तथा प्रयोग-पद्धति का ज्ञान भी आवश्यक है। इसी आवश्यकता की पूर्ति करने वाली विशिष्ट शास्त्रीय पद्धति है—तन्त्रयुक्ति। चरकसंहिता में शास्त्र के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

“तत्रायुर्वेदः शाखा विद्या सूत्रं ज्ञानं शास्त्रं लक्षणं तन्त्रमित्यन्तर्धानम्”॥ (चरकसंहिता, सूत्रस्थान ३०.३१)

तन्त्रयुक्ति के माध्यम से शास्त्र के विभिन्न स्थलों पर विखण्डित रूप से उपलब्ध कथनों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जो अर्थ प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त नहीं है, उसका प्रसंग, पूर्वापर-सम्बन्ध एवं युक्ति के आधार पर उद्घाटन किया जाता है। उपलब्ध शोध-सामग्री के अनुसार, संहिता का कोई अंश अव्यक्त, लेशोक्त, लीन, व्यत्यास आदि कारणों से प्रत्यक्षतः स्पष्ट न होते हुए भी विज्ञ पाठक तन्त्रयुक्ति के माध्यम से उसके अभिप्रेत अर्थ को ग्रहण कर सकता है। इस सन्दर्भ में चरकसंहिता के सिद्धिस्थान में तन्त्रयुक्ति के महत्त्व को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया गया है—

“यथाऽम्बुजवनस्यार्कः प्रदीपो वेश्मनो यथा।

प्रबोधनप्रकाशार्थास्तथा तन्त्रस्य युक्तयः”॥ (चरकसंहिता, सिद्धिस्थान १२.४६)

इस दृष्टि से तन्त्रयुक्ति को केवल एक प्राचीन व्याख्याशास्त्रीय पारिभाषिक संज्ञा मानना उसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा। इसके अन्तर्गत यह प्रश्न भी निहित है कि ज्ञान का निर्माण किस प्रकार हो, उसका संगठन किस प्रकार किया जाए तथा उसके अन्तर्निहित अर्थ का उद्घाटन किस प्रकार सम्भव हो। इसीलिए तन्त्रयुक्ति भारतीय ज्ञानपरम्परा की एक महत्त्वपूर्ण स्वदेशी पद्धतिशास्त्रीय उपलब्धि के रूप में पुनर्विचार की अपेक्षा रखती है।

तन्त्रयुक्ति की व्युत्पत्ति एवं संकल्पनात्मक महत्त्व

‘तन्त्रयुक्ति’ शब्द ‘तन्त्र’ तथा ‘युक्ति’—इन दो पदों के समन्वय से निर्मित है। उपलब्ध शोध-सामग्री में ‘तन्त्र’ को √तन् धातु तथा ‘युक्ति’ को √युज् धातु से सम्बद्ध मानकर उनकी व्युत्पत्तिगत अर्थवत्ता का विवेचन किया गया है। ‘तन्त्र’ में विस्तार, प्रसरण तथा रचना का भाव निहित है, जबकि ‘युक्ति’ में संयोजन, प्रयोग, समन्वय तथा तार्किक विन्यास का बोध होता है। इस व्युत्पत्तिगत आधार पर तन्त्रयुक्ति की एक कार्यपरक परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—जिस पद्धति के द्वारा किसी शास्त्र में विखण्डित विषयों, पदों एवं कथनों को यथोचित रूप से परस्पर सम्बद्ध करके उसके सुव्यवस्थित तथा अभिप्रेत अर्थ का उद्घाटन किया जाता है, उसे तन्त्रयुक्ति कहते हैं। चरकसंहिता में ‘तन्त्र’ के अर्थ को केवल ग्रन्थ तक सीमित न रखकर उसके विषय-विस्तार और प्रकरणात्मक संगठन की ओर भी संकेत मिलता है—

“तन्त्रार्थः पुनः स्वलक्षणैरुपदिष्टः। स चार्थः प्रकरणैर्विभाव्यमानो भूय एव

शरीरवृत्तिहेतुव्याधिकर्मकार्यकालकर्तृकरणविधिविनिश्चयाद्दशप्रकरणः”॥ (चरकसंहिता, सूत्रस्थान ३०.३२)

तन्त्रयुक्ति की कार्यक्षमता मुख्यतः दो स्तरों पर दिखाई देती है—

(क) वाक्ययोजना : विभिन्न स्थलों पर विखण्डित अथवा परस्पर पृथक् पदों एवं वाक्यों को उचित रूप से सम्बद्ध करके एक सार्थक एवं पूर्ण कथन का निर्माण करना वाक्ययोजना है। उद्देश्य, निर्देश, योग आदि तन्त्रयुक्तियाँ इस स्तर पर विशेष महत्त्व रखती हैं।

(ख) अर्थयोजना : जो शब्द अथवा अर्थ प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त नहीं है अथवा पृथक्-पृथक् रूप में व्यक्त होने के कारण जिसकी पूर्ण तात्पर्यगत सत्ता स्पष्ट नहीं होती, उसे प्रसंग, तर्क तथा बुद्धि के आधार पर सुव्यवस्थित करना अर्थयोजना है। अधिकरण, पदार्थ, ऊह्य आदि तन्त्रयुक्तियाँ इस स्तर पर विशेष रूप से उपयोगी हैं।

अतः तन्त्रयुक्ति केवल ‘वाक्यार्थ’ का उद्घाटन करने वाली पद्धति नहीं है; वह शास्त्र के अन्तर्निहित अर्थ-संरचनात्मक तन्त्र को भी उद्घाटित करती है।

तन्त्रयुक्ति का प्रयोजन एवं आवश्यकता

प्राचीन भारतीय शास्त्रों की संक्षिप्त शैली मौखिक परम्परा, स्मरण तथा ज्ञान-संरक्षण की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली थी; किन्तु उसके अर्थोद्घाटन के लिए विशेष बौद्धिक दक्षता की आवश्यकता होती थी। इसी सन्दर्भ में तन्त्रयुक्ति के प्रमुख प्रयोजन निम्नलिखित हैं—

- शास्त्र में निहित गूढ़ार्थ का उद्घाटन करना;
- अनुक्त विषय को प्रसंगानुसार समझना;
- विखण्डित कथनों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना;
- संक्षिप्त कथन को उसके अभिप्रेत विस्तार तक पहुँचाना;
- प्रत्यक्ष अथवा आभासी विरोध का निराकरण करना;
- पूर्वापर प्रसंगों का समन्वय करना;
- सामान्य नियम एवं अपवाद का निर्धारण करना;
- शास्त्रीय सिद्धान्त अथवा निष्कर्ष तक पहुँचाना;
- तथा शास्त्रीय ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग को यथार्थ बनाना।

प्रस्तुत शोध-सामग्री में तन्त्रयुक्ति के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए यह संकेत किया गया है कि तन्त्रयुक्ति का सम्यक् ज्ञान रखने वाला व्यक्ति शास्त्र के गहनतम अर्थ में प्रवेश कर सकता है; इसके विपरीत, तन्त्रयुक्ति के समुचित ज्ञान के अभाव में चिकित्सक शास्त्रीय ज्ञान का यथार्थ प्रयोग करने में असमर्थ हो सकता है। इस सन्दर्भ में तन्त्रयुक्ति के ज्ञान की तुलना कुशल व्यक्ति के हाथ में स्थित अस्त्र से की गई है।

यहाँ 'चिकित्सक' पद विशेष रूप से अर्थपूर्ण है। आयुर्वेद का ज्ञान मात्र सैद्धान्तिक ज्ञान नहीं है; उसका परम उद्देश्य चिकित्सा में उसका यथार्थ प्रयोग है। अतः किसी शास्त्रीय वाक्य की अशुद्ध व्याख्या प्रत्यक्षतः चिकित्सकीय त्रुटि का कारण बन सकती है। इसीलिए आयुर्वेदिक ज्ञान-व्यवस्था में तन्त्रयुक्ति केवल व्याख्या की सहायक प्रणाली नहीं, बल्कि ज्ञान की शुद्धता एवं सुरक्षित अनुप्रयोग की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति भी है।

चरकाचार्य इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

अधीयानोऽपि शास्त्राणि तन्त्रयुक्त्या विना भिषक्।

नाधिगच्छति शास्त्रार्थानर्थान् भाग्यक्षये यथा॥ (चरकसंहिता, सिद्धिस्थान १२.४८)

अर्थात् तन्त्रयुक्ति के बिना शास्त्र का अध्ययन करने वाला भिषक् भी शास्त्र के वास्तविक अर्थ को प्राप्त नहीं कर सकता, जिस प्रकार भाग्य के क्षीण होने पर मनुष्य अर्थ अर्थात् धन को प्राप्त नहीं कर पाता। यह श्लोक तन्त्रयुक्ति को शास्त्रार्थबोध की अनिवार्य शर्त के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

तन्त्रयुक्तियों की संख्या एवं आचार्यभेद से मतभिन्नता

तन्त्रयुक्तियों की संख्या के विषय में विभिन्न आयुर्वेदिक ग्रन्थों में कुछ भिन्नता दिखाई देती है। चरकसंहिता के सिद्धिस्थान के द्वादश अध्याय में दृढबल द्वारा परिष्कृत संकलन में ३६ तन्त्रयुक्तियों का उल्लेख मिलता है। सुश्रुतसंहिता में ३२ तथा अष्टाङ्गसंग्रह में ३६ तन्त्रयुक्तियों का निरूपण प्राप्त होता है। अष्टाङ्गहृदय में 'तन्त्रयुक्ति' शब्द का प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं मिलता, किन्तु अरुणदत्तकृत सर्वाङ्गसुन्दरी टीका में ३६ तन्त्रयुक्तियों का विवेचन प्राप्त होता है। चरकसंहिता में ३६ तन्त्रयुक्तियों का मूल सूत्रात्मक निरूपण इस प्रकार प्राप्त होता है—

तत्राधिकरणं योगो हेत्वर्थोऽर्थः पदस्य च।

प्रदेशोद्देशनिर्देशवाक्यशेषाः प्रयोजनम्॥

उपदेशापदेशातिदेशार्थापत्तिनिर्णयाः।

प्रसङ्गैकान्तनैकान्ताः सापवर्गो विपर्ययः॥

पूर्वपक्षविधानानुमतव्याख्यानसंशयाः।

अतीतानागतावेक्षास्वसंज्ञोह्यसमुच्चयाः॥

निदर्शनं निर्वर्चनं संनियोगो विकल्पनम्।

प्रत्युत्सारस्तथोद्धारः संभवस्तन्त्रयुक्तयः॥

(चरकसंहिता, सिद्धिस्थान १२.४१-४४/४५)

चक्रपाणिदत्त ने आयुर्वेददीपिका में चरकीय ३६ तन्त्रयुक्तियों की विस्तृत व्याख्या की है। दल्हण ने निबन्धसंग्रह में सुश्रुतीय तन्त्रयुक्तियों का विवेचन किया है तथा इन्दु ने शशिलेखा टीका में अष्टाङ्गसंग्रह की तन्त्रयुक्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। गङ्गाधर ने भी जल्पकल्पतरु में चरकीय तन्त्रयुक्तियों की उदाहरणसहित व्याख्या की है।

भट्टार हरिश्चन्द्र की सूची में परिप्रश्न, व्याकरण, व्युत्क्रान्ताभिधान तथा हेतु—ये चार अतिरिक्त पद प्राप्त होते हैं। चक्रपाणिदत्त ने इन्हें पृथक् तन्त्रयुक्ति न मानकर प्रचलित तन्त्रयुक्तियों के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। उनके अनुसार परिप्रश्न का अन्तर्भाव 'उद्देश्य' में, व्याकरण का 'व्याख्यान' में, व्युत्क्रान्ताभिधान का 'निर्देश' में तथा हेतु का प्रमाणसम्बन्धी अर्थ में किया जा सकता है।

अतः तन्त्रयुक्तियों की संख्या में दिखाई देने वाले इन अन्तर्गतों को मूलभूत सैद्धान्तिक विरोध न मानकर वर्गीकरणगत एवं कार्यपरक अन्तर मानना अधिक युक्तिसंगत होगा। चक्रपाणिदत्त का एक महत्त्वपूर्ण निर्देश यह है कि किसी तन्त्रयुक्ति का नाम और सामान्य परिभाषा समान होने पर भी उसके वास्तविक प्रयोग को समझने के लिए सम्बन्धित शास्त्रकार द्वारा उस विशिष्ट ग्रन्थ में प्रयुक्त पद्धति को ही प्राथमिकता देनी चाहिए।

तन्त्रयुक्तियों के प्रमुख रूप एवं उनकी कार्यक्षमता

३६ तन्त्रयुक्तियों में से प्रत्येक का पृथक् विवेचन इस शोध-पत्र की सीमा में सम्भव नहीं है; तथापि उनकी कार्यगत विशेषताओं का अध्ययन करने से तन्त्रयुक्ति के अन्तर्निहित पद्धतिशास्त्रीय स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

अधिकरण

जिस विषय को केन्द्र में रखकर शास्त्रकार अपने विवेचन का निर्माण करता है, वह अधिकरण कहलाता है। आयुर्वेद के सन्दर्भ में रोग को अधिकरण माना गया है, क्योंकि रोग मानव के पुरुषार्थ-साधन में बाधक होता है।

योग

विभिन्न स्थलों पर स्थित अथवा परस्पर पृथक् पदों को उचित रूप से सम्बद्ध करके एक सार्थक वाक्यार्थ की निष्पत्ति करना योग है। चक्रपाणिदत्त के अनुसार वाक्य में पृथक्-पृथक् स्थित पदों का परस्पर संयोजन योग कहलाता है।

उद्देश्य एवं निर्देश

किसी विषय का संक्षिप्त रूप में प्रथम उल्लेख उद्देश्य है, जबकि उसके पश्चात् उसी विषय का विस्तृत विवेचन निर्देश कहलाता है। यह द्विस्तरीय पद्धति शास्त्रीय संक्षिप्तता एवं विस्तृत व्याख्या के बीच समुचित सामंजस्य स्थापित करती है।

वाक्यशेष

वाक्य में प्रत्यक्षतः अनुक्त किसी पद अथवा अर्थ को प्रसंग के आधार पर ग्रहण करके वाक्यार्थ की पूर्णता करना वाक्यशेष है। इससे यह सिद्ध होता है कि शास्त्र का अर्थ केवल प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त शब्दों तक सीमित नहीं है।

पदार्थ

किसी शब्द का केवल सामान्य या कोशगत अर्थ ग्रहण न करके विशिष्ट शास्त्रीय प्रसंग में उसका जो पारिभाषिक अथवा तात्त्विक अर्थ है, उसका निर्धारण पदार्थ तन्त्रयुक्ति के द्वारा किया जाता है।

अर्थापत्ति

जो अर्थ प्रत्यक्षतः कथित नहीं है, किन्तु उपलब्ध कथन से अनिवार्य रूप से निष्पन्न होता है, उसका ग्रहण अर्थापत्ति के द्वारा किया जाता है।

अतीतावेक्षण एवं अनागतावेक्षण

पूर्व में विवेचित विषय की ओर पुनः संकेत करना अतीतावेक्षण है, जबकि भविष्य में विवेचित होने वाले विषय का पूर्वसंकेत अनागतावेक्षण कहलाता है। ये दोनों तन्त्रयुक्तियाँ शास्त्र के विभिन्न भागों के अन्तर्सम्बन्ध को सुदृढ़ करती हैं।

स्वसंज्ञा : किसी विशिष्ट शास्त्र में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द को उसी शास्त्र द्वारा निर्धारित विशिष्ट अर्थ में ग्रहण करना स्वसंज्ञा है। इससे स्पष्ट होता है कि शास्त्रविशेष की पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान उसके यथार्थ अर्थबोध के लिए अनिवार्य है।

ऊह्य : जो अर्थ शास्त्र में प्रत्यक्षतः अभिव्यक्त नहीं है, किन्तु बुद्धि, तर्क एवं प्रसंग के आधार पर ग्रहण किया जा सकता है, वह ऊह्य है। यह तन्त्रयुक्ति के अत्यन्त सूक्ष्म व्याख्यात्मक स्तर का प्रतिनिधित्व करती है।

समुच्चय : विभिन्न पृथक् विषयों को एक समष्टिगत अर्थ अथवा व्यापक वर्ग के अन्तर्गत ग्रहण करना समुच्चय है। इसके द्वारा अलग-अलग सूचनाओं को एक व्यापक वैचारिक संरचना में संगठित किया जाता है।

निदर्शन एवं निर्वचन : किसी विषय को उदाहरण के माध्यम से सुबोध बनाना निदर्शन है। वहीं पाण्डित्य, सूक्ष्मबुद्धि तथा तर्क के आधार पर किसी गूढ़ विषय या दृष्टान्त के अर्थ का उद्घाटन निर्वचन कहलाता है। शोध-सामग्री में काल तथा उसकी नित्य परिवर्तनशीलता को उदाहरण बनाकर निर्वचन की सूक्ष्मता को स्पष्ट किया गया है।

नियोग एवं विकल्प : किसी कार्य का अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए—इस प्रकार की निश्चित आज्ञा या निर्देश नियोग है। इसके विपरीत, किसी कार्य की सिद्धि के लिए एकाधिक मान्य उपायों में से किसी एक को स्वीकार करने की स्वतंत्रता विकल्प है। चरकसंहिता में सारोदक अथवा कुशोदक को स्वीकार करने की सम्भावना विकल्प का उपयुक्त उदाहरण है।

पूर्वपक्ष, प्रत्युत्सार एवं उद्धार

किसी मत के विरुद्ध प्रश्न अथवा आपत्ति प्रस्तुत करना पूर्वपक्ष, तर्क के आधार पर उस आपत्ति अथवा मत का निराकरण करना प्रत्युत्सार, तथा अन्ततः स्वपक्ष की स्थापना करना उद्धार है। इन तीनों स्तरों से तन्त्रयुक्ति का भारतीय तार्किक एवं वादपरम्परा से गहरा सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

चरकसंहिता में रससम्बन्धी विवेचन के प्रसंग में विभिन्न ऋषियों द्वारा भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए जाते हैं। परस्पर मतखण्डन एवं तार्किक परीक्षण के उपरान्त आत्रेय द्वारा षड्स-सिद्धान्त की स्थापना की जाती है। यह प्रक्रिया पूर्वपक्ष, प्रत्युत्सार एवं उद्धार की गतिशील कार्यप्रणाली को स्पष्ट करती है।

सम्भव

किसी पदार्थ के सम्भावित उद्गम, स्थान अथवा सम्बन्ध का प्रत्यक्ष उल्लेख न होने पर भी युक्ति के आधार पर उसका अनुमान किया जा सके, तो वह सम्भव तन्त्रयुक्ति का क्षेत्र है। पिप्पु, व्यङ्ग, नीलिका आदि मुख में उत्पन्न होते हैं—ऐसे प्रसंगों में 'मुख' का प्रत्येक बार प्रत्यक्ष उल्लेख न होने पर भी पाठक प्रसंगानुसार उसके स्थान का बोध कर लेता है। यह सम्भव तन्त्रयुक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

चरकसंहिता में तन्त्रयुक्ति का प्रयोग : ज्ञान-संगठन का आदर्श

तन्त्रयुक्ति की वास्तविक शक्ति केवल उसकी परिभाषाओं में नहीं, बल्कि उसके व्यावहारिक प्रयोग में निहित है। चरकसंहिता के विशेषतः विमानस्थान एवं सूत्रस्थान में इसका अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

विमानस्थान में आहार, देश, काल, दोष, भेषज, शरीर, सार, सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति तथा वय आदि अनेक विषयों के पारस्परिक सम्बन्ध को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया है। किसी विषय को पहले संक्षेप में निर्दिष्ट करके उसके बाद उसका विस्तृत विवेचन करना, पूर्ववर्ती चर्चा को परवर्ती कथन से जोड़ना तथा किसी शब्द के विशिष्ट शास्त्रीय अर्थ का निर्धारण करना—इन सभी प्रक्रियाओं में तन्त्रयुक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस सन्दर्भ में चरकसंहिता में प्रयुक्त 'सर्वग्रह' तथा 'परिग्रह' शब्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'सर्वग्रह' से सम्पूर्ण आहार की मात्रा तथा 'परिग्रह' से उसके पृथक्-पृथक् अवयवों की मात्रा का बोध कराया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि सामान्य शब्द किस प्रकार विशिष्ट शास्त्रीय प्रसंग में पारिभाषिक अर्थ ग्रहण कर लेता है।

इसी प्रकार नियोग के अन्तर्गत रोगी को चिकित्सकीय नियमों का अनिवार्य रूप से पालन करने का निर्देश दिया जाता है, जबकि विकल्प के अन्तर्गत समान चिकित्सकीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकाधिक उपायों को स्वीकार किया जा

सकता है। इस प्रकार तन्त्रयुक्ति केवल पाठ के अर्थ का उद्घाटन नहीं करती, बल्कि शास्त्रीय ज्ञान को व्यावहारिक निर्णय में रूपान्तरित करने की क्षमता भी प्रदान करती है। चरकसंहिता के सिद्धिस्थान में तन्त्रयुक्तियों के प्रयोजन का समग्र फल इस प्रकार प्रतिपादित है—

**दुर्गृहीतं क्षिणोत्येव शास्त्रं शस्त्रमिवाबुधम्।
सुगृहीतं तदेव ज्ञं शास्त्रं शस्त्रं च रक्षति॥** (चरकसंहिता, सिद्धिस्थान १२.४९)

तन्त्रयुक्ति एवं तार्किक ज्ञान-निर्माण

तन्त्रयुक्ति की एक प्रमुख विशेषता उसका संवादात्मक एवं आलोचनात्मक स्वरूप है। भारतीय शास्त्रकारों ने केवल अपने मत की स्थापना नहीं की; अनेक प्रसंगों में उन्होंने सम्भावित प्रतिपक्ष का मत पहले प्रस्तुत किया, उसकी सीमाओं को उद्घाटित किया और तत्पश्चात् तर्क के आधार पर स्वमत की स्थापना की।

चरकसंहिता में शरीर एवं पुरुष की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न मतों के विवेचन में यह पद्धति स्पष्ट दिखाई देती है। एक पक्ष का कथन दूसरे पक्ष द्वारा तार्किक आधार पर अस्वीकार किया जाता है और अन्ततः स्वपक्ष की स्थापना की जाती है। प्रस्तुत शोध-सामग्री में इस प्रक्रिया को प्रत्युत्सार एवं उद्धार के माध्यम से समझाया गया है।

इस पद्धति का दार्शनिक महत्त्व अत्यन्त गहरा है। यहाँ ज्ञान किसी एकतरफा घोषणा का परिणाम नहीं है; बल्कि—
प्रश्न → संशय → पूर्वपक्ष → तर्क → खण्डन → निर्णय—इस क्रमिक बौद्धिक प्रक्रिया के माध्यम से ज्ञान की स्थापना होती है। अतः तन्त्रयुक्ति भारतीय ज्ञानपरम्परा में एक प्रकार की समालोचनात्मक बौद्धिकता का परिचय देती है, जिसमें मतभेद ज्ञान-विकास के लिए बाधा नहीं, बल्कि ज्ञान-परिशोधन का माध्यम बन जाता है।

तन्त्रयुक्ति एवं अन्तरपाठीय ज्ञान-संगठन

तन्त्रयुक्ति की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका अन्तरपाठीय स्वरूप है। किसी ग्रन्थ के एक अध्याय अथवा प्रकरण को उसके पूर्ववर्ती और परवर्ती प्रसंगों से पूर्णतः पृथक् करके समझना सम्भव नहीं है। किसी शब्द का अर्थ अन्यत्र निर्धारित हो सकता है; कोई संक्षिप्त निर्देश आगामी अध्याय में विस्तृत रूप प्राप्त कर सकता है; इसी प्रकार पूर्ववर्ती विवेचन का कोई निष्कर्ष नवीन प्रसंग में पुनः प्रयुक्त हो सकता है।

तन्त्रयुक्ति के माध्यम से स्थान-अध्याय-प्रकरण-श्लोक—इन सभी स्तरों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का बोध सम्भव होता है। प्रस्तुत शोध-सामग्री के निष्कर्षानुसार, तन्त्रयुक्ति के द्वारा किसी तन्त्र का समग्र ज्ञान तथा उसके विभिन्न स्थानों, अध्यायों, प्रकरणों एवं श्लोकों के मध्य अन्तर्निहित सम्बन्ध को समझा जा सकता है।

आधुनिक शोध-पद्धति की भाषा में इसकी तुलना cross-referencing, contextual reading तथा intertextual interpretation जैसी अवधारणाओं से की जा सकती है। तथापि तन्त्रयुक्ति को आधुनिक सिद्धान्तों का अनुकरण मानना उचित नहीं होगा। अधिक युक्तिसंगत दृष्टिकोण यह है कि भारतीय शास्त्रकारों ने अपनी ज्ञानपरम्परा के भीतर ही एक सुव्यवस्थित पाठ-व्याख्या पद्धति का निर्माण किया था, जिसका स्वरूप आधुनिक पद्धतियों से स्वतंत्र होते हुए भी उनके साथ कुछ कार्यात्मक साम्य रखता है।

तन्त्रयुक्ति एवं भारतीय ज्ञानतन्त्र की विशिष्टता

तन्त्रयुक्ति के अन्तर्निहित ज्ञानमीमांसात्मक दृष्टिकोण को कुछ मूलभूत सूत्रों में व्यक्त किया जा सकता है—

1. अर्थ प्रसंग-सापेक्ष होता है।
2. ज्ञान मूलतः अन्तर्सम्बद्ध होता है।
3. अनुक्त अर्थ भी ज्ञेय हो सकता है।
4. मतभेद ज्ञानचर्चा का स्वाभाविक एवं आवश्यक अंग है।
5. सामान्य नियम के साथ अपवाद का भी महत्त्व है।
6. शास्त्रीय ज्ञान की पूर्णता उसके यथार्थ प्रयोग में होती है।

इन विशेषताओं का समुच्चय तन्त्रयुक्ति को मात्र व्याख्याशास्त्रीय उपकरण की सीमा से बाहर ले जाता है और उसे एक व्यापक ज्ञानमीमांसात्मक एवं पद्धतिशास्त्रीय प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

यहाँ ज्ञान को स्थिर, पृथक् और निष्क्रिय वस्तु के रूप में नहीं देखा गया है। ज्ञान एक सम्बन्धात्मक संरचना है, जिसमें शब्द, प्रसंग, तर्क, पूर्वापर सम्बन्ध, प्रयोजन तथा प्रयोग—सभी परस्पर सम्बद्ध हैं। इसीलिए तन्त्रयुक्ति को भारतीय ज्ञानपरम्परा की सन्दर्भ-आधारित एवं सम्बन्धपरक ज्ञानदृष्टि का महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

समकालीन अनुसंधान में तन्त्रयुक्ति की प्रासंगिकता

इक्कीसवीं शताब्दी में ज्ञान एवं सूचना की मात्रा अभूतपूर्व रूप से बढ़ी है। किन्तु सूचना की प्रचुरता अपने आप में ज्ञान नहीं है। विभिन्न सूचनाओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना, उनके प्रसंग का निर्धारण करना, प्रासंगिक एवं अप्रासंगिक तथ्यों का विवेक करना तथा यथार्थ निष्कर्ष तक पहुँचना आज भी ज्ञान-अनुसंधान की मूल चुनौती है। इस परिप्रेक्ष्य में तन्त्रयुक्ति के अनेक सिद्धान्त आज भी विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होते हैं—

प्रसंगाधारित पठन: किसी कथन को उसके मूल प्रसंग से काटकर न देखकर उसके पूर्वापर सन्दर्भ में समझना।

अन्तर्सम्बन्ध का निर्धारण: एक तथ्य को दूसरे तथ्य से सम्बद्ध करके व्यापक ज्ञान-संरचना का निर्माण करना।

अनुक्तार्थ का अन्वेषण: प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध सूचना के अतिरिक्त उसके अन्तर्निहित अर्थ एवं निहितार्थ को समझना।

समालोचनात्मक परीक्षण: विभिन्न मतों एवं सम्भावित आपत्तियों को ज्ञान-चर्चा का अनिवार्य अंग मानना और तार्किक परीक्षण के माध्यम से निष्कर्ष तक पहुँचना।

विकल्प की स्वीकृति: किसी समस्या के केवल एक समाधान को अनिवार्य न मानकर अनेक सम्भावित एवं मान्य विकल्पों का विवेकपूर्ण परीक्षण करना।

प्रयोगमुखी ज्ञान: ज्ञान को केवल सैद्धान्तिक संचय न मानकर उसे वास्तविक जीवन की समस्याओं के समाधान में उपयोगी बनाना।

इस अर्थ में तन्त्रयुक्ति समकालीन शोधकर्ता के लिए केवल प्राचीन पद्धति के इतिहास का विषय नहीं है; वह भारतीय ज्ञानपरम्परा से प्राप्त एक स्वदेशी methodological resource के रूप में पुनर्पाठ की अपेक्षा रखती है।

विशेषतः आज के डिजिटल एवं कृत्रिम-बुद्धिमत्ता-आधारित ज्ञान-परिदृश्य में जहाँ सूचनाएँ अत्यधिक तीव्रता से उत्पन्न और प्रसारित हो रही हैं, वहाँ प्रसंग, सम्बन्ध, निहितार्थ, वर्गीकरण, विकल्प तथा आलोचनात्मक परीक्षण जैसी तन्त्रयुक्तिगत प्रविधियाँ ज्ञान और सूचना के बीच अन्तर को समझने में महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक आधार प्रदान कर सकती हैं।

उपसंहार

तन्त्रयुक्ति भारतीय ज्ञानपरम्परा की एक विलक्षण बौद्धिक उपलब्धि है। इसके अन्तर्गत शास्त्र-रचना, पाठोद्धार, अर्थनिर्णय, तार्किक विन्यास, अन्तरपाठीयता तथा व्यावहारिक प्रयोग—ये सभी तत्त्व एक ही पद्धतिगत सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टाङ्गसंग्रह आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसके सुव्यवस्थित प्रयोग से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारतीय मनीषा ने केवल ज्ञान का संरक्षण ही नहीं किया, बल्कि ज्ञान को किस प्रकार पढ़ा जाए, किस प्रकार समझा जाए तथा किस प्रकार व्यवहार में लाया जाए—इसके लिए भी एक सुसंगत पद्धति विकसित की थी।

तन्त्रयुक्ति का वास्तविक महत्त्व उसकी द्विमुखी क्षमता में निहित है। एक ओर यह शास्त्र के विभिन्न स्थलों पर स्थित विखण्डित कथनों को परस्पर सम्बद्ध करके वाक्ययोजना को पूर्ण करती है; दूसरी ओर अनुक्त, अप्रत्यक्ष अथवा अन्तर्निहित अर्थ का उद्घाटन करके अर्थयोजना को सम्पन्न करती है।

चरकीय परम्परा में ३६, सुश्रुतीय परम्परा में ३२ तथा अन्य भाष्यकारों के वर्गीकरण में दिखाई देने वाला संख्यात्मक अन्तर तन्त्रयुक्ति की मूल संरचना को दुर्बल नहीं करता; बल्कि यह भारतीय शास्त्रीय व्याख्यापद्धति की लचीली, प्रसंग-सापेक्ष एवं कार्यपरक प्रकृति का परिचायक है। भट्टार हरिश्चन्द्र द्वारा उल्लिखित अतिरिक्त चार तन्त्रयुक्तियों को चक्रपाणिदत्त द्वारा

व्यापक श्रेणियों में समाविष्ट किए जाने की प्रक्रिया भी यह स्पष्ट करती है कि प्राचीन भारतीय पद्धतिशास्त्र में वर्गीकरण यान्त्रिक न होकर कार्यपरक था।

अन्ततः कहा जा सकता है कि तन्त्रयुक्ति केवल आयुर्वेद की कोई प्राचीन पारिभाषिक संज्ञा नहीं है। यह भारतीय ज्ञानपरम्परा के उस मौलिक प्रश्न का स्वदेशी उत्तर है कि ज्ञान का निर्माण, संगठन, व्याख्या एवं प्रयोग किस प्रकार किया जाए। शास्त्र के अक्षर को अर्थ में, अर्थ को तत्त्व में और तत्त्व को व्यवहार में रूपान्तरित करने वाला जो बौद्धिक सेतु है, तन्त्रयुक्ति उसी सेतु का नाम है।

अतः भारतीय ज्ञानव्यवस्था के आधुनिक पुनर्मूल्यांकन में तन्त्रयुक्ति को केवल आयुर्वेदिक व्याख्यापद्धति के रूप में सीमित न करके स्वदेशी ज्ञान-निर्माण एवं व्याख्याविज्ञान की एक व्यापक पद्धति के रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए। तन्त्रयुक्ति शास्त्र के विभिन्न स्थानों, अध्यायों, प्रकरणों तथा श्लोकों के अन्तर्निहित सम्बन्ध को उद्घाटित करती है और इस प्रकार शास्त्रीय ज्ञान को केवल अतीत की विरासत न बनाकर कालातीत बौद्धिक संसाधन में रूपान्तरित करने की सम्भावना प्रस्तुत करती है।

चयनित ग्रन्थसूची

1. अग्निवेश. चरकसंहिता. दृढबल-सम्पूरित, चक्रपाणिदत्तकृत आयुर्वेददीपिका भाष्य सहित.
2. अरुणदत्त. सर्वाङ्गसुन्दरी. वाग्भटकृत अष्टाङ्गहृदय पर रचित टीका.
3. इन्दु. शशिलेखा. वाग्भटकृत अष्टाङ्गसंग्रह पर रचित टीका.
4. चक्रपाणिदत्त. आयुर्वेददीपिका. चरकसंहिता पर रचित टीका.
5. दल्हन. निबन्धसंग्रह. सुश्रुतसंहिता पर रचित टीका.
6. गङ्गाधर. जल्पकल्पतरु. चरकसंहिता पर रचित टीका.
7. वाग्भट. अष्टाङ्गसंग्रह. इन्दुकृत शशिलेखा भाष्य सहित.
8. वाग्भट. अष्टाङ्गहृदय. अरुणदत्तकृत सर्वाङ्गसुन्दरी भाष्य सहित.
9. सुश्रुत. सुश्रुतसंहिता. दल्हनकृत निबन्धसंग्रह भाष्य सहित.
10. Sivajothy, S. *Identification and Interpretation of Tantrayukti in Charaka Samhita*. शोध-प्रस्तुति, PPT.

भविष्य की शिक्षा का पुनर्निर्माण : वैश्विक अपेक्षाएँ एवं समकालीन विमर्श

डॉ. स्मिता सिंह*

ssmitasingh@rediffmail.com

सारांश

इस आलेख को विभिन्न स्रोतों से संकलित तथ्यों के आधार पर, समालोचनात्मक दृष्टि से संरचित किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में समकालीन तकनीकी विकास को ध्यान में रखकर, वैश्विक अपेक्षाओं का विश्लेषण करते हुए, वैश्वीकरण से प्रभावित भविष्य की शिक्षा-व्यवस्था को समझने का प्रयास किया गया है। वैश्विक स्तर पर शिक्षा, साहित्य, समाज और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। आज डिजिटल युग और वैश्वीकरण के दौर में इन चारों क्षेत्रों में एक ओर जहाँ अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं, वहीं अनेक चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। आज आवश्यकता है कि हम तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण को अपनाते हुए अपनी मूल संस्कृतियों, नैतिक मूल्यों और उत्कृष्ट साहित्य को संजोकर रखें, ताकि एक समतावादी और प्रबुद्ध वैश्विक समाज का निर्माण हो सके।

पाश्चात्य संस्कृति और उपभोक्तावाद के प्रभाव से स्थानीय बोलियाँ, लोक-कलाएँ और पारंपरिक मूल्य विलुप्त होने की कगार पर हैं। शिक्षा और साहित्य तक सभी की समान पहुँच न होना, विशेषकर ग्रामीण और अविकसित क्षेत्रों में, एक बड़ी बाधा है। बाजारवाद के दबाव में साहित्य की मौलिकता और सामाजिक सरोकार प्रभावित हो रहे हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में नैतिक और मानवीय मूल्यों की अपेक्षा केवल व्यावसायिक कौशल पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है। प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के साथ, विशिष्ट व्यावसायिक ज्ञान अप्रचलित हो सकता है। अब ध्यान निरंतर कौशल विकास, मॉड्यूलर कार्यक्रमों और जीवन भर प्राप्त होने वाले प्रमाणपत्रों पर केंद्रित हो रहा है।

आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने के लिए व्यक्तिगत वित्त, उद्यमिता और वैश्विक नागरिकता की अत्यधिक मांग है। मानकीकृत परीक्षण के बजाय विश्लेषणात्मक कौशल, डिजिटल साक्षरता और व्यावहारिक क्षमताओं को प्राथमिकता दी जाती है। प्रौद्योगिकी और ज्ञान के तेजी से बदलते परिदृश्य में, शिक्षा को एक निरंतर प्रक्रिया माना जाता है। छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने पूरे जीवनकाल में नए कौशल सीखने और खुद को अपग्रेड करने के लिए तत्पर रहें। भविष्य की शिक्षा से वैश्विक अपेक्षा यह है कि मानकीकृत, रटने वाली शिक्षा से हटकर लचीली, आजीवन, और अत्यधिक व्यक्तिगत शिक्षा की ओर बदलाव हो। दुनिया को ऐसी शिक्षा प्रणालियों की आवश्यकता है जो अकादमिक सिद्धांत और वास्तविक दुनिया में इसके अनुप्रयोग के बीच की खाई को पाट सकें और स्थिर सामग्री की तुलना में भविष्य के लिए तैयार कौशल को प्राथमिकता दें।

मुख्यशब्द :

वैश्विक अपेक्षाएँ, भविष्य की शिक्षा, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति।

प्रस्तावना

वैश्विक स्तर पर शिक्षा, साहित्य, समाज और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। आज डिजिटल युग और वैश्वीकरण के दौर में इन चारों क्षेत्रों में एक ओर जहाँ अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं, वहीं अनेक चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। पाश्चात्य संस्कृति और उपभोक्तावाद के प्रभाव से स्थानीय बोलियाँ, लोक-कलाएँ और पारंपरिक मूल्य विलुप्त होने की कगार पर हैं।

* सहयुक्त आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय, बस्ती

शिक्षा और साहित्य तक सभी की समान पहुँच न होना, विशेषकर ग्रामीण और अविकसित क्षेत्रों में, एक बड़ी बाधा है। बाज़ारवाद के दबाव में साहित्य की मौलिकता और सामाजिक सरोकार प्रभावित हो रहे हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में नैतिक और मानवीय मूल्यों की अपेक्षा केवल व्यावसायिक कौशल पर अधिक जोर दिया जा रहा है।

इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों और विचारों का आदान-प्रदान आसान हो गया है। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के ज़रिए क्षेत्रीय साहित्य वैश्विक पाठकों तक पहुँच रहा है, जिसमें अनुवाद तकनीक बड़ी भूमिका निभा रही है। यूनेस्को जैसी संस्थाओं के प्रयासों से दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन कोर्सेस के ज़रिए ज्ञान की सीमाएं टूटी हैं। साहित्य और कला के माध्यम से देशों के बीच आपसी समझ और भाईचारे को बढ़ावा मिल रहा है। "स्थानीय सोच, वैश्विक पहुँच" के सिद्धांत के साथ साहित्य और संस्कृति का नया रूप उभर रहा है, जो अपनी जड़ों से जुड़कर विश्व मंच पर पहचान बना रहा है।

वैश्विक चुनौतियों के समाधान में साहित्य और सामाजिक जागरूकता समाज को एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। नई शिक्षा नीतियों और तकनीकी विकास से मातृभाषाओं में उच्च शिक्षा और अनुसंधान के द्वार खुले हैं, जिससे भाषाई विविधता संरक्षित हो रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण को अपनाते हुए अपनी मूल संस्कृतियों, नैतिक मूल्यों और उत्कृष्ट साहित्य को संजोकर रखें, ताकि एक समतावादी और प्रबुद्ध वैश्विक समाज का निर्माण हो सके।

वैश्विक अपेक्षाएं

समकालीन विश्व की अपेक्षाओं में आज व्यक्तियों पर पड़ने वाले सामाजिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत दबाव शामिल हैं। इनमें निरंतर डिजिटल कनेक्टिविटी का सामना करना, कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखना, तीव्र तकनीकी प्रगति के अनुकूल होना और सतत विकास में योगदान देना शामिल है। इन आधुनिक दबावों को संतुलित करना व्यक्तिगत कल्याण को बनाए रखने की कुंजी है। इन मांगों को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए प्रमुख क्षेत्रों में कई मूलभूत आधुनिक अपेक्षाओं को पूरा करना आवश्यक है। तेजी से हो रहे तकनीकी बदलाव और एआई के एकीकरण के लिए पेशेवरों को लगातार अपने कौशल को निखारने और नई कार्यप्रणालियों के अनुकूल होने की आवश्यकता होती है। पारंपरिक 9 से 5 का समय बदल गया है; अब लचीली कार्य व्यवस्था, दूरस्थ सहयोग और केवल काम के घंटों के बजाय परिणाम-उन्मुख नतीजों की अपेक्षा बढ़ रही है।

आज के वैश्वीकृत कार्यबल में भावनात्मक बुद्धिमत्ता, जटिल समस्या-समाधान और अंतर-सांस्कृतिक सहयोग को उच्च प्राथमिकता दी जाती है। व्यक्तियों से यह मूलभूत अपेक्षा की जाती है कि वे राजनीतिक रूप से जागरूक हों, विविधता का समर्थन करें और मानवाधिकारों की वकालत करें। सतत जीवनशैली अब कोई विकल्प नहीं रह गई है। लोगों से पर्यावरण के अनुकूल विकल्प चुनने, कार्बन उत्सर्जन कम करने और हरित पहलों का समर्थन करने की अपेक्षा की जाती है। सोशल मीडिया के साथ सीमाएं निर्धारित करना और "बर्नआउट" से बचने के लिए स्क्रीन टाइम का प्रबंधन करना एक प्रमुख समकालीन चुनौती है। एक सांस्कृतिक बदलाव आ रहा है जिसमें लोगों से अपेक्षा की जाती है कि वे स्वयं की देखभाल को प्राथमिकता दें, मानसिक स्वास्थ्य के बारे में चर्चा को सामान्य बनाएं और पारंपरिक "भागदौड़ भरी जीवनशैली" के बजाय संतुलन की तलाश करें।

शिक्षा से वैश्विक अपेक्षाएं

विश्व को शैक्षणिक संस्थानों से यह अपेक्षा है कि वे स्थिरता के लिए आदर्श के रूप में कार्य करें और वैश्विक स्तर पर व्याप्त चुनौतियों का समाधान करें। दुनिया भर के पाठ्यक्रम पारिस्थितिक जागरूकता, जलवायु विज्ञान और सतत विकास सिखाने के लिए अनुकूलित हो रहे हैं। एक मूलभूत वैश्विक लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि पर्यावरणीय आपदाओं, संघर्षों या आर्थिक बाधाओं के बावजूद भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच हो।

शिक्षा से वैश्विक अपेक्षाएं हैं कि स्थिरता के लिए आदर्श के रूप में कार्य करें और वैश्विक स्तर पर व्याप्त चुनौतियों का समाधान करें। छात्रों को 21वीं सदी की चुनौतियों का सामना करने, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनने और एक जिम्मेदार वैश्विक नागरिक के रूप में विकसित होने के लिए तैयार करें। वैश्विक मंच पर शिक्षा से यह अपेक्षा है कि वह नेतृत्व

क्षमता, जोखिम लेने की क्षमता और व्यावसायिक दृष्टिकोण का निर्माण करे। छात्रों में जलवायु परिवर्तन, सतत उपभोग और पर्यावरण संरक्षण के प्रति समझ विकसित करे।

इसका उद्देश्य भावी पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को सुरक्षित रखना है। विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण और नवाचार को वैश्विक स्तर पर सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। पारंपरिक रटन प्रणाली से हटकर अब **व्यावहारिक, तकनीकी और समस्या-समाधान कौशल** पर जोर दिया जा रहा है। इसमें कोडिंग, डेटा एनालिटिक्स, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डिजिटल साक्षरता शामिल हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था में रोजगार मांगने वालों के बजाय रोजगार देने वाले तैयार करने की मांग है।

भविष्य की शिक्षा

शिक्षा के अत्यधिक वैयक्तिक होने की उम्मीद है, जो व्यक्तिगत सीखने की गति और करियर पथ को पूरा करेगी। वर्चुअल रियलिटी से कक्षाओं को इंटरैक्टिव अनुभवों में बदलने की उम्मीद है। छात्रों की समझ को वास्तविक समय में ट्रैक करने और जहां जरूरत हो वहां लक्षित सहायता प्रदान करने के लिए अनुकूली शिक्षण प्लेटफॉर्म और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) का उपयोग किया जाता है। शैक्षणिक संस्थान सहानुभूति, लचीलापन, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और प्रभावी अंतर-सांस्कृतिक संचार विकसित करने पर जोर देते हैं। छात्रों से जटिल जानकारी का मूल्यांकन करने और एआई और डिजिटल मीडिया द्वारा उत्पन्न नैतिक दुविधाओं से निपटने की अपेक्षा बढ़ती जा रही है। छात्रों से यह अपेक्षा है कि वे अपने पूरे जीवनकाल में नए कौशल सीखने और खुद को अपग्रेड करने के लिए तत्पर रहें।

भविष्य की शिक्षा **तकनीक, व्यक्तिगत आवश्यकताओं और कौशल विकास** पर केंद्रित होगी। यह पारंपरिक रटने की प्रणाली से हटकर आलोचनात्मक सोच, व्यावहारिक ज्ञान और जीवनभर सीखने के दृष्टिकोण को अपना रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता छात्रों की सीखने की गति और रुचि को समझकर उनके अनुसार पाठ्यक्रम तैयार करेगी। किताबों से पढ़ने के बजाय, छात्र वर्चुअल क्लासरूम के माध्यम से अंतरिक्ष या समुद्र की गहराई का लाइव अनुभव कर सकेंगे। डिग्रियों से ज्यादा जोर 'कोडिंग', 'डेटा एनालिटिक्स', 'क्रिटिकल थिंकिंग' और 'मानव-मूल्यों' पर होगा।

भौगोलिक बाधाएं खत्म होंगी और दुनिया के बेहतरीन संस्थानों की शिक्षा घर बैठे उपलब्ध होगी। एक बार शिक्षा प्राप्त कर लेने का युग समाप्त हो रहा है। भविष्य में तेजी से बदलते तकनीकी माहौल में लोगों को समय-समय पर नए कौशल सीखने होंगे। सभी छात्रों तक इंटरनेट और आधुनिक उपकरणों की समान पहुँच सुनिश्चित करना। शिक्षकों को केवल ज्ञान देने वाले के बजाय 'मार्गदर्शक' की भूमिका निभानी होगी। प्रौद्योगिकी और ज्ञान के तेजी से बदलते परिदृश्य में, शिक्षा को एक निरंतर प्रक्रिया माना जाता है। वैश्वीकरण के इस युग में शिक्षा का उद्देश्य विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और विचारधाराओं के प्रति सम्मान और सहिष्णुता की भावना पैदा करना है। यह किसी भी प्रकार के भेदभाव को मिटाकर समान अवसर प्रदान करने पर केंद्रित है। छात्रों को केवल जानकारी देने के बजाय, उन्हें यह सिखाना आवश्यक है कि **क्या सोचना है** के बजाय **कैसे सोचना है**।

निष्कर्ष

वैश्विक स्तर पर शिक्षा, साहित्य, समाज और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। समकालीन विश्व की अपेक्षाओं में आज व्यक्तियों पर पड़ने वाले सामाजिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत दबाव शामिल हैं। इनमें निरंतर डिजिटल कनेक्टिविटी का सामना करना, कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखना, तीव्र तकनीकी प्रगति के अनुकूल होना और सतत विकास में योगदान देना शामिल है। छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने पूरे जीवनकाल में नए कौशल सीखने और खुद को अपग्रेड करने के लिए तत्पर रहें। वैश्विक अर्थव्यवस्था में रोजगार मांगने वालों के बजाय रोजगार देने वाले तैयार करने की मांग है। आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने के लिए व्यक्तिगत वित्त, उद्यमिता और वैश्विक नागरिकता की मांग है।

शिक्षा से यह अपेक्षा है कि वह नेतृत्व क्षमता, जोखिम लेने की क्षमता और व्यावसायिक दृष्टिकोण का निर्माण करे। भविष्य की शिक्षा से वैश्विक अपेक्षा यह है कि मानकीकृत, रटने वाली शिक्षा से हटकर लचीली, आजीवन और अत्यधिक व्यक्तिगत शिक्षा की ओर बदलाव हो। भविष्य की शिक्षा **तकनीक, व्यक्तिगत आवश्यकताओं और कौशल विकास** पर केंद्रित होगी। यह पारंपरिक रटने की प्रणाली से हटकर आलोचनात्मक सोच, व्यावहारिक ज्ञान और जीवनभर सीखने के

दृष्टिकोण को अपना रही है। दुनिया को ऐसी शिक्षा प्रणालियों की आवश्यकता है जो अकादमिक सिद्धांत और वास्तविक दुनिया में इसके अनुप्रयोग के बीच की खाई को पाट सकें और स्थिर सामग्री की तुलना में भविष्य के लिए तैयार कौशल को प्राथमिकता दें। आज डिजिटल युग और वैश्वीकरण के दौर में एक ओर जहाँ अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं, वहीं अनेक चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। आज आवश्यकता है कि हम तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण को अपनाते हुए अपनी मूल संस्कृतियों, नैतिक मूल्यों और उत्कृष्ट साहित्य को संजोकर रखें, ताकि एक समतावादी और प्रबुद्ध वैश्विक समाज का निर्माण हो सके।

संदर्भ / References

1. De', R., Pandey, N., & Pal, A. (2020). Impact of digital surge during iOS-19 pandemic: A viewpoint on research and practice. *International Journal of Information Management*, 55, 102171. Retrieved from <https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC8725858/>
2. ETHRWorld. (2021, July 21). Learning & Development: How tech and trends in energy sector are bringing a paradigm shift in employee training. ETHRWorld from The Economic Times. Retrieved from <https://hr.economictimes.indiatimes.com/news/workplace-4-0/learning-and-development/learning-development-how-tech-and-trends-in-energy-sector-are-bringing-a-paradigm-shift-in-employee-training/84613766>
3. Girl Power Talk. Remote jobs: Trends, insights, and statistics. Retrieved from <https://girlpowertalk.com/remote-jobs-trends-insights-statistics/>
4. Global Influences. Future of work: Workplaces 2030. Retrieved from <https://global-influences.com/future-of-work-workplaces-2030-2/>
5. Ranjan, R. Work-life balance in the 21st century: Myth, mirage or reality. Rajeevelt. Retrieved from <https://www.rajeevelt.com/work-life-balance-in-the-21st-century-myth-mirage-reality/rajeev-ranjan/>
6. दृष्टि आई.ए.एस. (2023). भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली का भविष्य. Daily News Editorials. Retrieved from <https://www.drishtias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/future-of-indian-higher-education-system>
7. टेस्टबुक. उच्च शिक्षा: कुछ चिंताएँ (Higher Education: Some Concerns). UGC NET Paper 1. Retrieved from <https://testbook.com/hi/ugc-net-paper-1/higher-education-some-concerns>

From Iqta to Jagir: Continuity and Change in the Military Organization of the Delhi Sultanate and the Mughal Empire

NAVEEN*

navyjattu0@gmail.com

Abstract:

The shift from iqta system of Delhi Sultanate to jagir system of Mughals is a significant change in military organisation of medieval India. In this paper, the similarities and differences between these two systems have been discussed and the manner in which the Mughals employed and modified some of the practices they inherited from the Delhi Sultanate have been studied. Under the Delhi Sultanate, the iqta system was adopted for assigning revenue to officials, in exchange for administrative and military duties. The iqtadars were to provide for soldiers and to assist the Sultan in the administration of his authority in their respective areas. The Mughals further enhanced this practice by introducing the jagir system and the mansabdari system with which they gave revenue assignments. The rank, pay, and military duties of an officer became more closely tied during the Mughal reign. The study also looks at the transfer of iqtadars and jagirdars, the control of the central government over these officials, and the role of revenue assignments in maintaining the army. It claims that Mughals' system was not a new one, nor it was just a continuation of the Sultanate system. Rather, some of the older practices were adopted and adapted by the Mughals, to suit their larger empire. Hence continuity and change in military organization and administration of medieval India is evident in the change from iqta to jagir.

Keywords:

Iqta, Jagir, Military Administration, State Administration, Revenue Assignments, Medieval India.

Introduction:

One of the most essential aspects of the medieval Indian political system was the military. Large and diverse territories were ruled by the Delhi Sultanate and Mughal Empire. Both states experienced uprisings inside, enemies on the outside, and the challenge of governing far-flung territories. They thus required powerful armies, and organization for pay, supply and control. The military then became closely linked to administration, revenues, politics, and the ruler-military officer relations. The study of medieval warfare thus needs to be studied not only in terms of battle and weaponry, but also administration and the institutions which supplied the army.

* Research Scholar, Department of History, Jyoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur

One of the important institutions that linked revenue to state services was the iqta. It emerged in the broader Islamic political system and took various forms at various times. The concept of iqta implies the distribution of land or revenues to an individual by a ruler for services (Khoubizi 7). The institution was not adjusted and varied based on political and economic conditions. Later it became associated more and more with military loans and the assistance of soldiers (Khoubizi 10). The changes demonstrate that the iqta system was a flexible system capable of meeting the needs of the state.

There was also an important economic function for the iqta. Where it was not possible for rulers to pay cash to soldiers, land could be used to pay for their needs. Thus, the agricultural resources could be linked to military service (Khoubizi 7). The system thus established an important connection between the rural areas, state revenues and the army. This connection was especially significant for medieval states which required large armies to be in place for extended periods.

The traditions were formed by the Delhi Sultanate based on their political environment. The Sultan was obliged to keep an army that was capable of dealing with Mongol attacks, internal rebellions and campaigns of territorial expansion. Alauddin Khalji is a good example of this process. Throughout the Mongol's attacks, rebellions and the desire to expand, Bashir notes, Alauddin was forced to reorganize the military system (Bashir 2). His reforms demonstrate that the success of the army was related to broader administrative structures.

The military reforms introduced by Alauddin were: establishment of a standing army, regular payment to the soldiers, branding of horses, fortification, intelligence service and better organization of supplies. In this way, these reforms gave the Sultan the power to exercise direct control over his army (Bashir 3–4). This was especially significant in the advent of horse branding as it enabled the government to keep track of military horses and minimize false claims by soldiers and commanders (Bashir 3). The construction of forts and the building up of defense also served to safeguard key areas from threats from outside (Bashir 4).

The military organisation was also associated with the issue of political leadership. In the context of medieval Indian political thought, Syros demonstrates that one criterion by which rulers were evaluated was their capacity to keep order and to control the state's resources. The case of Muhammad bin Tughluq illustrates how that might lead to significant financial and administrative issues if not managed properly (Syros 9). The proposed expedition towards Khorasan ultimately placed a strain on the state and it was a lesson in the need for adequate resources and planning of military campaigns (Syros 16).

Military service and political authority was also a factor at the social level. The service, loyalty, dependence and political obligation between rulers and warrior groups are described by Daud Ali (8). Warrior groups might seek to rise in political status by serving in the armed forces, and rulers might be able to reward and patronize these groups to keep them in check. The connection between military service and political status was an important aspect of political society in the Middle Ages (Ali 13).

The Mughals inherited this political and military background and restructured it in line with their empire's requirements. The jagir was made an integral part of Mughal administration. The same idea of taxation of services to the state was followed, and it was closely linked to the mansabdari system.

The mansab, or rank, was given to the Mughal officer and his revenue allocation was linked to his rank and service. This made the relationships between military rank, administrative position and revenue more systematic.

The Mughals also adopted different types of jagirs. There were some who were linked with the officers' salaries, and some that were linked to military and political issues. The Watan jagir is an example of this, where local rulers are granted some local rights and also accept the authority of the Mughal emperor. These proved useful in the Mughals' efforts to integrate the region's elites into their system rather than by direct military rule.

Military strategy also evolved from the organization of soldiers. Geography, intelligence, leadership and the army's morale are important factors in medieval warfare, as Sarkar points out (Sarkar 243–44). Knowledge of opposing troops and political landscape may impact the outcome of armed campaigns. Networks of information, in addition to military power, were thus essential to the Mughal commanders (Sarkar 255). Morale, too, was a factor, as was leadership. For instance, Babur's speech prior to the Battle of Khanwa illustrates how a ruler could invoke the concepts of loyalty, bravery and dignity to inspire the fighting spirit of his soldiers (Sarkar 248).

The question that is raised here is important historically - how much did the Mughals carry forward the military system of the Delhi Sultanate and how much did they develop new institutions? A comparison of the movement from iqta to jagir is helpful to analyse it. The use of revenue assignments was continuous for the state service, and there was a similar need to control the military elite. Concurrently, Mughals made significant reforms, such as linking jagirs to the mansabdari system and developing a more ordered system of government.

This paper thus explores the continuity and change of the system of iqta to jagir in medieval India. It examines the link between revenue assignments, military service, administrative control, political loyalty and military strategy. It asserts that the Mughal system was not a completely new system but was not just a continuation of the Sultanate system either. Rather, the Mughals used existing institutions and remodeled them to suit the needs of a larger and more centralized empire.

Patterns of Military Organisation from Sultanate to Mughal Empire:

The iqta was an integral part of the military and administrative structure of the Delhi Sultanate. It made the duty of collecting taxes and serving officers and soldiers all part of the same job. The meaning shifted depending on the political and economic situation in India and the institution had been developed in the wider Islamic world prior to its use in India. The iqta was a land or revenue assignment and its development was linked to the shifting requirements of rulers and military groups (Khoubizi 7). The system was not, therefore, a set institution. It might be modified and modified according to the demand from the state (Khoubizi 10).

It was especially helpful for rulers in the Middle Ages. A large army needed constant supplies for soldiers, horses, weapons, food and more. One means to meet these requirements was through revenue assignments. The iqta thus established a connection between the tools of agricultural production in the rural areas and the needs for military service of the state. This relationship became significant for the Delhi Sultanate as the rulers of the sultanate had to keep armies in a vast area.

Political and military difficulties led to the further development of the military structure of the Delhi Sultanate. Alauddin Khalji's reign is particularly important in this regard. He was attacked by the Mongols repeatedly, revolted against within his own kingdom, and clashed with neighboring kingdoms. He also wanted to enlarge the territory of the Sultanate. These situations called for a strong and organized army (Bashir 2). Alauddin, therefore, instituted a number of military reforms to bolster the military and expand the Sultan's power.

He was a great reformer for establishing a standing army. The soldiers were directly linked to the central government and they were paid periodically. This lessened the reliance of the Sultan on strong regional military factions and enabled him to exercise a better command over the army (Bashir 3). There was also the imposition of strict discipline. The soldiers were supposed to be loyal to their superiors and the Sultan and if they disobeyed they would be punished. In this way, military discipline became an important part of the centralized government (Bashir 3).

Another important reform was the *dagh*, the horse-branding system. The horse was an integral component of medieval warfare, and good horses were the critical element to ensuring an efficient army. The branding system made it easier for the government to identify horses and to check the military resources that soldiers owned. It also decreased the chances of false claims and corruption of military officers (Bashir 3). Therefore, Alauddin's military system included administrative procedures and strategies for managing military supplies.

The other crucial aspect of the Sultanate's military policy was fortifications. Given the repeated Mongol attacks, the defense of critical territories was all the more important. Forts could safely defend strategic areas and serve as secure areas for providing shelter for soldiers and supplies. Therefore, Alauddin used a thorough field army and defensive preparations (Bashir 2-3). This can be seen in his military policy, which illustrates that to fight wars in the Middle Ages, you needed to plan offense as well as defense.

It was also important for the military supply and transport. An army, without food, money, horses, weapons, and other such materials, could not hold up for long. The situation grew worse with the armies operating too far from Delhi. Bashir points to the importance of logistics and transportation in Alauddin's military campaigns (Bashir 2). This reflects the importance of administrative preparation in addition to the ability to fight well on the battlefield.

The story of Muhammad bin Tughluq is also a good example of the significance of administration in military organization. Muhammad bin Tughluq was an ambitious military ruler with the desire to expand the strength of the Sultanate. But some of his campaigns were a strain on the resources of the state. The military policies have helped to cause economic problems and undermined the bases of the Sultanate, explains Syros (Syros 9). A significant one of his proposed missions is towards Khorasan. The army was kept on for a long time, and the expedition was scrapped, resulting in a significant financial strain (Syros 16). This indicates that the army was a powerful force, which needed careful financial and administrative planning.

The military was also tightly linked with the power of the warrior bands in the society and politics. Daud Ali describes the relationship between rulers and warrior groups as a relationship of servitude, loyalty, dependence and political obligations (Ali 8). Military service might be a means to political status, and rewards and patronage might be a way for rulers to keep military followers loyal. There

was significance in such relationships as powerful military groups could gain political control when the central authority was weak (Ali 6).

The issue of the control of the military elites persisted during the Mughal period. The Mughals adopted the idea of collecting revenue through military service, but modified the structure of its government. A new element in this system was the jagir. The jagir, as with the previous iqta, was linked to service for the state. The Mughals, however, arrived at this relationship by the Mansabdari system.

The mansab is a rank in the administration of the Mughals. This rank was linked with his military service and the jagir with the income linked to his service. This had the effect of placing military officers closer to the government, administration and money. The Mughal system thus was a continuity and a change. The principle of revenue assignment was continued, but was now more systematic with respect to the position of the emperor.

The Mughal rulers also relied on the system of jagir to govern their vast empire with its multitudes of people. Political groups in the region may be brought into the imperial system. The local rulers would be allowed some privileges and would accept the authority of the Mughals. This helped the Mughals not to have to trust in the direct military control, and also helped them to work with the existing political elites.

The Mughal system also evolved its own system of military intelligence and strategic planning. Sarkar makes it clear that military triumphs were based on intelligence regarding enemy, geographical knowledge, leadership and soldiers' morale (Sarkar 243–44). The Mughal commanders gathered details regarding the enemy, his movements, resources and political divisions. This can be gleaned from the spies and deserters, and others (Sarkar 255).

This change in military organisation is a significant development. The preservation of a large number of soldiers was no longer the only measure of military power. Information and planning also were crucial. If a commander wanted to start a campaign, he would have to know the enemy's forces, their capabilities, and the enemy's vulnerabilities. Thus the Mughal military system took a blend of man power and intelligence and strategy.

There was also an issue of morale among the troops. Sarkar speaks about the importance of leadership and speeches in boosting the morale of soldiers. Babur's speech before the Battle of Khanwa is an instance of how a king could rally the citizens to their sense of courage, loyalty, honour and commitment before a great war (Sarkar 248). Military leadership thus encompassed organization and motivational skills of soldiers.

From the comparison between the Delhi Sultanate and Mughal Empire, one can deduce that some significant characteristics remained similar during both the sultanate and Mughal era. Cavalry remained important. There was still an association between employment and military service. Rulers still relied on military elites, and sought to curb their development into political forces independent of the ruler. Other factors that continued to be significant were also intelligence, discipline, supplies and strong leadership.

Meanwhile on the other side of the coin, significant changes took place in the Mughal system. The jagir was now associated with the mansab. Military officials were put into a more structured

imperial system. Revenue assignments would then be tied to both formal rank and administrative position as well as to military service. The Mughals also devised various methods by which the regional elites could be integrated into the system of the empire.

The change from iqta to jagir must, therefore, not be seen as an abrupt change between the Sultanate and Mughal periods. The Mughals received a number of pre-existing traditions from which they adapted to meet the requirements of their empire. The biggest departure from the earlier system was the establishment of a more systematic linkage between military service, administrative status, income, and imperial power. The Mughal Empire's military structure was therefore structured to a certain extent upon the previous tradition of the Sultanates and new administration and strategy were also added.

Conclusion:

The transformation of iqta to jagir is a significant event in the evolution of the military system in medieval India. They differed in significant political and administrative transformations but also shared a key principle – provision of services for the state through revenue resources.

The Delhi sultanate established important means of maintaining and controlling their soldiers. From its experience, the relevance of standing armies, cavalry, military discipline, fortifications, supply, communication, and central control. These institutions were used to help the Sultan deal with external threats as well as political challenges within his kingdom.

These traditions were passed on to the Mughals, but were expanded and scaled up. The mansab and the jagir became so intertwined that the relationship between the military and the revenue and service of the emperor became more complex. The Mughals also instituted various varieties of jagirs and employed them to include political groups from all around the region within the empire.

From this comparison, it can be concluded that the military system of the Mughals was not a total departure from the Delhi Sultanate but was not just an extension of it either. The Mughals took over important institutional concepts and made them its own. Thus, the replacement of iqta with jagir may be seen as an ongoing process of continuity, adaptation and administrative shifts.

Bibliography:

Primary Sources:

Abu'l-Fazl ibn Mubarak. *The Ain-i Akbari*. Translated by H. Blochmann and H. S. Jarrett, 2 vols., Asiatic Society of Bengal, 1873–1894.

Abu'l-Fazl ibn Mubarak. *The Akbarnama*. Translated by H. Beveridge, 3 vols., Asiatic Society, 1897–1939.

Babur. *The Baburnama: Memoirs of Babur, Prince and Emperor*. Translated by Wheeler M. Thackston, Oxford UP, 1996.

Manucci, Niccolao. *Storia do Mogor; or, Mogul India, 1653–1708*. Translated by William Irvine, 4 vols., John Murray, 1907–1908.

Secondary Sources:

- Ali, Daud. *Courtly Culture and Political Life in Early Medieval India*. Cambridge UP, 2004.
- Ali, M. Athar. "Organization of the Nobility: Mansab, Pay, and Conditions of Service." *Warfare and Weaponry in South Asia, 1000–1800*, edited by Jos Gommans and Dirk H. A. Kolff, Oxford UP, 2001, pp. 232–274.
- Bashir, Syed Aasif. "Military Transformations in Medieval India—A Case Study of Khilji Dynasty." *Historical Research: Journal of History and Archaeology*, vol. 1, no. 4, 2023.
- Chandra, Satish. *Medieval India: From Sultanat to the Mughals. Part One: Delhi Sultanate, 1206–1526*. Har-Anand Publications, 2004.
- Chandra, Satish. *Medieval India: From Sultanat to the Mughals. Part Two: Mughal Empire, 1526–1740*. Har-Anand Publications, 2005.
- Gommans, Jos J. L. *Mughal Warfare: Indian Frontiers and Highroads to Empire, 1500–1700*. Routledge, 2002.
- Gommans, Jos J. L., and Dirk H. A. Kolff, editors. *Warfare and Weaponry in South Asia, 1000–1800*. Oxford UP, 2001.
- Irvine, William. *The Army of the Indian Moghuls: Its Organization and Administration*. Luzac & Co., 1903.
- Khan, Iqtidar Alam. *Gunpowder and Firearms: Warfare in Medieval India*. Oxford UP, 2004.
- Khoubizi, Wael. "The Concept of Iqtā'." 2025.
- Kolff, Dirk H. A. *Naukar, Rajput, and Sepoy: The Ethno-History of the Military Labour Market in Hindustan, 1450–1850*. Cambridge UP, 1990.
- Kolff, Dirk H. A. "The Polity and the Peasantry." *Warfare and Weaponry in South Asia, 1000–1800*, edited by Jos Gommans and Dirk H. A. Kolff, Oxford UP, 2001, pp. 202–231.
- Orr, W. G. "Armed Religious Ascetics in Northern India." *Warfare and Weaponry in South Asia, 1000–1800*, edited by Jos Gommans and Dirk H. A. Kolff, Oxford UP, 2001, pp. 185–201.
- Pinch, William R. *Warrior Ascetics and Indian Empires*. Cambridge UP, 2006.
- Roy, Kaushik. *Military Manpower, Armies and Warfare in South Asia*. Routledge, 2015.
- Sarkar, Jadunath. *Military History of India*. Orient Longmans, 1960.
- Syros, Vasileios. "State Failure and Successful Leadership in Medieval India." *Studies in History*, vol. 37, no. 1, 2021, pp. 7–25.
- Yadava, B. N. S. "Chivalry and Warfare." *Warfare and Weaponry in South Asia, 1000–1800*, edited by Jos Gommans and Dirk H. A. Kolff, Oxford UP, 2001, pp. 66–98.

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री जीवन : अशिक्षा, पुरुष वर्चस्व और सामाजिक यथार्थ का अध्ययन

डॉ. वर्षा वर्मा*
शोध निर्देशिका

रीना राय†
शोधार्थी

शोध-सार

हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन और विशेष रूप से ग्रामीण स्त्री की सामाजिक स्थिति को यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत करने वाली समकालीन लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना, पारिवारिक संबंध, आर्थिक विषमता, अशिक्षा, रूढ़िवादी मान्यताएँ तथा पुरुष-प्रधान व्यवस्था के बीच स्त्री जीवन की जटिलताओं को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया गया है। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल संवेदना की पात्र नहीं है, बल्कि वह सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष करने वाली चेतनशील मनुष्य के रूप में भी सामने आती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमुख उद्देश्य मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में बुंदेलखंड जैसे ग्रामीण परिवेश में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना है। विशेष रूप से स्त्री की अशिक्षा, शिक्षा के सीमित अवसर, आर्थिक निर्भरता, पुरुष वर्चस्व, सामाजिक रूढ़ियों तथा पारिवारिक नियंत्रण का विश्लेषण किया गया है। 'चाक', 'इदन्नमम', 'झूला नट' तथा 'अल्मा कबूतरी' जैसे उपन्यासों के स्त्री पात्रों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण समाज में स्त्री का जीवन किन परिस्थितियों से प्रभावित होता है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मैत्रेयी पुष्पा ग्रामीण स्त्री को एक जटिल सामाजिक संरचना के भीतर प्रस्तुत करती हैं। स्त्री की स्थिति केवल व्यक्तिगत कारणों से दयनीय नहीं होती, बल्कि अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक रूढ़ियाँ, पितृसत्तात्मक सोच और पुरुष वर्चस्व जैसी अनेक परिस्थितियाँ मिलकर उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। इसके साथ ही उनकी रचनाओं में स्त्री के भीतर विकसित होती चेतना और प्रतिरोध की भावना भी दिखाई देती है।

मुख्य शब्द:

मैत्रेयी पुष्पा, ग्रामीण स्त्री, बुंदेलखंड, अशिक्षा, पुरुष वर्चस्व, नारी संवेदना, स्त्री संघर्ष, पितृसत्ता, सामाजिक यथार्थ

1. प्रस्तावना

साहित्य समाज के जीवन का संवेदनशील प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। किसी भी समाज की वास्तविक संरचना को समझने के लिए उसके स्त्री जीवन का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। भारतीय समाज में ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक संरचना लंबे समय तक परंपरा, रूढ़ियों, जातिगत व्यवस्था, आर्थिक असमानता और पुरुष-प्रधान सोच से प्रभावित रही है। इसका सबसे अधिक प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर पड़ा है। ग्रामीण स्त्री परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती है, लेकिन उसके योगदान को हमेशा समान रूप से सामाजिक सम्मान और निर्णय लेने के अधिकार में परिवर्तित

* सहायक प्रध्यापक, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, भिलाई दुर्ग, छत्तीसगढ़

† शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, भिलाई दुर्ग, छत्तीसगढ़
birendrarai7876@gmail.com

नहीं किया जाता। वह घरेलू कार्यों के साथ कृषि, पशुपालन तथा अन्य श्रम कार्यों में भी भाग लेती है, फिर भी परिवार और समाज में निर्णय लेने की उसकी स्वतंत्रता सीमित रहती है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा-साहित्य में विशेष रूप से ग्रामीण स्त्री जीवन को अपनी रचनात्मक दृष्टि का केंद्र बनाया है। उनके उपन्यासों में बुंदेलखंड का ग्रामीण परिवेश केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि वह कथा और पात्रों के व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाला सक्रिय सामाजिक तत्व है। उनके साहित्य में ग्रामीण स्त्री के जीवन में गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक रूढ़ियाँ, पारिवारिक दबाव और पुरुष वर्चस्व की उपस्थिति दिखाई देती है। लेकिन इसी परिस्थिति में स्त्री के भीतर प्रश्न करने, संघर्ष करने और अपने अस्तित्व को पहचानने की चेतना भी विकसित होती है।

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य ग्रामीण स्त्री जीवन के यथार्थ और उसके भीतर मौजूद परिवर्तन की संभावनाओं दोनों को सामने लाता है।

2. शोध समस्या

प्रस्तुत शोध की मूल समस्या ग्रामीण समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति और उसके जीवन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों से संबंधित है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री किस प्रकार पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था, अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता और रूढ़िवादी परंपराओं से प्रभावित होती है?

साथ ही यह भी विचारणीय है कि इन परिस्थितियों के बावजूद स्त्री के भीतर किस प्रकार चेतना और प्रतिरोध की भावना विकसित होती है।

3. शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र में आपके सिनॉप्सिस के द्वितीय उद्देश्य को मुख्य आधार बनाया गया है—

“बुंदेलखंड जैसे ग्रामीण परिवेश में स्त्रियों की दयनीय स्थिति, शिक्षा की कमी, अशिक्षा और पुरुष-प्रधान समाज के वर्चस्व को दिखाना।” इस मुख्य उद्देश्य के अंतर्गत निम्न बिंदुओं का अध्ययन किया गया है—

1. ग्रामीण स्त्री की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. स्त्री जीवन में अशिक्षा और शिक्षा की कमी के प्रभाव को समझना।
3. पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था का स्त्री जीवन पर प्रभाव देखना।
4. ग्रामीण स्त्री की आर्थिक निर्भरता का अध्ययन करना।
5. सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं की भूमिका को स्पष्ट करना।

4. शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन के लिए वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक शोध-पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के प्राथमिक स्रोत के रूप में मैत्रेयी पुष्पा के चयनित उपन्यासों को आधार बनाया गया है। विशेष रूप से ग्रामीण स्त्री जीवन से संबंधित प्रसंगों, पात्रों, सामाजिक परिस्थितियों और घटनाओं का अध्ययन किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के रूप में हिंदी साहित्य से संबंधित आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध आलेख और संदर्भ सामग्री का उपयोग किया गया है। अध्ययन में विषयवस्तु को निम्न प्रमुख आधारों पर विश्लेषित किया गया है—ग्रामीण सामाजिक परिवेश, स्त्री की शिक्षा एवं अशिक्षा, पुरुष वर्चस्व, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक रूढ़ियाँ, पारिवारिक नियंत्रण, स्त्री संघर्ष और चेतना।

5. बुंदेलखंड का ग्रामीण परिवेश और स्त्री जीवन

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की महत्वपूर्ण विशेषता उनका ग्रामीण परिवेश है। बुंदेलखंड का सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण उनके साहित्य में जीवंत रूप में उपस्थित होता है। ग्रामीण समाज में स्त्री का जीवन परिवार, खेत, घरेलू कार्य और सामाजिक परंपराओं से गहराई से जुड़ा होता है। वह परिवार के लिए निरंतर श्रम करती है, लेकिन उसके श्रम का मूल्यांकन हमेशा आर्थिक दृष्टि से नहीं किया जाता। ग्रामीण जीवन में स्त्री की भूमिका बहुआयामी है। वह घर संभालती है, बच्चों की देखभाल करती है, कृषि कार्य में सहयोग करती है, पशुओं की देखभाल करती है, परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने में योगदान देती है। इसके बावजूद निर्णय लेने की प्रक्रिया में उसकी भागीदारी सीमित रह सकती है।

मैत्रेयी पुष्पा इसी विरोधाभास को उजागर करती हैं कि जिस स्त्री का श्रम परिवार और समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक है, उसी स्त्री को सामाजिक निर्णयों में अपेक्षित स्वतंत्रता नहीं मिलती।

6. ग्रामीण स्त्री और अशिक्षा

ग्रामीण स्त्री की स्थिति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारणों में अशिक्षा महत्वपूर्ण है। शिक्षा का अभाव व्यक्ति को केवल ज्ञान से वंचित नहीं करता, बल्कि उसके अधिकारों और संभावनाओं की समझ को भी सीमित कर सकता है। मैत्रेयी पुष्पा के ग्रामीण परिवेश में स्त्री की शिक्षा कई सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होती दिखाई देती है। परिवार में कई बार लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि लड़कियों की शिक्षा को उतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता। इसके पीछे आर्थिक सीमाएँ, सामाजिक मान्यताएँ और पारंपरिक सोच जैसे कारण हो सकते हैं।

6.1 अशिक्षा का प्रभाव स्त्री के जीवन में अनेक स्तरों पर पड़ता है—

1. अधिकारों की सीमित जानकारी : शिक्षा के अभाव में स्त्री अपने कानूनी और सामाजिक अधिकारों से पूरी तरह परिचित नहीं हो पाती।
2. आत्मनिर्भरता में बाधा : शिक्षा रोजगार और कौशल के अवसरों से जुड़ती है। इसलिए अशिक्षा आर्थिक आत्मनिर्भरता को सीमित कर सकती है।
3. निर्णय क्षमता पर प्रभाव : शिक्षा व्यक्ति में तार्किक सोच और निर्णय क्षमता को विकसित करने में सहायक होती है। इसका अभाव स्त्री को दूसरों पर अधिक निर्भर बना सकता है।
4. सामाजिक रूढ़ियों का प्रभाव : शिक्षा के अभाव में पारंपरिक मान्यताओं को बिना प्रश्न किए स्वीकार करने की संभावना बढ़ सकती है।

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में अशिक्षा केवल कमी नहीं बल्कि सामाजिक संरचना से जुड़ी समस्या के रूप में सामने आती है।

7. पुरुष-प्रधान समाज और स्त्री की स्थिति

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में पुरुष वर्चस्व ग्रामीण समाज की महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में दिखाई देता है। पुरुष-प्रधान व्यवस्था में परिवार और समाज के महत्वपूर्ण निर्णयों पर पुरुषों का प्रभाव अधिक होता है। स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह सामाजिक परंपराओं और पारिवारिक नियमों का पालन करे। इस व्यवस्था का प्रभाव स्त्री के जीवन के अनेक क्षेत्रों पर पड़ता है—

विवाह का निर्णय, शिक्षा का अवसर, आर्थिक स्वतंत्रता, संपत्ति संबंधी अधिकार, सामाजिक गतिशीलता, व्यक्तिगत निर्णय, जीवनसाथी से संबंधित निर्णय मैत्रेयी पुष्पा की स्त्रियाँ इस व्यवस्था को केवल स्वीकार नहीं करतीं। वे कहीं प्रत्यक्ष रूप से तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से इसके विरुद्ध प्रश्न खड़े करती हैं।

‘चाक’ में ग्रामीण स्त्री का सामाजिक यथार्थ : ‘चाक’ मैत्रेयी पुष्पा का महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें ग्रामीण समाज और स्त्री जीवन की जटिल परिस्थितियाँ सामने आती हैं। सारंग का चरित्र इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वह सामाजिक परंपराओं और पुरुष वर्चस्व के बीच अपने अस्तित्व की तलाश करती है। सारंग के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण स्त्री केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं है। उसके भीतर सामाजिक परिस्थितियों को समझने और उनके विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता भी है। उसके जीवन में संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं है। उसके माध्यम से ग्रामीण समाज में स्त्री की स्थिति, पुरुष वर्चस्व और सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न उठता है।

‘इदन्नमम’ में ग्रामीण स्त्री और सामाजिक बंधन : ‘इदन्नमम’ की मंदाकिनी का जीवन भी सामाजिक परिस्थितियों और संघर्षों से जुड़ा है। उसके चरित्र के माध्यम से स्त्री की स्थिति के अनेक पक्ष सामने आते हैं। मंदाकिनी अपने आसपास की सामाजिक व्यवस्था को समझती है और परिस्थितियों से जूझने का प्रयास करती है। उसके जीवन में परिवार, समाज और आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव दिखाई देता है। यहाँ स्त्री को केवल सहनशील पात्र के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। वह परिस्थितियों पर विचार करती है और अपने जीवन को बदलने की कोशिश करती है। मंदाकिनी के चरित्र में यह बात विशेष रूप से दिखाई देती है कि संघर्ष चेतना को जन्म देता है और चेतना परिवर्तन की दिशा में ले जा सकती है।

‘झूला नट’ में स्त्री जीवन और सामाजिक रूढ़ियाँ : ‘झूला नट’ की शीलो ग्रामीण स्त्री के जीवन की जटिलताओं को सामने लाती है। उसके जीवन में पारिवारिक संबंध, सामाजिक मान्यताएँ और स्त्री की व्यक्तिगत इच्छाएँ आपस में टकराती दिखाई देती हैं। शीलो का चरित्र यह बताता है कि ग्रामीण स्त्री भले ही औपचारिक रूप से अधिक शिक्षित न हो, फिर भी वह अपने जीवन की परिस्थितियों को समझने की क्षमता रख सकती है। उसका आत्मसम्मान और अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण स्त्री की चेतना को सामने लाता है। इस प्रकार शीलो के माध्यम से लेखिका ग्रामीण स्त्री को केवल कमजोर और असहाय रूप में प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि उसमें संघर्ष और आत्मनिर्णय की क्षमता भी दिखाती हैं।

‘अल्मा कबूतरी’ और वंचित स्त्री का जीवन : ‘अल्मा कबूतरी’ में स्त्री जीवन सामाजिक और आर्थिक वंचना के संदर्भ में अधिक जटिल रूप में सामने आता है। अल्मा का जीवन यह दर्शाता है कि जब स्त्री सामाजिक रूप से वंचित समुदाय से आती है तो उसके सामने स्त्री होने के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक वंचना की अतिरिक्त चुनौतियाँ भी होती हैं। इस प्रकार अल्मा का चरित्र स्त्री जीवन की बहुस्तरीय समस्याओं को समझने में सहायता करता है। उसके माध्यम से यह प्रश्न उठता है कि क्या केवल सामाजिक रूप से स्त्री होना ही उसकी समस्या है, या उसके साथ जुड़ी आर्थिक और सामाजिक स्थिति भी उसके जीवन को प्रभावित करती है? मैत्रेयी पुष्पा इस जटिलता को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं।

ग्रामीण स्त्री की आर्थिक निर्भरता : ग्रामीण स्त्री के जीवन में आर्थिक स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्त्री परिवार के आर्थिक जीवन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योगदान देती है, लेकिन कई बार उसके श्रम को स्वतंत्र आर्थिक पहचान नहीं मिलती। आर्थिक निर्भरता के कारण स्त्री को कई परिस्थितियों में समझौते करने पड़ सकते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में आर्थिक प्रश्न स्त्री की स्वतंत्रता से जुड़े दिखाई देते हैं। आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री को निर्णय लेने का आत्मविश्वास देती है, परिवार में उसकी स्थिति मजबूत करती है, सामाजिक निर्भरता कम करती है, अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने की क्षमता देती है, अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस देती है। इसलिए नारी सशक्तीकरण के संदर्भ में आर्थिक स्वतंत्रता महत्वपूर्ण आयाम बन जाती है।

सामाजिक रूढ़ियाँ और स्त्री : ग्रामीण समाज में परंपराओं का महत्वपूर्ण स्थान है। परंपराएँ सामाजिक पहचान को बनाए रखने में सहायक हो सकती हैं, लेकिन जब वे व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता को सीमित करने लगती हैं, तब वे रूढ़ि का रूप ले लेती हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ऐसी अनेक सामाजिक मान्यताएँ दिखाई देती हैं जो स्त्री की स्वतंत्रता को सीमित करती हैं। स्त्री से अपेक्षित व्यवहार, विवाह संबंधी मान्यताएँ, परिवार की प्रतिष्ठा, स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण और पुरुष की श्रेष्ठता जैसी धारणाएँ उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। लेखिका इन रूढ़ियों को स्वाभाविक मानकर स्वीकार नहीं करती, बल्कि उनकी आलोचनात्मक पड़ताल करती हैं।

स्त्री की दयनीय स्थिति का यथार्थ : मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में ग्रामीण स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण केवल करुणा उत्पन्न करने के लिए नहीं किया गया है। लेखिका स्त्री की परिस्थितियों के पीछे मौजूद सामाजिक कारणों को सामने लाती हैं। स्त्री की स्थिति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारण हैं— अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता पुरुष वर्चस्व, सामाजिक रूढ़ियाँ, पारिवारिक नियंत्रण, निर्णय प्रक्रिया में सीमित भागीदारी सामाजिक असमानता, अवसरों की कमी, इसलिए उनके साहित्य में स्त्री की पीड़ा एक व्यापक सामाजिक समस्या का प्रतिनिधित्व करती है।

दयनीयता से प्रतिरोध तक : मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनकी स्त्रियाँ केवल दयनीय स्थिति में रुकती नहीं हैं। वे धीरे-धीरे अपने जीवन की परिस्थितियों को समझती हैं और उनमें परिवर्तन की संभावना तलाशती हैं। यही कारण है कि उनके पात्रों में पीड़ा और प्रतिरोध दोनों साथ-साथ दिखाई देते हैं। स्त्री पहले अपनी स्थिति को अनुभव करती है, फिर उसके कारणों को समझती है और अंततः उसके विरुद्ध आवाज उठाने की कोशिश करती है। इस प्रक्रिया को इस प्रकार समझा जा सकता है—पीड़ा → अनुभव → चेतना → प्रश्न → प्रतिरोध → परिवर्तन की आकांक्षा यही प्रक्रिया मैत्रेयी पुष्पा की नारी संवेदना को विशिष्ट बनाती है।

शिक्षा: परिवर्तन का माध्यम : मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के संदर्भ में शिक्षा को स्त्री मुक्ति के महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जा सकता है। शिक्षा स्त्री को केवल पढ़ना-लिखना नहीं सिखाती, बल्कि उसे अपने जीवन और समाज के बारे में सोचने की क्षमता भी प्रदान करती है।

शिक्षित स्त्री अपने अधिकारों को बेहतर समझ सकती है, निर्णय लेने में अधिक सक्षम हो सकती है, आर्थिक अवसर प्राप्त कर सकती है, सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न कर सकती है, अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक हो सकती है। इसलिए ग्रामीण स्त्री की स्थिति में सुधार के लिए शिक्षा को केंद्रीय साधन माना जा सकता है।

पुरुष वर्चस्व के विरुद्ध नारी चेतना : मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में पुरुष वर्चस्व के विरुद्ध स्त्री की चेतना धीरे-धीरे विकसित होती है। यह चेतना हमेशा आक्रामक रूप में नहीं होती। कई बार वह प्रश्न करने, असहमति व्यक्त करने और स्वयं के लिए निर्णय लेने के रूप में दिखाई देती है। स्त्री का यह कहना कि उसके जीवन से जुड़े निर्णयों में उसकी भी राय महत्वपूर्ण है—अपने आप में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के लिए चुनौती है। इस प्रकार नारी चेतना का विकास सामाजिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री जीवन का चित्रण हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण सामाजिक दस्तावेज की तरह सामने आता है। बुंदेलखंड जैसे ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों के जीवन में गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक रूढ़ियाँ, पुरुष वर्चस्व और आर्थिक निर्भरता जैसी समस्याएँ दिखाई देती हैं। लेखिका इन स्त्रियों की दयनीय स्थिति को केवल सहानुभूति के स्तर पर प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि उसके सामाजिक कारणों की ओर भी संकेत करती हैं। यही उनके साहित्य की विशेषता है। 'चाक' की सारंग, 'इदन्नमम' की मंदाकिनी, 'झूला नट' की शीलो और 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा जैसे पात्र ग्रामीण स्त्री जीवन के विभिन्न रूपों को सामने लाते हैं। इन पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण स्त्री की समस्याएँ व्यक्तिगत नहीं बल्कि व्यापक सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई हैं। अशिक्षा उसके विकास को सीमित करती है, आर्थिक निर्भरता उसकी स्वतंत्रता को प्रभावित करती है और पुरुष-प्रधान व्यवस्था उसके निर्णयों पर नियंत्रण स्थापित करती है। फिर भी मैत्रेयी पुष्पा की स्त्रियाँ केवल परिस्थितियों की शिकार बनकर नहीं रहती। उनके भीतर धीरे-धीरे चेतना, प्रश्न और प्रतिरोध की भावना विकसित होती है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ग्रामीण स्त्री के दमन और संघर्ष दोनों का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। वे स्त्री की दयनीय स्थिति को सामने लाने के साथ-साथ उसके भीतर मौजूद परिवर्तन की संभावनाओं को भी रेखांकित करते हैं। इस दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य ग्रामीण स्त्री की सामाजिक स्थिति, अशिक्षा, पुरुष वर्चस्व और नारी चेतना के अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ :-

- पुष्पा, मैत्रेयी. (1994). *बेतवा बहती रही*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- पुष्पा, मैत्रेयी. (1997). *इदन्नमम*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- पुष्पा, मैत्रेयी. (1999). *चाक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- पुष्पा, मैत्रेयी. (2000). *अल्मा कबूतरी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- पुष्पा, मैत्रेयी. (2004). *झूला नट*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- संधु, मधु. (2012). *समकालीन हिंदी उपन्यास और स्त्री विमर्श*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
- हेटा, आशारानी. (2004). *भारतीय नारी: दशा और दिशा*. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.

नासिरा शर्मा के कथा-साहित्य में चित्रित विविध समस्याएँ

कल्पना नरसिंग फराटे*

kalpanadhamdhere327@gmail.com

प्रो. (डॉ.) प्रमोद भागचंद पडवळ†

शोध-निर्देशक

सारांश:-

आधुनिक हिंदी साहित्य जगत् के बहुआयामी और प्रतिभा संपन्न रचनाकारों में एक उल्लेखनीय नाम हैं नासिरा शर्मा। उनके द्वारा लिखित कथा-साहित्य में चित्रित विविध समस्याओं पर इस शोध आलेख के माध्यम से प्रकाश डाला है। उनके साहित्य में चित्रित समस्याएँ निम्नलिखित हैं, जैसे- सांप्रदायिकता, शहरीकरण, महानगरीय जीवन की समस्याएँ, भ्रष्टाचार, विभाजन, राजनीतिक वैमनस्य, धार्मिक पक्षपात, अंधविश्वास, रूढ़ी, परंपरा, स्त्री-विमर्श, पारिवारिक समस्या आदि। नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य में इन वर्तमान समाज के ज्वलंत मुद्दों पर चर्चा की है। इसके साथ-साथ वे इन समस्या के लिए समुचित समाधान को भी सुझाने का प्रयास करती है। नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म मानवीय संवेदना को प्रस्तुत किया है। वे मानवी जीवन के लिए आवश्यक चीजों को उपलब्ध करना ही जीवन जीना नहीं मानती। व्यक्ति को जीवन के साथ-साथ एक आंतरिक जिंदगी भी होती है। उसकी भी कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। उनका मानना है कि उसकी पूर्ति को प्राथमिकता देनी चाहिए। उनके अनुसार जीवन एहसास के धरातल पर होता है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति महसूस करने की और समझने की कोशिश करता है। नासिरा शर्मा अपने कथा-साहित्य में इन्हीं सूक्ष्मगत मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक, पारिवारिक आदि समस्याओं को स्पष्ट करती है। इस शोध पत्र के माध्यम से लेखिका ने अपने कथा-साहित्य में चित्रित विविध पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, स्त्री-विमर्श आदि समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह शोधपत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इस शोधपत्र के माध्यम से लेखिका के कहानी और उपन्यासों में चित्रित विविध समस्याओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

बीज शब्द :-

स्त्री-विमर्श, नारी चेतना, उपन्यास, कहानी, आधुनिकता, वर्तमान समाज, मानवीय मूल्य, संवेदना, नैतिक विषमता आदि।

प्रस्तावना :-

नासिरा शर्मा प्रगतिशील विचारधारा रखनेवाली लेखिका है। उन्होंने मनुष्यता को धर्म, संप्रदाय या संकीर्ण विचारधारा के ऊपर माना है। उनका यह प्रगतिवादी रूप उनके जीवन में एवं साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। ऊँच-नीच, सामाजिक-आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, धार्मिक-विषमता, राजनीतिक अराजकता, स्वार्थी-भावना आदि संबंधी बातें उन्हें अंदर से सालती हैं, जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में उभरती है। समाज में व्याप्त समस्याओं पर विचार-मंथन करना, उन्हें अपने कथा-साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करना एवं उनके समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करना लेखिका अपना कर्तव्य मानती हैं। नासिरा शर्मा के अब तक दस उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जैसे कि शात्मली, ठिकरे की मंगनी, जिंदा मुहावरे, सात नदियाँ एक समंदर, अक्षयवट, पारिजात कुइयांजान, कागज की नाव, अजनबी जजीरा आदि। उनके अब तक नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं- पत्थर गली, संगसार, इब्ने मरियम, शामी कागज, शबीना के चालीस चोर, खुदा की वापसी, इंसानी नस्ल, दूसरा ताजमहल तथा बुतखाना आदि। उनके तीन लेख संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- 'औरत के लिए औरत', 'राष्ट्र और मुसलमान' तथा

* शोधार्थी, चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय, शिरूर, जि. पुणे (महाराष्ट्र)

† प्रोफेसर, चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय, शिरूर, जि. पुणे (महाराष्ट्र)

‘किताब के बहाने’। ‘जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं’ रिपोर्टाज भी आपकी प्रसिद्ध रचना है। साथ ही साथ बाल साहित्य लेखन, अनेक ग्रंथों का संपादन, टी.वी. धारावाहिकों का कथा, पटकथा, संवाद लेखन आदि का कार्य किया है। नासिरा शर्मा अपने साहित्य में वर्तमान समय की समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत किया है। जिसमें स्त्री-विमर्श, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, देशविभाजन, सामाजिक समस्याएँ, शहरीकरण, महानगरीय जीवन की समस्या, पारिवारिक समस्या आदि हैं। जिसका विवेचन इस प्रकार है।

उद्देश्य :-

आधुनिक महिला साहित्यकारों में नासिरा शर्मा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उन्होंने समाज के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी को ध्यान में रखते हुए लेखन कार्य किया है। गहन अनुभव की धनी नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व उदार है तथा उनका सृजन संसार पाठकों के मन को सोचने पर विवश करता है। आज साहित्य जगत में नवीन विचारों, नवीन मूल्यों ने जन्म लिया है। जिनके फलस्वरूप समाज में बहुत परिवर्तन आया है। धार्मिक पक्षपात, अंधविश्वास, रूढ़िवादी धारणाएँ, राजनीतिक वैमनस्य आदि के कारण समाज को गहरा आघात पहुँचाया है।

इन समस्याओं को नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य के माध्यम से बखूबी से प्रस्तुत किया है। उपन्यास, कहानी, नाटक, अनुवाद, लेख-संग्रह, रिपोर्टाज, पत्रकारिता, टी.वी. फिल्म, बाल-साहित्य, संवाद लेखन, साक्षात्कार आदि लगभग सभी विधा में उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने अपने आस-पास के जन-जीवन को बहुत करीब से देखा और महसूस किया इन्हीं मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं और विचारों को अपने कथा-साहित्य में अभिव्यक्ति किया है। इन्हीं पर प्रकाश डालना प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य है।

स्त्री विमर्श

नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य में स्त्री को प्रमुख स्थान दिया है। उन्होंने नारी को साहित्य और सृजन का मुख्य अंग माना है। नासिरा शर्मा ने नारी को अपने साहित्य में स्थान देकर मुख्य धारा से जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रेम और शृंगारिकता से परे समाज के विभिन्न मुद्दों जैसे - अस्तित्व की लड़ाई, शिक्षा का अधिकार, समानता, मानसिक द्रव्य आदि से जूझने वाले नारी मन के प्रश्नों को अपनी कलम के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जो स्त्री समाज में शोषित होती रही है वह अब अपने मुक्त होने के लिए प्रयास करती दिखाई पड़ती है। वह परिवार तथा समाज द्वारा लादे गए नियमों, बंधनों, रूढ़ियों आदि धारणाओं के बंधनों को टुकड़ाने का प्रयास कर रही है। वर्तमान समाज में स्थायी परिवर्तन, सकारात्मक विकास का वातावरण लाना है तो समाज के इस आधे-हिस्से यानी स्त्री को मुख्य धारा से जोड़ना ही होगा क्योंकि उन्हें गौण रखकर परिवर्तन संभव नहीं है। औरत को हमारे परिवार की नींव मानी जाती है। समाज ने स्त्री को उचित स्थान और सम्मान देना चाहिए। आज परिवर्तन ही संसार का नियम है और यह नियम ही हमारे समाज को एक नई दिशा देने में सहायक होगा। इस संदर्भ में ‘आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी’ जी ने कहा है कि - “कोई भी सामाजिक व्यवस्था जो समय के साथ न बदले वह स्वयं तो डूबती ही है, उसे भी ले डूबती है जिसके लिए वह बनी है।”¹ अतः लेखिका कहती है नारी को प्रेम और सम्मान का दर्जा नहीं दिया गया तो समाज का अधपतन होने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। इसलिए इस पुरुषप्रधान संस्कृति में नारी को भी बराबर का दर्जा और मान-हक्क देना सभी का कर्तव्य है।

नासिरा शर्मा ने नारी को प्रेम और समता की मूर्ति माने जाने वाले विचारों से अलग कर मानवीय संवेदनाओं से जोड़ा है चाहे वह ‘शाल्मली’ उपन्यास की नायिका शाल्मली हो या फिर ‘ठीकरे की मंगनी’ की महरूख या फिर स्त्री संघर्ष का ज्वलंत दस्तावेज ‘सात नदियाँ एक समंदर’ की सात सहेलियाँ अख्तर, महनाज, परी, तैयबा, सूसन, सनोबर और मलीहा आदि। उनकी कहानियाँ ‘अपनी कोख’ की साधन या ‘बावली’ कहानी की सलमा सभी के माध्यम से मानवीय संवेदना और नारी संघर्ष को प्रस्तुत किया है। सभी नारी पात्र अपने-अपने संघर्षों से लड़ते हुए नजर आती हैं, कोई भी यथास्थिति से भागती नहीं है बल्कि डटकर उसका सामना करती हैं। अतः नासिरा शर्मा ने अपने कथा-साहित्य में नारी चेतना और स्त्री-विमर्श को चित्रित किया है।

सामाजिक समस्याएँ

प्रत्येक व्यक्ति समाज और परिवार का महत्वपूर्ण अंग होता है। जिस कारण व्यक्ति की यह नैतिक जिम्मेदारी हो जाती है कि वह अपने परिवार और समाज को चलाने में योगदान दे, पर इनके बीच उसे कई प्रकार की अलग-अलग समस्याओं का

सामना करना पड़ता है, जैसे कि सामाजिक समस्या। समाज के बदलते रूप के अनुसार सामाजिक समस्या का स्वरूप भी बदल रहा है। कुछ क्षेत्रों में यह परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है, तो कुछ क्षेत्रों में धीमी गति से। इस बदलती परिस्थितियों में पुरानी परंपराएँ, नियम, मूल्य सब बेकार लगने लगते हैं। सामाजिक नियम, रीति-रिवाज, धर्म, दस्तूर संबंधी समस्याएँ, असफल जीवन आदि। नासिरा शर्मा ने समाज में व्याप्त इन्हीं समस्याओं को अपने कथा-साहित्य में चित्रित किया है। नासिरा शर्मा ने सशक्त नारी संघर्षों का उदाहरण 'तीसरा मोर्चा' कहानी की नायिका कश्मीरी है। इस पुरुष प्रधान संस्कृति ने कई बार नारी पर अन्याय, अत्याचार किये पर नारी हमेशा संघर्ष करती रही। शाल्मली भी पढ़ी-लिखी होते हुए भी अपने पति से बार-बार शोषित जीवन जीने के लिए विवश दिखाई देती है। वह आत्मनिर्भर होने पर भी हमेशा पति से अपमानित होती रहती है। कलह, असफल वैवाहिक जीवन के द्वंद्व को भोगती हुई दिखाई पड़ती है। 'ठीकरे की मंगनी' की महारूख भी समाज के इन्हीं नैतिक-अनैतिक प्रश्नों में उलझकर अनचाहा जीवन जीने को विवश है।

'बावली' कहानी में नासिरा शर्मा ने सामाजिक जीवन का विवेचन किया है। इस कहानी की सलमा अपने भाइयों-बहन में सबसे छोटी थी। घर की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी न थी। जो कुछ जमा-पूँजी थी वह तीनों बहनों के विवाह में स्वाहा हो गई। भाई की नोकरी लगने के पश्चात एक आशा बंधी थी कि अब उनके अच्छे दिन आएँगे किंतु दुर्भाग्य ने अभी तक उनका पीछा न छोड़ा था। एक दुर्घटना में भाई की मृत्यु ने सलमा और उसकी माँ के सपनों को बिखर दिया। कर्जा न चुका सकने के कारण उनको घर से बेघर होना पड़ा। विवश होकर सलमा को लेकर अम्मा अपनी बहन के घर चली गई जहाँ उसे घर का सारा काम करने के उपरांत भी ताने सुनने पड़ते थे। तंग आकर अम्मा ने अपनी बहन का घर छोड़ दिया। एक बेगम साहिबा की शानदार कोठी में दोनों माँ-बेटी को एक कमरा मिल गया। सलमा की पढ़ाई का प्रबंध भी हो गया घर में खाने-पीने की सुविधा थी। बदले में सलमा को बेगम साहिबा की सेवा करनी पड़ती थी। दिन आराम से व्यतीत होने लगे। किन्तु बेगम साहिबा की मृत्यु के बाद उनके वृद्ध पति की कुदृष्टि सोलह वर्षीय सलमा पर पड़ी और उन्होंने अपने लिए सलमा को माँगा जिसके कारण माँ-बेटी को रात में ही वहाँ से भागना पड़ा। सलमा अब तक बी. ए. कर चुकी थी। उसे एक मिडल स्कूल में अध्यापिका की नौकरी मिल गई। उनके दिन फिर आराम से कटने लगे। सलमा ने एम्.ए. भी कर लिया। उसके लिए कई रिश्ते भी आने लगे, जिसमें से अम्मा ने खालिद को पसंद कर उनका विवाह करा दिया।

पारिवारिक समस्याएँ

समाज में परिवार गृहस्थी जीवन की नींव है, संस्कारों की पहली पाठशाला है। सामाजिक जीवन में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नासिरा शर्मा ने अपने कथा-साहित्य में पारिवारिक समस्याओं को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। उनके उपन्यास 'अक्षयवट' में परिवार की उदारता को, उसकी आवश्यकता को व्यक्त करने का प्रयास किया है। घर, परिवार व्यक्ति के लिए कितना महत्वपूर्ण है इसका बड़ा मार्मिक चित्रण 'अक्षयवट' में किया है। जब माँ 'जुगनू' को भोजन परोसती है तो उसे अनुभव होता है कि यहाँ का माहौल कितना सुखदायी है। जुगनू के ही शब्दों में - "यह घर खस्ता ही सही, इसकी दीवारें बेसीदा ही सही, मगर इनमें कितना स्नेह भरा है। सारा शहर छानकर जब घर लौटा तो लगता है कि स्वर्ग में लौटे हो। प्यार, संतोष, सुरक्षा का यह हिंडोला कितना अपना लगता है।" अतः हम कह सकते हैं कि जुगनू जब घर आता है तो उसे घर में कितनी शांति और सुख मिलता है और उसे घर आने पर सुकून मिलता है। नासिरा शर्मा की बहुत-सी कहानियाँ और उपन्यास में पारिवारिक जीवन की समस्या के केंद्र में है। 'इब्न मरियम' कहानी में सुगरा को उसके ससुरालवाले ससुराल नहीं ले जाते क्योंकि भोपाल दुर्घटना शहर के कई इलाके में गैस फैली थी। इस कारण दूसरे इलाकेवालों ने उनसे अपने रिश्ते तोड़ लिए थे। रामधन की दोनों पुत्रियों को उनके ससुरालवाले वापस लेने के लिए इनकार कर देते हैं। ताहिर समधी से कहता है- "क्या अब शहर की हर लड़की के बाप को अपना मुँह बंद रखना पड़ेगा? क्या सचमुच इस शहर की कोई भी लड़की साबुत बच्चा जनने के काबिल नहीं रह गई है? क्या यह शहर बाँझ हो गया है?" भोपाल गैस दुर्घटना ने मनुष्य को संवेदना-रहित बना दिया है। इस त्रासदी के शिकार लोगों से उन्हीं के संबंधियों ने रिश्ते तोड़ दिए। हादसे की शिकार युवतियों को उनके ससुरालवाले स्वीकार करने से इनकार कर देते हैं।

शहरीकरण की समस्याएँ

वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए साधन संपन्न जीवन की आकांक्षा रखता है जिस कारण वह शहरों की ओर भाग रहा है। जिसका परिणाम यह होता है कि इस भाग-दौड़ में उसकी जड़े, घर, परिवार उससे अलग होकर छूट जाता है। इसी समस्या का चित्रण नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास 'कुड़ियाँ जान' में किया है। बढ़ते शहरीकरण के कारण शहरों में निवास

करने के कारण से परिवार के लोगों में दूरी बनती है। पिता-पुत्र, माता-पिता से बच्चे दूर हो जाते हैं। इस संदर्भ में 'जमाल' चिन्ता करता है और सोचता है कि - "यह उन्हीं का किस्सा नहीं है बल्कि हर उस खानदान का है जो शहर और गाँव में बटकर दो इकाइयों में बट गया है।"⁴ शहरीकरण के कारण परिवार के सदस्य एक-दूसरे से अलग हो रहे हैं, उनमें दूरियाँ बढ़ रही हैं। परिवार अलग हो रहे हैं। शहरीकरण की समस्या में जल समस्या भी गंभीर होती जा रही है। लेखिका ने 'कुड़ियाँ जान' उपन्यास में जल समस्या की गंभीरता को दर्शाया है। हवा, पानी हमारे प्राकृतिक स्रोत हैं किंतु अब ये दूषित हो रहे हैं। 'डॉ. कमाल' इस पात्र का पूरे भारत और विश्व के दूषित जल के आँकड़े को प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास जल-आपूर्ति की समस्या पर चर्चा और उपायों को दर्शाता है। "यह उपन्यास बताता है कि ज़मीन और इंसान की प्यास कैसे एक-दूसरे से गहरे में जुड़ी है। पानी के रहने और न रहने पर दोनों हालातों में इंसानी रिश्ते के रंग और संबंध मुखरकर उठते हैं।"⁵ वर्तमान समय में गाँव के साथ महानगरीय जीवन में भी पानी मुख्य समस्या है। व्यक्ति को शुद्ध हवा, पानी के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है। वह शुद्ध पानी का होना हो या शुद्ध हवा का होना शहर में यातायात संबंधी भी बहुत समस्याएं हैं।

भ्रष्टाचार की समस्या

भ्रष्टाचार एक ऐसी समस्या है जिसके कारण हमारे समाज, देश की प्रगति बाधित हो रही है। आज यह भ्रष्टाचार हमारे जीवन के लगभग हर क्षेत्र में फैला हुआ है। भ्रष्टाचार ने हमारे जीवन को किस तरह प्रभावित किया है इसको स्पष्ट करते हुए सी.पी. श्रीवास्तव जी लिखते हैं - "भ्रष्टाचार का प्रवाह उद्गम वेग के साथ बह रहा है और इसने लोगों का स्वच्छ प्रशासन से वंचित तथा विकास के मार्ग को विरोध कर देता है। भ्रष्टाचार ने एक महामारी का रूप ले लिया है और अधिकांश नौकरशाही, पुलिस, न्यायपालिका और राजनीतिक सत्ता सब इसकी लपेट में हैं।"⁶ आज वर्तमान में भ्रष्टाचार का स्वरूप बहुत व्यापक हो रहा है। हर क्षेत्र में यह फैला हुआ है। सरकारी दफ्तर तो भ्रष्टाचार के अड्डे बन गए हैं। भ्रष्टाचार एक गंभीर समस्या हो रही है। इस कारण समाज का विकास नहीं हो रहा है। 'अक्षयवट' उपन्यास का रामस्वरूप सिंह पुलिस विभाग में चल रहे भ्रष्टाचार के संबंध में कहता है - "पुलिस की जात का तो तुम जानत हो, दरोगा हरपाल सिंह बड़ा हरामी है खाये-पीये के आगे ओछा, कुछ सूझत नहीं। ठाकुर का लौंडा बोटल-बोटल देय-दिलाय के और मुट्ठी गर्म कर सच्चाई दबाई देय बसा।"⁷ अतः कहा जा सकता है कि भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था के कारण समाज और जनता का शोषण होता है, बेगुनाह को सजा देते हैं। पुलिस को समाज और लोगों की सुरक्षा के लिए तैनात किया जाता है लेकिन पुलिसवाले ही उन्हें भक्षक बना देते हैं।

अंधविश्वास

आज समाज में कई तरह के अंधविश्वास प्रचलित हैं। आज भी लोगों में अंधविश्वास देखने को मिलता है। जादू-टोना, भूत-प्रेत और झाड़-फूँक, जंतर-मंतर को करने से लोग नहीं चूकते हैं। गंभीर स्थिति में भी लोग इलाज कराने के बजाय झाड़-फूँक में विश्वास करते हैं। नासिरा शर्मा ने अपने कथा-साहित्य में जादू-टोने, अंधविश्वासों को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। 'सात नदियाँ एक समंदर' उपन्यास की तैयबा भविष्य देखने में विश्वास नहीं रखती है। इसे अंधविश्वास मानती हुई कहती है - "यदि कोई इंसान चालाक हो और कोई बेवकूफ मिल जाए तो वह पैसा खूब कमाता है। यहाँ बैठे-बैठे अपने चार सौ तूमान कमा लियो।"⁸ अंधविश्वास के कारण कई बार लोगों को ठग लिया जाता है। इसका चित्रण इस उपन्यास में किया है। 'ठीकरे की मंगनी' इस उपन्यास में भी टोने-टोटके के स्वरूप को दर्शाया गया है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र महरूख की नौकरानी लछमिनिया प्रसव पीड़ा से तड़पती है। उसे डॉक्टर की ज़रूरत थी। "पर उसकी सास टोने-टोटके किए जा रही थी। दाई कोठरी के दरवाजे पर बैठी चिलम पी रही थी। खासी भीड़ जमा हो गई थी और लछमिनिया के सिरहाने लोहे का टुकड़ा, हल्दी की किल, सिल का बट्टा और पता नहीं क्या-क्या जमा हो रहा था। दिन ढलते-ढलते शाम हो गई लछमिनिया के सिरहाने तेल की डिबरी रखकर उसकी सांस उसके सर से छुला कर कोई चीज बाहर ले गई।"⁹ अंत में महरूख पास के कस्बे से डॉक्टर विमला को बुलाकर उसकी जान बचाती है। कुदृष्टि या बुरी नजर से बचने के लिए भी तरह-तरह के टोने-टोटके किए जाते हैं। टोना-टोटका करना भूत प्रेत का साया होना आदि अंधविश्वास हमें वर्तमान में भी दृष्टिगोचर होते हैं। 'अक्षयवट' इस उपन्यास में भी अंधविश्वास को चित्रित किया गया है। रमेश की माँ कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक पंडित के पास जाती है। पंडित जी जो भी कहता करने को तैयार रहती है। भले ही आज हम वैज्ञानिक युग में जीते हैं, स्वयं को प्रगतिवादी एवं आधुनिक होना साबित करते हैं। परंतु कहीं ना कहीं हमारी सोच की जकड़न वैसे की वैसे दिखाई देती है। रमेश के घर में शनि का वास होने के कारण रमेश नौकरी के लिये भटकता है। "सप्ताह में एक दिन व्रत और सफेद लाई नदी या किसी

भी बहते पानी में डालों सारे काले बादल छंट जायेंगे। मन को शांति मिलेगी। रास्ते के बीच और चौराहे पर वह पूरी-हलवा, सिंदूर, फूल, नींबू भी रखने लगी थी।”¹⁰ यहाँ पर पंडित जी रमेश की माँ को टोटका बताते हैं और किस तरह रमेश के ऊपर आए शनि का संकट टल जाएगा और इसलिए क्या-क्या करना है यह पंडित जी रमेश के माँ को बताता है। नासिरा शर्मा ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में व्याप्त अंधविश्वासों, दोहरी मानसिकता, पुराने ख्याल आदि को उजागर किया है और समाज को जागरूक करने का प्रयास किया है। इस प्रकार समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा के विविध पहलुओं पर नासिरा शर्मा ने प्रकाश डाला है।

विभाजन

अंग्रेजों की कूटनीति के कारण भारत को स्वतंत्रता अवश्य मिली, साथ ही उसे तीन हिस्सों में विभाजित किया गया। भारत, पूर्व पाकिस्तान और पश्चिम पाकिस्तान अंग्रेजों ने स्वाधीनता के आंदोलन में हिंदू-मुस्लिम एकता की शक्ति देखी थी। अतः इस शक्ति को तोड़ने के लिए उन्होंने हिंदुओं के हृदय में मुसलमानों के प्रति विद्वेष और मुसलमानों के हृदय में भय का वातावरण निर्मित कर दिया था। दोनों समुदायों में सांप्रदायिक दंगे भड़काए गए। आज भारत-पाक विभाजन को लगभग सात दशक व्यतीत हो जाने पर भी दोनों मुल्कों की निरपराध जनता इसका दंश आज भी झेलने को विवश है। नासिरा शर्मा ने अपने कथा-साहित्य में विभाजन का चित्रण किया है।

‘सरहद के उस पार’ इस कहानी में विभाजन की पीड़ा व्यक्त है। इसमें रेहान के जरिए हिंदुस्तान के मुसलमानों के दिल के दर्द को व्यक्त किया गया है। हिंदुस्तान हिंदुओं का उतना ही है, जितना मुसलमानों का फिर मुसलमानों की वतन परस्ती पर शक क्यों किया जाता है ? हिंदू-मुस्लिम फसाद के समय मुसलमानों को ‘पाकिस्तान’ के नाम से उलाहना दी जाती है। जिसके कारण रेहान विचलित हो उठता है। प्रेम में विफल रेहान का मन सांप्रदायिक दंगों से और अधिक दीवाना हो जाता है। रेहान कहता है— “अंग्रेजों ने हमें फसाद की शकल में पाकिस्तान तोहफे में दिया है और हम इस जख्म को कब तक जिएँगे, पालते रहेंगे ? करें भी क्या ? कर ही कुछ नहीं सकते हैं। अपाहिज जो ठहरे।”¹¹ रेहान पागलपन के दौर में हिंदुओं के खिलाफ जोर-जोर से बोलता है। जिससे सभी लोग परेशान हैं, एक-दूसरे के प्रति विश्वास न करना ही इस विभाजन समस्या की जड़ है। रेहान आगे कहता है, मेरे बाप-दादा इसी धरती की आगोश में गड़े हैं। सबूत चाहिए तो जाकर देखो हमारे कब्रिस्तान सब के सब मौजूद हैं। रेहान अपने पागलपन के दौर में जो कुछ भी कहता है, वह एक सच्चे मुसलमान के दिल की बात है।

‘कच्ची दीवारें’ इस कहानी में भी विभाजन की समस्या का चित्रण किया गया है। इस कहानी के पात्र इब्ने मियाँ के घर के सदस्य विभाजन के समय कई पाकिस्तान गए और कुछ हिंदुस्तान में रह गए। उनकी पत्नी के सभी संबंधी पाकिस्तान में हैं। “ब्याह कर वह लाहौर से इलाहाबाद आई थी। इत्तेफाक से ससुराल वाले भी धीरे-धीरे करके पाकिस्तान चले गए। चाचा को बहुत बुलाया गया, बहुत जोर दिया गया, मगर वह राजी न हुए।... चर्चा के मायकेवालों और अपने घर वालों से उन्होंने दो टूक बात की थी कि, मेरा वतन हिंदुस्तान है, हम दोनों को वहीं रहना है।”¹² इस तरह इस कहानी में संप्रदाय और धर्म का विष घोलकर समाज में नफरत फैलाना और दंगे करवाना जितना आसान है, उससे उत्पन्न स्थितियों पर नियंत्रण पाना और एकता स्थापित करना उतना ही कठिन हो जाता है।

‘अमोखता’ इस कहानी में बँटवारे से उत्पन्न दर्द को वाणी दी गई है। जो इंसान के समूचे जीवन को तबाह कर उसकी पहचान छीन लेता है। इतना ही नहीं इस कथा के नायक वीरजी के माध्यम से आगामी पीढ़ी के भविष्य के प्रश्न और अस्मिता को भी उठाया गया है। देश के बँटवारे ने मातृभूमि लाहौर से अमृतसर खदेड़ दिया। फिर पंजाब में हिंदू-सिख दंगों ने उसके परिवार को भस्म कर डाला। उसके परिवार की दारुण वेदना उसकी आत्मा को भीतर तक भेदती है। वह विश्वास नहीं कर पाता कि— “जिस पंजाब में एक लड़का सरदार हो और दूसरा हिंदू हो, और एक लड़की हिंदू घर ब्याही जाए और दूसरी सरदार को, ऐसे ताने-बाने वाले समाज में कौन किसको मारेगा? अपना घर कौन तबाह करेगा?”¹³ लेखिका इस कहानी के माध्यम से विभाजन और गृह कलह के उस वीभत्स रूप से हमारा साक्षात्कार करवाती है कि नरसंहार व्यक्ति को न केवल जड़ों से काटकर पहचान का संकट उत्पन्न करता है, बल्कि अपने ही देश में व्यक्ति शरणार्थी बनकर दर-बदर भटक रहा है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध लेख नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में अभिव्यक्त विभिन्न सामाजिक, पारिवारिक, समकालीन और नारी की ज्वलंत समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण किया है। उन्होंने अपने साहित्य में नारी को मुख्य स्थान देकर उसे समाज की मुख्य

धारा से जोड़ने का प्रयास किया है। जैसे 'शाल्मली' उपन्यास की शाल्मली, 'ठिकरी की मंगनी' उपन्यास की महारूख यह पात्र नारी के माध्यम से कामकाजी और शिक्षित महिलाओं के संघर्ष को दर्शाती है। इस तरह आधुनिक समाज में टूटते सामाजिक रिश्ते बदलते नियम और पुराने संस्कारों के निरर्थक होने की स्थिति पर उनके साहित्य में प्रकाश डाला है। संयुक्त परिवारों का टूटना और एकल परिवारों में बढ़ते तनाव को 'अक्षयवट' उपन्यास के माध्यम से रेखांकित किया है। उनके कथा-साहित्य में शहरीकरण की समस्याओं का भी चित्रण किया गया है। इसके अंतर्गत जल संकट, दूषित हवा, प्रदूषण और यातायात जैसी गंभीर समस्याओं को प्रमुखता दी है। विभाजन के अंतर्गत 'सरहद के उस पार', 'कच्ची दिवारें', 'अमोखता' इन कहानियों का विस्तृत से चित्रण किया है। आज भ्रष्टाचार की समस्या बहुत बढ़ गई है। समाज, प्रशासन और राजनीति के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैल गया है। पुलिस और प्रशासन व्यवस्था आम लोगों की सुरक्षा के बजाय उनका शोषण करती हैं। आज समाज में व्याप्त जादू-टोना, भूत-प्रेत, झाड़ू-फूंक और ढोंगी बाबाओं के चक्कर में लोग फंसकर अपनी जिंदगी बर्बाद कर रहे हैं। लेखिका ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से समाज को इन अंधविश्वासों और दोहरी मानसिकता से बाहर निकाल कर जागरूक करने का प्रयास किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नासिरा शर्मा ने अपने कथा-साहित्य में समकालीन भारतीय समाज में विविध समस्याओं का प्रामाणिक चित्रण उन्होंने अपने साहित्य में किया है। उनका साहित्य स्त्री जीवन, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, शहरीकरण, विस्थापन, जातिगत भेदभाव, सांप्रदायिकता, देश-विभाजन जैसे विषयों को मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उनका साहित्य सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण माध्यम माना गया है। नासिरा शर्मा ने अपने लेखन के माध्यम से नारी को एक नए धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

संदर्भ :-

1. शर्मा, नासिरा. *औरत के लिए औरत*. रतन ठाकुर का साक्षात्कार, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृ. 169.
2. शर्मा, नासिरा. *अक्षयवट*. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003, पृ. 54.
3. शर्मा, नासिरा. *इब्ने मरियम*. 1994, पृ. 150.
4. शर्मा, नासिरा. *कुड़ियाँ जान*. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 245.
5. शर्मा, नासिरा. *कुड़ियाँ जान*. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 245.
6. श्रीवास्तव, सी.पी. *भ्रष्टाचार भारत का भीतरी शत्रु*. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 2002, पृ. 1.
7. शर्मा, नासिरा. *अक्षयवट*. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 102.
8. शर्मा, नासिरा. *सात नदियाँ एक समंदर*. प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृ. 14.
9. शर्मा, नासिरा. *ठीकरी की मंगनी*. 1989, पृ. 91.
10. शर्मा, नासिरा. *अक्षयवट*, पृ. 391.
11. शर्मा, नासिरा. *कहानी समग्र एक*, पृ. 360.
12. शर्मा, नासिरा. *दस प्रतिनिधि कहानियाँ*, पृ. 74.
13. वही, पृ. 36.

डिजिटल वित्तीय समावेशन का छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन पर प्रभाव: छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के संदर्भ में एक अनुभवजन्य अध्ययन

सिद्धार्थ जैन (Siddharth Jain)*

siddharthjain9691@gmail.com

टाकेश्वर साहू (Takeshwar Sahu)†

takeshwarshu2@gmail.com

सारांश

डिजिटल तकनीक के तेजी से विस्तार ने भारत में वित्तीय लेन-देन और व्यापारिक गतिविधियों के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। डिजिटल वित्तीय समावेशन के माध्यम से बैंकिंग एवं वित्तीय सेवाएँ आम लोगों और छोटे व्यापारियों तक अधिक सरलता से पहुँच रही हैं। विशेष रूप से UPI, QR, Code मोबाइल बैंकिंग और इंटरनेट बैंकिंग ने छोटे व्यापारियों के लिए भुगतान प्राप्त करने की प्रक्रिया को आसान बनाया है। छोटे व्यापारी स्थानीय अर्थव्यवस्था में रोजगार, आय और वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि डिजिटल वित्तीय समावेशन का छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। अध्ययन के लिए छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के चयनित छोटे व्यापारियों को प्राथमिक अध्ययन इकाई के रूप में लिया जाएगा। प्राथमिक आँकड़े संरचित प्रश्नावली के माध्यम से एकत्र किए जाएंगे। इसके साथ ही भारतीय रिजर्व बैंक, NPCI, वित्त मंत्रालय, MSME मंत्रालय तथा अन्य आधिकारिक संस्थाओं की रिपोर्टें एवं प्रकाशित आँकड़ों का उपयोग द्वितीयक स्रोत के रूप में किया जाएगा। अध्ययन में डिजिटल भुगतान के उपयोग, बैंकिंग सेवाओं की पहुँच, डिजिटल वित्तीय जागरूकता तथा व्यवसायिक प्रदर्शन जैसे प्रमुख पहलुओं का अध्ययन किया जाएगा। व्यवसायिक प्रदर्शन को बिक्री, ग्राहक संख्या, कारोबार, भुगतान सुविधा तथा व्यवसाय विस्तार जैसे संकेतकों के आधार पर समझने का प्रयास किया जाएगा। प्राप्त आँकड़ों का उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों द्वारा विश्लेषण किया जाएगा। अध्ययन से यह समझने में सहायता मिलेगी कि डिजिटल वित्तीय सेवाएँ छोटे व्यापारियों के व्यवसाय संचालन और प्रदर्शन में किस सीमा तक सहायक हैं। शोध के निष्कर्ष छोटे व्यापारियों, बैंकिंग संस्थाओं तथा नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

मुख्य शब्द –

डिजिटल वित्तीय समावेशन, छोटे व्यापारी, डिजिटल भुगतान, डिजिटल बैंकिंग, व्यवसायिक प्रदर्शन, वित्तीय साक्षरता।

प्रस्तावना

भारत की अर्थव्यवस्था में छोटे व्यापारियों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये व्यापारी स्थानीय स्तर पर वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति करने के साथ-साथ रोजगार और आय के अवसर भी उपलब्ध कराते हैं। परंपरागत रूप से छोटे व्यापारियों के व्यवसाय में नकद लेन-देन का प्रमुख स्थान रहा है। लेकिन डिजिटल तकनीक के विकास के साथ व्यापारिक लेन-देन के तरीके में तेजी से परिवर्तन आया है। आज UPI, QR Code, मोबाइल बैंकिंग और इंटरनेट बैंकिंग जैसी सुविधाओं का उपयोग छोटे व्यापारियों द्वारा भी किया जा रहा है। डिजिटल वित्तीय समावेशन का उद्देश्य लोगों और छोटे व्यवसायों को औपचारिक वित्तीय सेवाओं से जोड़ना तथा उन्हें तकनीक के माध्यम से अधिक सुविधाजनक बनाना है। डिजिटल भुगतान से व्यापारियों

* 207, वार्ड नंबर 8, देवकर, बेमेतरा, छत्तीसगढ़ 491331

† मदनपुर, कुटेलीकला, खैरागढ़, छत्तीसगढ़ 491885

को भुगतान प्राप्त करने में सुविधा, समय की बचत और लेन-देन का रिकॉर्ड रखने जैसे लाभ प्राप्त हो सकते हैं। इसके अलावा डिजिटल बैंकिंग सेवाएँ व्यापारियों को बैंकिंग, धन हस्तांतरण तथा अन्य वित्तीय सेवाओं तक आसान पहुँच प्रदान करती हैं। हालांकि, डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग में तकनीकी ज्ञान, डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट कनेक्टिविटी और साइबर सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। इसलिए केवल डिजिटल भुगतान की उपलब्धता के आधार पर इसके प्रभाव का आकलन करना पर्याप्त नहीं है। यह देखना आवश्यक है कि डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग व्यापारियों के वास्तविक व्यवसायिक प्रदर्शन को किस प्रकार प्रभावित करता है। व्यवसायिक प्रदर्शन को बिक्री, कारोबार, ग्राहक संख्या, भुगतान की सुविधा और व्यवसाय के विस्तार जैसे विभिन्न संकेतकों से समझा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के छोटे व्यापारियों के संदर्भ में डिजिटल वित्तीय समावेशन और व्यवसायिक प्रदर्शन के बीच संबंध का अध्ययन किया जाएगा। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया जाएगा। प्राथमिक आँकड़े व्यापारियों से प्रश्नावली द्वारा प्राप्त किए जाएंगे, जबकि द्वितीयक आँकड़े RBI, NPCI, MSME मंत्रालय तथा अन्य आधिकारिक रिपोर्टों से लिए जाएंगे। इस अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि डिजिटल वित्तीय समावेशन छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक विकास में किस सीमा तक सहायक है।

शोध उद्देश्य

1. दुर्ग जिले के छोटे व्यापारियों में डिजिटल वित्तीय समावेशन की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
2. छोटे व्यापारियों द्वारा UPI, QR Code, मोबाइल बैंकिंग एवं अन्य डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग का अध्ययन करना।
3. डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग और व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन के बीच संबंध का अध्ययन करना।
4. डिजिटल भुगतान का व्यापारियों की बिक्री, कारोबार एवं ग्राहक सुविधा पर प्रभाव जानना।
5. छोटे व्यापारियों की डिजिटल वित्तीय जागरूकता एवं डिजिटल साक्षरता का आकलन करना।

शोध परिकल्पना

H₀₁:- डिजिटल वित्तीय समावेशन और छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है।

H₁₁:- डिजिटल वित्तीय समावेशन और छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन के बीच महत्वपूर्ण संबंध है।

H₀₂:- डिजिटल भुगतान के उपयोग और छोटे व्यापारियों की बिक्री में कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है।

H₁₂:- डिजिटल भुगतान के उपयोग और छोटे व्यापारियों की बिक्री के बीच महत्वपूर्ण संबंध है।

H₀₃:- डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग में विभिन्न प्रकार के छोटे व्यापारियों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

H₁₃:- डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग में विभिन्न प्रकार के छोटे व्यापारियों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है।

साहित्य समीक्षा

डिजिटल वित्तीय समावेशन पर उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि डिजिटल तकनीक ने वित्तीय सेवाओं तक पहुँच को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न अध्ययनों में न्यू, मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान को वित्तीय समावेशन के प्रमुख माध्यमों के रूप में देखा गया है। कुछ अध्ययनों में डिजिटल भुगतान से लेन-देन की सुविधा, पारदर्शिता और समय की बचत जैसे लाभों को रेखांकित किया गया है। डैडम् एवं छोटे व्यवसायों से संबंधित अध्ययनों में डिजिटल तकनीक को व्यवसायिक दक्षता बढ़ाने वाला महत्वपूर्ण साधन माना गया है। भारतीय रिजर्व बैंक तथा अन्य संस्थागत रिपोर्टों में भी डिजिटल भुगतान के बढ़ते विस्तार पर ध्यान दिया गया है। हालांकि, कई अध्ययनों का ध्यान उपभोक्ताओं या सामान्य बैंकिंग ग्राहकों पर अधिक रहा है। छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन पर डिजिटल वित्तीय समावेशन के प्रत्यक्ष प्रभाव का स्थानीय स्तर पर अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित दिखाई देता है। विशेष रूप से दुर्ग जिले के छोटे व्यापारियों के संदर्भ में इस विषय पर अनुभवजन्य अध्ययन की आवश्यकता है। इसलिए प्रस्तुत शोध पूर्ववर्ती अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों को आधार बनाते हुए एक स्थानीय एवं अनुभवजन्य अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं अनुभवजन्य शोध पद्धति पर आधारित होगा। अध्ययन का क्षेत्र छत्तीसगढ़ का दुर्ग जिला होगा। शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया जाएगा। प्राथमिक आँकड़े चयनित छोटे व्यापारियों से संरचित प्रश्नावली के माध्यम से एकत्र किए जाएंगे। नमूना चयन के लिए Convenience/Purposive Sampling का उपयोग किया जाएगा है। प्रश्नावली में डिजिटल भुगतान, बैंकिंग सेवाओं, डिजिटल जागरूकता तथा व्यवसायिक प्रदर्शन से संबंधित प्रश्न शामिल किए जाएंगे। द्वितीयक आँकड़े RBI, NPCI, MSME मंत्रालय, वित्त मंत्रालय, Economic Survey तथा अन्य आधिकारिक रिपोर्टों से प्राप्त किए जाएंगे। आँकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत, औसत आवश्यकता के अनुसार अन्य सांख्यिकीय परीक्षणों द्वारा किया जाएगा। अध्ययन का उद्देश्य डिजिटल वित्तीय समावेशन और छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन के बीच संबंध को अनुभवजन्य रूप से समझना है।

द्वितीयक आँकड़ों के स्रोत एवं विभिन्न सरकारी रिपोर्टों का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों के लिए विभिन्न सरकारी एवं संस्थागत स्रोतों का उपयोग किया गया है। इन स्रोतों के माध्यम से भारत में वित्तीय समावेशन, डिजिटल भुगतान, बैंकिंग सेवाओं तथा छोटे व्यापारियों एवं सूक्ष्म उद्यमों की स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में निम्न प्रमुख रिपोर्टें एवं प्रकाशनों को आधार बनाया गया है।

1. भारतीय रिजर्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट : भारतीय रिजर्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट वित्तीय समावेशन, बैंकिंग सेवाओं, डिजिटल भुगतान, वित्तीय साक्षरता तथा छोटे एवं सूक्ष्म उद्यमों को मिलने वाली बैंकिंग सुविधाओं की जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत है। इन रिपोर्टों से यह समझने में सहायता मिलती है कि देश में बैंकिंग एवं डिजिटल वित्तीय सेवाओं का विस्तार किस प्रकार हो रहा है। RBI की रिपोर्टों में वित्तीय समावेशन सूचकांक तथा डिजिटल भुगतान के विकास को भी प्रमुखता दी गई है। इन आँकड़ों का उपयोग अध्ययन में देश में वित्तीय समावेशन की समग्र स्थिति को समझने के लिए किया गया है।

2. भारतीय रिजर्व बैंक की भुगतान प्रणाली संबंधी रिपोर्ट : RBI द्वारा प्रकाशित भुगतान प्रणाली संबंधी आँकड़ों से देश में डिजिटल लेन-देन के विकास की जानकारी प्राप्त होती है। इसमें UPI, NEFT, RTGS, IMPS, कार्ड भुगतान तथा अन्य डिजिटल माध्यमों से किए गए लेन-देन को शामिल किया जाता है। इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि भारत में नकद आधारित भुगतान के साथ-साथ डिजिटल भुगतान का महत्व लगातार बढ़ रहा है। छोटे व्यापारियों के संदर्भ में ये आँकड़े इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि डिजिटल भुगतान उनके दैनिक व्यापारिक लेन-देन का हिस्सा बनता जा रहा है।

3. NPCI की UPI संबंधी रिपोर्ट : National Payments Corporation of India (NPCI) द्वारा UPI के संबंध में नियमित रूप से आँकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। इन आँकड़ों में UPI के माध्यम से किए गए लेन-देन की संख्या और कुल राशि की जानकारी मिलती है। इन आँकड़ों से भारत में UPI के बढ़ते उपयोग की प्रवृत्ति को समझा जा सकता है। छोटे दुकानदारों द्वारा QR Code और UPI के माध्यम से भुगतान स्वीकार करने की बढ़ती प्रवृत्ति के अध्ययन में ये आँकड़े विशेष रूप से उपयोगी हैं।

4. भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण : भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आर्थिक सर्वेक्षण देश की आर्थिक स्थिति का व्यापक विवरण प्रस्तुत करता है। आर्थिक सर्वेक्षण में डिजिटल भुगतान, वित्तीय समावेशन, बैंकिंग सेवाओं तथा छोटे एवं मध्यम व्यवसायों से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा की जाती है। डिजिटल लेन-देन से व्यापारिक गतिविधियों का रिकॉर्ड तैयार होने तथा औपचारिक वित्तीय व्यवस्था से जुड़ने की संभावनाओं को भी महत्व दिया गया है। इस रिपोर्ट से प्राप्त जानकारी अध्ययन के सैद्धांतिक एवं आर्थिक संदर्भ को मजबूत करती है।

5. सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट : MSME मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट छोटे एवं सूक्ष्म उद्यमों की स्थिति को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें उद्यमों की संख्या, रोजगार, ऋण सुविधा, सरकारी योजनाओं तथा उद्यमिता विकास से संबंधित जानकारी दी जाती है। छोटे व्यापारियों और सूक्ष्म उद्यमों की आर्थिक भूमिका को समझने के लिए इन आँकड़ों का उपयोग किया गया है। इससे यह स्पष्ट करने में सहायता मिलती है कि छोटे व्यवसाय भारतीय अर्थव्यवस्था में किस प्रकार योगदान देते हैं।

6. प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम से संबंधित आँकड़े : MSME मंत्रालय द्वारा उपलब्ध कराए गए PMEGP संबंधी आँकड़े छोटे व्यवसायों और स्वरोजगार को बढ़ावा देने में सरकारी योजनाओं की भूमिका को दर्शाते हैं। इन आँकड़ों में

विभिन्न राज्यों में स्वीकृत परियोजनाओं, वित्तीय सहायता तथा रोजगार सृजन से संबंधित जानकारी मिलती है। छत्तीसगढ़ से संबंधित आँकड़े राज्य में छोटे उद्यमों एवं स्वरोजगार की स्थिति को समझने में उपयोगी हैं। इससे अध्ययन को स्थानीय आर्थिक संदर्भ प्रदान किया जा सकता है।

7. वित्तीय समावेशन एवं वित्तीय साक्षरता संबंधी रिपोर्टें : RBI तथा भारत सरकार द्वारा वित्तीय समावेशन और वित्तीय साक्षरता से संबंधित विभिन्न रिपोर्टें प्रकाशित की जाती हैं। इन रिपोर्टों से बैंक खाते, बैंकिंग सेवाओं, डिजिटल भुगतान तथा वित्तीय जागरूकता की स्थिति को समझने में सहायता मिलती है। छोटे व्यापारियों के लिए वित्तीय साक्षरता महत्वपूर्ण है क्योंकि डिजिटल सेवाओं का सही एवं सुरक्षित उपयोग उनके व्यवसायिक संचालन को प्रभावित कर सकता है। इसलिए इन रिपोर्टों को अध्ययन में महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत के रूप में शामिल किया गया है।

8. छत्तीसगढ़ से संबंधित सरकारी आँकड़े एवं रिपोर्टें : अध्ययन में छत्तीसगढ़ शासन के आर्थिक एवं सांख्यिकीय प्रकाशनों तथा संबंधित विभागों द्वारा जारी रिपोर्टों का भी उपयोग किया जाएगा। इन स्रोतों से राज्य में व्यापार, रोजगार, उद्यमिता, बैंकिंग तथा आर्थिक गतिविधियों की स्थिति को समझने में सहायता मिलेगी। दुर्ग जिले के संदर्भ में उपलब्ध जिला स्तरीय आँकड़े अध्ययन को स्थानीय आधार प्रदान करेंगे। इससे राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त निष्कर्षों की तुलना स्थानीय परिस्थितियों से करने में सुविधा होगी।

द्वितीयक आँकड़ों का निष्कर्ष

विभिन्न सरकारी एवं संस्थागत रिपोर्टों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में डिजिटल वित्तीय समावेशन का विस्तार निरंतर बढ़ रहा है। भारतीय रिजर्व बैंक की रिपोर्टों से बैंकिंग सेवाओं और डिजिटल भुगतान की पहुँच में वृद्धि दिखाई देती है। NPCI के आँकड़े UPI आधारित लेन-देन के तेजी से बढ़ते उपयोग को दर्शाते हैं। आर्थिक सर्वेक्षण से यह संकेत मिलता है कि डिजिटल लेन-देन वित्तीय व्यवस्था को अधिक औपचारिक एवं पारदर्शी बनाने में सहायक हो रहा है। MSME मंत्रालय की रिपोर्टों से यह स्पष्ट होता है कि छोटे एवं सूक्ष्म उद्यम रोजगार तथा स्थानीय आर्थिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण आधार हैं। सरकारी योजनाओं और वित्तीय सुविधाओं के विस्तार से छोटे व्यवसायों के लिए औपचारिक वित्तीय व्यवस्था से जुड़ने के अवसर बढ़े हैं। डिजिटल भुगतान के विस्तार से छोटे व्यापारियों को ग्राहकों से भुगतान प्राप्त करने में सुविधा तथा लेन-देन का व्यवस्थित रिकॉर्ड रखने में सहायता मिल सकती है। हालांकि डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग में डिजिटल साक्षरता, तकनीकी जानकारी, इंटरनेट सुविधा और साइबर सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। अतः द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डिजिटल वित्तीय समावेशन छोटे व्यापारियों के लिए एक महत्वपूर्ण आर्थिक एवं व्यावसायिक साधन के रूप में विकसित हो रहा है। अब यह जानना आवश्यक है कि राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर दिखाई देने वाली इस प्रगति का दुर्ग जिले के छोटे व्यापारियों के वास्तविक व्यवसायिक प्रदर्शन पर कितना प्रभाव पड़ा है। इसका परीक्षण प्राथमिक आँकड़ों के माध्यम से किया जाएगा।

प्राथमिक आँकड़ों का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में दुर्ग जिले के छोटे व्यापारियों से प्राथमिक आँकड़े एकत्र करने के लिए 110 व्यापारियों का नमूना लिया गया है। व्यापारियों का चयन उनके व्यवसाय की प्रकृति एवं डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग को ध्यान में रखते हुए किया गया। आँकड़ों को प्रश्नावली के माध्यम से एकत्रित कर वर्गीकृत एवं सारणीबद्ध किया गया है। अध्ययन में डिजिटल भुगतान के माध्यम, उपयोग की आवृत्ति तथा डिजिटल वित्तीय सेवाओं के व्यवसाय पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

तालिका 1: डिजिटल भुगतान के माध्यम के आधार पर व्यापारियों का वर्गीकरण

डिजिटल भुगतान का माध्यम	व्यापारियों की संख्या	प्रतिशत
UPI/QR Code	72	65.45%
मोबाइल बैंकिंग	18	16.36%
डेबिट/क्रेडिट कार्ड	9	8.18%
इंटरनेट बैंकिंग	6	5.45%
अन्य	5	4.55%
कुल	110	100%

तालिका से स्पष्ट होता है कि 110 व्यापारियों में सर्वाधिक 72 व्यापारी (65.45%) UPI/QR Code का उपयोग करते हैं। इसके बाद 18 व्यापारी मोबाइल बैंकिंग का उपयोग करते हैं। डेबिट/क्रेडिट कार्ड का उपयोग 9 व्यापारियों द्वारा तथा इंटरनेट बैंकिंग का उपयोग 6 व्यापारियों द्वारा किया जाता है। इससे संकेत मिलता है कि छोटे व्यापारियों में UPI एवं QR Code डिजिटल भुगतान का प्रमुख माध्यम बन चुका है। इसकी सरलता, त्वरित भुगतान और ग्राहकों के बीच लोकप्रियता इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं।

तालिका 2: डिजिटल भुगतान के उपयोग की आवृत्ति

उपयोग की आवृत्ति	व्यापारियों की संख्या	प्रतिशत
प्रतिदिन	61	55.45%
सप्ताह में कई बार	25	22.73%
कभी-कभी	14	12.73%
बहुत कम	7	6.36%
उपयोग नहीं करते	3	2.73%
कुल	110	100%

तालिका से ज्ञात होता है कि 61 व्यापारी (55.45%) प्रतिदिन डिजिटल भुगतान का उपयोग करते हैं। 25 व्यापारी सप्ताह में कई बार इसका उपयोग करते हैं। केवल 3 व्यापारी ऐसे हैं जो डिजिटल भुगतान का उपयोग नहीं करते। इससे स्पष्ट होता है कि दुर्ग जिले के छोटे व्यापारियों में डिजिटल भुगतान का नियमित उपयोग काफी व्यापक है। दैनिक उपयोग करने वाले व्यापारियों की अधिक संख्या यह दर्शाती है कि डिजिटल भुगतान अब केवल अतिरिक्त सुविधा न होकर दैनिक व्यापारिक गतिविधियों का हिस्सा बनता जा रहा है।

तालिका 3: डिजिटल वित्तीय सेवाओं का व्यवसाय पर प्रभाव

व्यवसायिक प्रभाव	सकारात्मक प्रभाव वाले व्यापारी	प्रतिशत
बिक्री में वृद्धि	67	60.91%
ग्राहकों की सुविधा में वृद्धि	86	78.18%
भुगतान प्राप्त करने में सुविधा	94	85.45%
लेन-देन का रिकॉर्ड रखने में सुविधा	79	71.82%
व्यवसाय विस्तार में सहायता	52	47.27%

तालिका से पता चलता है कि डिजिटल वित्तीय सेवाओं का सबसे अधिक प्रभाव भुगतान प्राप्त करने की सुविधा पर दिखाई देता है, जहाँ 94 व्यापारियों ने सकारात्मक प्रभाव बताया। 86 व्यापारियों के अनुसार डिजिटल भुगतान से ग्राहकों को सुविधा प्राप्त हुई। वहीं 79 व्यापारियों ने माना कि डिजिटल लेन-देन से रिकॉर्ड रखने में सुविधा होती है। 67 व्यापारियों ने बिक्री में वृद्धि का अनुभव बताया, जबकि 52 व्यापारियों ने व्यवसाय विस्तार में सहायता स्वीकार की। इससे संकेत मिलता है कि डिजिटल वित्तीय सेवाएँ छोटे व्यापारियों के दैनिक व्यापारिक संचालन को सरल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

परिकल्पना विश्लेषण

अध्ययन में निर्धारित परिकल्पनाओं का परीक्षण प्राथमिक आँकड़ों के आधार पर किया गया है। व्यापारियों द्वारा डिजिटल भुगतान के उपयोग तथा उनके व्यवसायिक प्रदर्शन से संबंधित जानकारी को तालिकाओं के माध्यम से वर्गीकृत किया गया। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए प्रतिशत विधि का प्रयोग किया गया है। प्राप्त आँकड़ों से यह देखा गया कि डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग करने वाले व्यापारियों में भुगतान की सुविधा, ग्राहक सुविधा, लेन-देन का रिकॉर्ड तथा बिक्री जैसे व्यवसायिक पहलुओं में सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलता है। उपलब्ध प्राथमिक आँकड़ों के आधार पर अध्ययन की वैकल्पिक परिकल्पना को समर्थन मिलता है कि डिजिटल वित्तीय समावेशन और छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन के

बीच सकारात्मक संबंध पाया जाता है। अतः अध्ययन के संदर्भ में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग छोटे व्यापारियों के व्यवसाय संचालन में उपयोगी भूमिका निभाता है।

सुझाव

1. छोटे व्यापारियों को डिजिटल भुगतान के उपयोग के लिए नियमित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
2. व्यापारियों में डिजिटल वित्तीय साक्षरता बढ़ाने के लिए स्थानीय स्तर पर जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
3. UPI एवं QR Code के सुरक्षित उपयोग के संबंध में व्यापारियों को जानकारी दी जानी चाहिए।
4. डिजिटल भुगतान से होने वाली साइबर धोखाधड़ी से बचाव के उपायों की जानकारी दी जानी चाहिए।
5. बैंकों द्वारा छोटे व्यापारियों के लिए सरल एवं सुविधाजनक डिजिटल बैंकिंग सेवाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
6. छोटे व्यापारियों को डिजिटल लेन-देन का व्यवस्थित रिकॉर्ड रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
7. डिजिटल लेन-देन के आधार पर छोटे व्यापारियों को औपचारिक ऋण सुविधाओं से जोड़ने का प्रयास किया जाना चाहिए।
8. ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में इंटरनेट और नेटवर्क की सुविधा को बेहतर बनाया जाना चाहिए।
9. डिजिटल भुगतान में आने वाली तकनीकी समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावी सहायता व्यवस्था होनी चाहिए।
10. सरकारी संस्थाओं एवं बैंकों को छोटे व्यापारियों के डिजिटल रूपांतरण के लिए संयुक्त रूप से प्रयास करना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से दुर्ग जिले के छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक प्रदर्शन पर डिजिटल वित्तीय समावेशन के प्रभाव को समझने का प्रयास किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों तथा विभिन्न सरकारी एवं संस्थागत रिपोर्टों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत में डिजिटल वित्तीय सेवाओं का विस्तार तेजी से हुआ है। प्राथमिक आँकड़ों के विश्लेषण से भी छोटे व्यापारियों के बीच UPI, QR Code तथा अन्य डिजिटल भुगतान माध्यमों के बढ़ते उपयोग की स्थिति सामने आती है। डिजिटल भुगतान से व्यापारियों को भुगतान प्राप्त करने में सुविधा, ग्राहकों को अतिरिक्त भुगतान विकल्प तथा लेन-देन का रिकॉर्ड रखने में सहायता मिलती है। अध्ययन से यह भी संकेत मिलता है कि डिजिटल वित्तीय सेवाएँ व्यापारियों के व्यवसायिक संचालन को अधिक सुविधाजनक बनाने में सहायक हो सकती हैं। हालांकि डिजिटल साक्षरता, तकनीकी समस्या, नेटवर्क तथा साइबर सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। अतः छोटे व्यापारियों के लिए डिजिटल वित्तीय सेवाओं के विस्तार के साथ-साथ जागरूकता एवं प्रशिक्षण को भी बढ़ावा देना आवश्यक है। समग्र रूप से डिजिटल वित्तीय समावेशन छोटे व्यापारियों के व्यवसायिक विकास के लिए उपयोगी साधन के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ :-

- भारतीय रिजर्व बैंक. (2022-25). *वार्षिक रिपोर्ट*. मुंबई: भारतीय रिजर्व बैंक.
- भारतीय रिजर्व बैंक. (2022-25). *भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति पर रिपोर्ट*. मुंबई: भारतीय रिजर्व बैंक.
- भारतीय रिजर्व बैंक. (2022-25). *वित्तीय समावेशन सूचकांक संबंधी रिपोर्ट*. मुंबई: भारतीय रिजर्व बैंक.
- भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम. (2022-25). *यूपीआई उत्पाद एवं लेन-देन संबंधी आँकड़े*. भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम.
- भारत सरकार, वित्त मंत्रालय. (2022-25). *आर्थिक सर्वेक्षण*. नई दिल्ली: सरकार प्रकाशन विभाग.
- भारत सरकार, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय. (2022-25). *वार्षिक रिपोर्ट*. नई दिल्ली: सरकार प्रकाशन विभाग.
- भारत सरकार, वित्त मंत्रालय. (2022-25). *वित्तीय समावेशन एवं डिजिटल भुगतान संबंधी प्रकाशन*. नई दिल्ली: सरकार प्रकाशन विभाग.
- दुर्ग जिला प्रशासन, छत्तीसगढ़ शासन. *जिला स्तरीय आर्थिक एवं सांख्यिकीय आँकड़े एवं प्रकाशन*. दुर्ग, छत्तीसगढ़: दुर्ग जिला प्रशासन.

भारतेंदु युगीन निबंधों में नवजागरण एवं मौलिक राष्ट्रबोध का विस्तार

सर्वानन्द साहा*

drsarvanand98@gmail.com

सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतीय समाज और साहित्य के लिए एक संक्रांति काल था। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त हो गया और सीधे ब्रिटिश क्राउन का शासन स्थापित हुआ। इस ऐतिहासिक बदलाव ने भारतीय जनमानस को भीतर तक झकझोर दिया। इस कठिन समय में भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके सहयोगी लेखकों ने निबंध विधा के माध्यम से जनसामान्य में चेतना जगाने का कार्य किया। प्रस्तुत शोध-लेख में मुख्य शीर्षकों के अंतर्गत भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के गद्य-साहित्य के आधार पर राष्ट्रबोध के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्षों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द:

भारतेंदु युग, हिंदी निबंध, नवजागरण, मौलिक राष्ट्रबोध, स्वदेशी चेतना, भाषा-अस्मिता, सामाजिक सुधार

भूमिका एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1857 के स्वाधीनता संग्राम की निष्फलता के बाद संपूर्ण देश में निराशा और असहायता की भावना छा गई थी। ब्रिटिश हुकूमत ने अपनी प्रशासनिक नीतियों, आधुनिक शिक्षा प्रणाली और औपनिवेशिक तंत्र के बल पर भारतीय समाज पर अपना नियंत्रण और भी अधिक मजबूत कर लिया था। ऐसी स्थिति में भारतीय समाज को अपनी पराधीनता का बोध कराना तथा उसमें स्वाभिमान का बीजारोपण करना सबसे बड़ी चुनौती थी। इसी समय हिंदी गद्य के क्षेत्र में भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रादुर्भाव (आगमन) हुआ। उन्होंने अपने समकालीन प्रतिभाशाली विचारकों को संगठित करके एक सशक्त वैचारिक मंडल बनाया, जिसे हिंदी साहित्य में 'भारतेंदु मंडल' के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने हिंदी गद्य को केवल मनोरंजन का साधन न बनाकर, उसे समाज-सुधार, राजनीतिक चेतना और मातृभाषा के प्रति सम्मान जगाने का प्रमुख माध्यम बनाया। उस दौर में समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ ही विचारों के आदान-प्रदान का सबसे सशक्त माध्यम थीं। इन निबंधकारों ने 'कवि-वचन-सुधा', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'हिंदी प्रदीप', 'ब्राह्मण' और 'आनंद कादंबिनी' जैसी पत्रिकाओं का संपादन करके गद्य की एक ऐसी सहज, स्वाभाविक और जीवंत शैली गढ़ी, जो सीधे जनमानस के हृदय को छूती थी। उनका राष्ट्रबोध किसी विदेशी विचारधारा की नकल नहीं था, बल्कि वह भारतीय परिवेश की व्यावहारिक सच्चाइयों, समस्याओं और आवश्यकताओं को समझकर निर्मित किया गया एक मौलिक ढाँचा था।

सामाजिक सुधार और आंतरिक पुनर्गठन

भारतेंदु युग के विचारकों का यह स्पष्ट मानना था कि जब तक हमारा समाज आंतरिक रूप से सशक्त और संगठित नहीं होगा, तब तक किसी भी विदेशी सत्ता का सामना करना संभव नहीं है। उन्होंने महसूस किया कि तत्कालीन भारतीय समाज बाल-विवाह, बेमेल विवाह, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, आलस्य तथा बाह्य आडंबरों जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियों

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

से बुरी तरह घिरा हुआ था। इसी कारण उन्होंने समाज सुधार को ही राष्ट्र-निर्माण की प्राथमिक शर्त माना। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने सुप्रसिद्ध निबंध “भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?” में सामाजिक जड़ता और आलस्य पर कड़ा प्रहार किया। उनका स्पष्ट मत था कि कालक्रम के साथ जो परंपराएं अनुपयोगी और हानिकारक बन चुकी हैं, उन्हें त्याग देना ही श्रेयस्कर है। देशवासियों को इन कुप्रथाओं से मुक्त होने की प्रेरणा देते हुए वे लिखते हैं: “सब उन्नतियों का मूल धर्म है। इससे सबसे पहले धर्म की उन्नति करनी चाहिए। देखो, अंग्रेजों की धर्मनीति और राजनीति सब एक में मिली है। इससे उनकी दिन-दिन उन्नति है। उन्होंने अपने यहाँ खान-पान, शादी-ब्याह, सब देश की स्थिति के अनुसार बनाए हैं। हमारे यहाँ सब बातें धर्म से बाँध दी गई हैं... स्त्रियों को विद्या पढ़ाओ, जिसमें उनका मन नीच कर्मों से हटे और गृहस्थी के काम-काज में मन लगे। आलस छोड़ो, अपने देश की बनी वस्तुओं का व्यवहार करो और अपने भाइयों को नीच मत समझो”।

इसी शृंखला में प्रतापनारायण मिश्र ने अपने निबंध “होली” तथा “आप” में जनसाधारण की व्यावहारिक और सहज भाषा के माध्यम से सामाजिक एकजुटता का सशक्त संदेश दिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक समाज के प्रत्येक वर्ग में पारस्परिक प्रेम और भ्रातृत्व की भावना विकसित नहीं होगी, तब तक राष्ट्रीय अखंडता का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पत्रिका ‘ब्राह्मण’ के ज़रिए हास्य और व्यंग्य का सहारा लेते हुए लोगों को आपसी छोटी-मोटी रंजिशों को भुलाकर एक होने की सीख दी। इस निबंध में सामाजिक सामंजस्य एवं एकता की आवश्यकता पर बल देते हुए वे स्पष्ट करते हैं: “आपके पास विद्या, बल, धन, बुद्धि कुछ भी न हो, पर एका (एकता) हो तो सब हो सकता है। वह देश धन्य है जहाँ ऐक्य की प्रतिष्ठा हो। बहुत-से लोग एक होकर पाप भी करें तो भी पुण्य फल पाएँगे। बहुत लोग एक होकर मर जाएँ तो भी अनैक्य-दूषित जीवन से अच्छा है... पाठक! क्या तुम्हें सदा ‘ब्राह्मण’ के मस्तक पर एक का चिह्न देख के उसका महत्त्व कुछ अनुभव होता है? तो फिर क्यों नहीं सब झगड़े छोड़ के सत चित्त से एक की शरण होते? क्यों नहीं एक होने और एक करने का प्रयत्न करते?”

राजनीतिक चेतना और आर्थिक स्वावलंबन

भारतेन्दु युग के निबंधकारों की राजनीतिक समझ अत्यंत सूक्ष्म और व्यावहारिक थी। उन्होंने इस तथ्य को बहुत पहले ही भांप लिया था कि ब्रिटिश हुकूमत का मूल ध्येय भारत का सर्वांगीण विकास करना नहीं, अपितु यहाँ के अमूल्य धन और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर उन्हें इंग्लैंड भेजना है। इसी कारण उन्होंने औपनिवेशिक शासन की दमनकारी नीतियों पर बेबाक प्रहार किया और जनसामान्य को स्वावलंबन तथा ‘स्वदेशी’ का मार्ग दिखाया। इसी शृंखला में बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ ने अपनी पत्रिका ‘आनंद कादंबिनी’ में प्रकाशित निबंध “नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा और हमारा कर्तव्य” के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता की शोषक आर्थिक नीतियों की गहन समीक्षा की। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जब तक देशवासी विदेशी वस्तुओं का त्याग कर स्वदेशी कपड़ों और उत्पादों को प्राथमिकता नहीं देंगे, तब तक भारत से दरिद्रता का उन्मूलन असंभव है। स्वदेशी आंदोलन की उपादेयता को रेखांकित करते हुए वे स्पष्ट करते हैं: “जब तक हम अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों का मुँह ताकते रहेंगे, तब तक हमारी स्वाधीनता और समृद्धि एक स्वप्न मात्र है। देश की दरिद्रता का मूल कारण यह है कि हमारा धन विदेशी सामानों के रूप में बाहर बहता जा रहा है। अपने हाथ के बने कपड़ों और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना केवल व्यापारिक लाभ का विषय नहीं, वरन् यह हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान और जीवन-मरण का प्रश्न है। स्वदेशी ही हमारे सर्वांगीण पुनरुत्थान की पहली शर्त है।”

इस प्रकार भारतेन्दु युगीन विचारकों ने भारतीय जनमानस के भीतर ‘स्वदेशी आंदोलन’ की मजबूत वैचारिक आधारशिला रखी। उन्होंने जनसामान्य को यह भली-भाँति समझाया कि विदेशी वस्तुओं का क्रय करना वस्तुतः स्वयं अपनी ही निर्धनता और कंगाली को आमंत्रित करना है। इन लेखकों द्वारा प्रतिपादित यही विचार आगे चलकर महात्मा गांधी के राष्ट्रव्यापी स्वदेशी तथा आत्मनिर्भरता आंदोलन का मुख्य स्तंभ सिद्ध हुआ।

भाषा-अस्मिता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक अस्मिता उसकी अपनी भाषा और सांस्कृतिक विरासत में निहित होती है। भारतेन्दु युग में ब्रिटिश हुकूमत द्वारा आंग्ल भाषा (अंग्रेजी) को जबर्दस्ती थोपा जा रहा था, जिसके फलस्वरूप भारतीयों के मन में अपनी ही मातृभाषा के प्रति हीनता का भाव पनपने लगा था। ऐसी चुनौतीपूर्ण परिस्थिति में भारतेन्दु युगीन निबंधकारों ने हिंदी (खड़ी

बोली) को राष्ट्रीय स्वाभिमान और सामाजिक एकता का मुख्य स्तंभ बनाया तथा साहित्य को जनसाधारण के विचारों एवं भावनाओं का सच्चा प्रतिबिंब घोषित किया। इसी संदर्भ में बालकृष्ण भट्ट ने अपनी सुप्रसिद्ध पत्रिका 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित उत्कृष्ट निबंध "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है" के माध्यम से भाषा और साहित्य के अंतर्संबंधों को अत्यंत प्रभावकारी ढंग से विश्लेषित किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी भी राष्ट्र का साहित्य वहाँ की जनता के सुख-दुःख, चिंतन, मनोभावों और महत्वाकांक्षाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होता है। साहित्य और समाज के इस प्रगाढ़ संबंध की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं: "किसी देश का साहित्य वहाँ के लोगों के हृदय का सच्चा चित्र है। जैसा जिसका भाव रहता है, वैसी ही उसकी भाषा भी निकलती है। कवि या लेखक अपने समय की मनोवृत्ति का निरूपण करता है। जब देश में शांति और सुव्यवस्था का साम्राज्य रहता है, तब साहित्य में भी गंभीरता, सौन्दर्य और चिंतन झलकते हैं; किंतु जब देश अज्ञान, आलस्य और दासता में डुबा होता है, तब साहित्य में भी ग्लानि और शिथिलता छा जाती है। अतः यदि राष्ट्र को जगाना है, तो उसके साहित्य की चेतना को जगाना होगा।"

भारतेंदु युगीन निबंधकारों का मुख्य ध्येय हिंदी भाषा को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनाकर आम जनमानस तक आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करना था। उन्होंने इस विचार को दृढ़ता से स्थापित किया कि जब तक हम अपनी मातृभाषा में चिंतन और अभिव्यक्ति नहीं करेंगे, तब तक देश में वास्तविक मौलिक विचारों, स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता का विकास संभव नहीं है।

प्रमुख निबंधकारों का योगदान

लेखक का नाम	प्रमुख निबंध एवं पत्रिका	मुख्य संदेश एवं योगदान
भारतेंदु हरिश्चंद्र	"भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?" (कवि-वचन-सुधा / हरिश्चंद्र चंद्रिका)	देश की सर्वांगीण उन्नति, कुरीति-उन्मूलन, आर्थिक शोषण का विरोध और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का संदेश।
बालकृष्ण भट्ट	"साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है" (हिंदी प्रदीप)	साहित्य को जनता की आवाज बनाना, हिंदी भाषा की अस्मिता का सम्मान और वैचारिक स्वतंत्रता।
प्रतापनारायण मिश्र	"होली या आप", "मनोयोग" (ब्राह्मण)	सरल लोक-भाषा और हास्य-व्यंग्य में आपसी एकता, सामाजिक समरसता तथा देश-प्रेम का प्रसार।
बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'	"नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा और हमारा कर्तव्य" (आनंद कादंबिनी)	कलात्मक गद्य शैली, विदेशी व्यापारिक नीतियों का विरोध और स्वदेशी उद्योगों एवं स्वावलंबन का समर्थन।

निष्कर्ष

भारतेंदु युग के निबंधकारों ने हिंदी साहित्य को एक नवीन, संचेतन और प्रगतिशील दिशा प्रदान की। उनका राष्ट्रबोध केवल कोरी सैद्धांतिक चर्चाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें सामाजिक कुप्रथाओं का उन्मूलन करने का दृढ़ संकल्प, औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध सशक्त आवाज और अपनी भाषा तथा संस्कृति पर गर्व करने की अंतर्निहित प्रेरणा शामिल थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जैसे मनीषियों ने अपने निबंधों के माध्यम से जिस वैचारिक नवजागरण की नींव रखी, उसी ने आगे चलकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का सुदृढ़

वैचारिक आधार निर्मित किया। उनका यह दूरदर्शी चिंतन आज भी हमें आत्मनिर्भरता, सामाजिक समरसता और अपनी मातृभाषा के प्रति निष्ठा की अमूल्य सीख देता है।

संदर्भ :

1. मिश्र, शिवप्रसाद 'रुद्र'. (सं.). (1953). *भारतेन्दु ग्रंथावली (भाग 3)* (पृ. 148–150). नागरी प्रचारिणी सभा.
2. वर्मा, धनंजय. (सं.). (1989). *बालकृष्ण भट्ट निबंधावली (भाग 1)* (पृ. 24–26). साहित्य अकादमी.
3. मल्ल, विजयशंकर. (सं.). (1992). *प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली* (पृ. 82–84). नेशनल बुक ट्रस्ट.
4. उपाध्याय 'प्रेमघन', बदरीनाथ. (1950). *प्रेमघन सर्वस्व (भाग 2)* (पृ. 112–115). हिंदी साहित्य कुटीर.
5. शर्मा, रामविलास. (1975). *भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा* (पृ. 45–52). राजकमल प्रकाशन.
6. शुक्ल, रामचंद्र. (1930). *हिंदी साहित्य का इतिहास* (पृ. 210–218). नागरी प्रचारिणी सभा.
7. सिंह, नामवर. (1998). *हिंदी परंपरा और आधुनिकता* (पृ. 88–95). राजकमल प्रकाशन.
8. अग्रवाल, वासुदेव शरण. (1952). *कला और संस्कृति*. साहित्य भवन लिमिटेड.
9. चौहान, ईश्वर सिंह. (सं.). (2010). *1857 का स्वतंत्रता संग्राम: ऐतिहासिक और साहित्यिक विमर्श*. हिन्दी साहित्य अकादमी.
10. दास, राधाकृष्ण. (1976). *भारतेन्दु बाबु हरिश्चंद्र का जीवन चरित्र*. हिन्दी समिति.
11. देवसरे, हरिकृष्ण. (2007). *1857 स्वतंत्रता का महासंग्राम*. डायमंड बुक्स.
12. दिनकर, रामधारी सिंह. (2004). *संस्कृति के चार अध्याय*. लोकभारती प्रकाशन.
13. दूबे, शकुन्तला. (1997). *भारतेन्दुयुगीन निबन्ध साहित्य में युगीन चेतना की अभिव्यक्ति*. सद्भावना प्रकाशन.
14. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (1995). *हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास*. राजकमल प्रकाशन.

डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका और भारतीय संस्कृति पर प्रभाव

Aditya Kumar*
aaditay2020@gmail.com

Ranjeet Kumar Rai†
ranjeetrai@bhu.ac.in

Dr. Bala Lakhendra‡
drbala@bhu.ac.in

सारांश

डिजिटल तकनीक के तीव्र और निरंतर विकास ने हिंदी पत्रकारिता के स्वरूप, उद्देश्य तथा प्रभाव क्षेत्र में व्यापक और गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। जहाँ पहले हिंदी पत्रकारिता मुख्यतः मुद्रित माध्यमों तक सीमित थी, वहीं आज यह डिजिटल प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया, वेब पोर्टल, मोबाइल एप्लिकेशन और मल्टीमीडिया स्वरूपों के माध्यम से एक विस्तृत और गतिशील संचार प्रणाली का रूप ले चुकी है। इस परिवर्तन ने हिंदी पत्रकारिता को केवल सूचना प्रसारण के साधन से आगे बढ़ाकर सामाजिक विमर्श और सांस्कृतिक निर्माण की एक सशक्त संस्था के रूप में स्थापित किया है। डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता की पहुँच न केवल भौगोलिक सीमाओं से परे गई है, बल्कि इसने समाज के उन वर्गों को भी अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया है जो पहले मुख्यधारा के मीडिया से वंचित थे। ऑनलाइन मंचों ने भाषाई विस्तार, सांस्कृतिक विविधता और जनभागीदारी को प्रोत्साहित किया है। स्थानीय मुद्दे, लोकसंस्कृति, क्षेत्रीय परंपराएँ और सामाजिक सरोकार अब व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचने लगे हैं, जिससे सांस्कृतिक लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को बल मिला है। हालाँकि, डिजिटल हिंदी पत्रकारिता के इस विस्तार के साथ कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। तीव्र प्रतिस्पर्धा और अधिक दृश्यता की होड़ में भाषाई शुद्धता का हास, हिंग्लिश का बढ़ता प्रयोग, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ तथा सतही और सनसनीखेज सामग्री का प्रसार देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त, भ्रामक सूचनाओं और अप्रमाणिक समाचारों ने सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को प्रभावित करने की संभावनाएँ भी बढ़ा दी हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता की बदलती भूमिका तथा भारतीय संस्कृति पर इसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। विषय-वस्तु विश्लेषण एवं तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि डिजिटल हिंदी पत्रकारिता किस प्रकार सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक मूल्यों और भाषाई संरचना को प्रभावित कर रही है।

कुंजी शब्द:

डिजिटल पत्रकारिता, हिंदी मीडिया, भारतीय संस्कृति, न्यू मीडिया, हिंग्लिश, सांस्कृतिक परिवर्तन

भूमिका

हिंदी पत्रकारिता भारतीय समाज में केवल समाचारों के संप्रेषण का माध्यम नहीं रही है, बल्कि उसने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण, सामाजिक सुधार की प्रक्रिया तथा सांस्कृतिक जागरण में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के युग से आरंभ होकर हिंदी पत्रकारिता ने सामाजिक कुरीतियों, औपनिवेशिक दमन और सांस्कृतिक पतन के विरुद्ध जनमत निर्माण का कार्य किया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं ने स्वदेशी चेतना, राजनीतिक जागरूकता और सामाजिक एकता को सुदृढ़ करने में उल्लेखनीय योगदान दिया। स्वतंत्रता के बाद भी हिंदी पत्रकारिता लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय और जनसरोकारों की अभिव्यक्ति का एक प्रमुख माध्यम बनी रही। इस प्रकार

* Research Scholar, DJMC, Banaras Hindu University, Varanasi

† Research Scholar, DJMC, Banaras Hindu University, Varanasi

‡ Associate Professor, DJMC, Banaras Hindu University, Varanasi

हिंदी पत्रकारिता को भारतीय समाज के सार्वजनिक विमर्श के एक सशक्त मंच के रूप में देखा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में प्रवेश करते ही डिजिटल क्रांति ने पत्रकारिता की संरचना, भाषा, कार्यप्रणाली और उद्देश्यों में मूलभूत परिवर्तन उत्पन्न कर दिए हैं। पारंपरिक मुद्रित पत्रकारिता, जो संपादकीय नियंत्रण और सीमित पाठक वर्ग पर आधारित थी, अब डिजिटल प्लेटफॉर्म आधारित पत्रकारिता में परिवर्तित हो चुकी है। समाचार वेबसाइट, सोशल मीडिया, मोबाइल एप्लिकेशन, वीडियो प्लेटफॉर्म और पॉडकास्ट जैसे माध्यमों ने सूचना के संप्रेषण को अधिक तीव्र, व्यापक और बहुआयामी बना दिया है। आज समाचार केवल अगली सुबह के अखबार तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे निरंतर अद्यतन होने वाली डिजिटल प्रक्रिया का हिस्सा बन गए हैं। डिजिटल पत्रकारिता का यह रूपांतरण केवल तकनीकी नहीं है, बल्कि गहराई से सांस्कृतिक भी है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो संचार माध्यम केवल सूचना का वाहक नहीं होते, बल्कि वे सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य और सामूहिक व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं। डिजिटल हिंदी पत्रकारिता ने भारतीय समाज में संवाद की प्रकृति को बदला है। पाठक अब केवल निष्क्रिय ग्रहणकर्ता नहीं रहा, बल्कि वह टिप्पणी, साझा करने और प्रतिक्रिया के माध्यम से विमर्श का सक्रिय सहभागी बन गया है। इससे सार्वजनिक संवाद के दायरे का विस्तार हुआ है, जिसे 'डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र' के रूप में समझा जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से डिजिटल हिंदी पत्रकारिता को मीडिया पारिस्थितिकी और सांस्कृतिक निर्माण की अवधारणा के माध्यम से समझा जा सकता है। डिजिटल माध्यम न केवल यह निर्धारित करते हैं कि कौन-सी सूचना उपलब्ध होगी, बल्कि यह भी तय करते हैं कि वह सूचना किस रूप में प्रस्तुत की जाएगी और समाज उसे किस प्रकार ग्रहण करेगा। एल्गोरिदम आधारित कंटेंट वितरण ने लोकप्रियता, दृश्यता और बाजार मूल्य को पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण मानदंड बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप भाषा में सरलता, मिश्रित शब्दावली और दृश्य प्रभावों की प्रधानता बढ़ी है।

डिजिटल हिंदी पत्रकारिता ने जहाँ एक ओर भाषाई विस्तार, क्षेत्रीय संस्कृतियों के प्रसार और हाशिए के वर्गों की आवाज को मंच प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। हिंग्लिश का बढ़ता प्रयोग, उपभोक्तावादी दृष्टिकोण, सतही और त्वरित सामग्री की प्रवृत्ति तथा सनसनीखेज प्रस्तुतियाँ हिंदी की भाषाई गरिमा और सांस्कृतिक गहराई को प्रभावित कर रही हैं। इसके अतिरिक्त, भ्रामक सूचनाओं और अप्रमाणित समाचारों का प्रसार सामाजिक तनाव और सांस्कृतिक विभाजन की संभावनाएँ भी उत्पन्न करता है। इन परिस्थितियों में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि डिजिटल युग की हिंदी पत्रकारिता भारतीय संस्कृति को किस दिशा में प्रभावित कर रही है। क्या यह सांस्कृतिक संरक्षण और पुनरुत्थान का माध्यम बन रही है, या बाजार-प्रधान संरचना के कारण सांस्कृतिक मूल्यों से विचलित हो रही है? प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं प्रश्नों को केंद्र में रखते हुए डिजिटल हिंदी पत्रकारिता और भारतीय संस्कृति के अंतर्संबंधों का समाज शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

शोध के उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता की बदलती भूमिका को विस्तार से समझना है। यह अध्ययन पारंपरिक मुद्रित मीडिया से लेकर आधुनिक डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया तक हिंदी पत्रकारिता में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करता है, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि अब यह समाज में किस तरह प्रभाव डाल रही है। इसके साथ ही, शोध यह भी देखने का प्रयास करता है कि डिजिटल माध्यमों के जरिए भारतीय संस्कृति का प्रसार और संरक्षण किस हद तक हो रहा है और इसके कारण संस्कृति में किस प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न हो रहे हैं। भाषा, सांस्कृतिक मूल्य और सामाजिक विमर्श पर डिजिटल पत्रकारिता के प्रभावों को समझना भी इस अध्ययन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। अंततः, शोध सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का तुलनात्मक मूल्यांकन करके डिजिटल हिंदी पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति, उसकी चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाएँ उजागर करने का प्रयास करता है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में हिंदी पत्रकारिता और डिजिटल मीडिया के प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। इस शोध में डेटा के लिए व्यापक और व्यवस्थित स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में डिजिटल हिंदी समाचार पोर्टल, वेब न्यूज और ऑनलाइन लेखों का अवलोकन किया गया, ताकि वर्तमान डिजिटल पत्रकारिता की वास्तविक परिस्थितियों, भाषा और विमर्श की संरचना को समझा जा सके। द्वितीयक स्रोतों में पुस्तकें, शोध पत्र, सरकारी रिपोर्ट और मीडिया संस्थानों की आधिकारिक वेबसाइटों को शामिल किया गया, जिससे

अध्ययन में अकादमिक और वैध संदर्भों का संतुलन बना रहे। विश्लेषण की मुख्य विधि के रूप में विषय-वस्तु विश्लेषण का प्रयोग किया गया, जिससे डिजिटल समाचारों में प्रयुक्त भाषा, शीर्षकों की शैली और सांस्कृतिक संदर्भों का सूक्ष्म परीक्षण संभव हुआ। इसके अतिरिक्त, तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति के माध्यम से पारंपरिक और डिजिटल पत्रकारिता के स्वरूप, उद्देश्यों और सांस्कृतिक प्रभावों के बीच अंतर और समानताओं का विश्लेषण किया गया।

अध्ययन की गहराई बढ़ाने के लिए विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म पर लगातार निगरानी और पाठक प्रतिक्रियाओं का अवलोकन भी किया गया, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निष्कर्ष केवल सतही निरीक्षण पर आधारित न हों। इस पद्धति से शोध हिंदी पत्रकारिता के सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई आयामों को व्यापक और गहन तरीके से समझने में सक्षम है।

डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप

डिजिटल युग ने हिंदी पत्रकारिता की प्रकृति को बहुआयामी और गतिशील बना दिया है। पारंपरिक मुद्रित माध्यमों की तुलना में डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे समाचार वेबसाइट, यूट्यूब चैनल, पॉडकास्ट और सोशल मीडिया ने समाचार के उत्पादन, वितरण और उपभोग के तरीके में मूलभूत बदलाव किए हैं। इन माध्यमों ने सूचना के संप्रेषण को अधिक लोकतांत्रिक और सुलभ बनाया है, जिससे अब हर वर्ग और क्षेत्र के लोगों तक समाचार पहुँच रहे हैं। डिजिटल पत्रकारिता न केवल समाचार का स्रोत बन गई है, बल्कि यह सामाजिक विमर्श, सांस्कृतिक संवाद और नागरिक सहभागिता का एक सक्रिय मंच भी बन चुकी है।

त्वरित सूचना और व्यापक पहुँच

डिजिटल प्लेटफॉर्म ने समाचार और सूचना के प्रसार को ऐसे स्तर तक पहुँचाया है जो पहले केवल शहरी या विकसित क्षेत्रों तक सीमित था। अब समाचार वास्तविक समय में उपलब्ध होते हैं, जिससे ग्रामीण, आदिवासी और पिछड़े क्षेत्रों के नागरिक भी राष्ट्रीय और स्थानीय घटनाओं के प्रति तुरंत जागरूक हो जाते हैं। मोबाइल फोन, इंटरनेट और डिजिटल एप्लिकेशन ने सूचना की यह पहुँच तेजी से बढ़ाई है, जिससे शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच सूचना की खाई कम हुई है। इस व्यापक पहुँच ने न केवल समाचार के लोकतंत्रीकरण को सुदृढ़ किया है, बल्कि नागरिकों की सामाजिक भागीदारी, राजनीतिक जागरूकता और समुदाय में सक्रिय संवाद को भी प्रोत्साहित किया है। इसके परिणामस्वरूप, जनता अब केवल सूचनाओं की उपभोक्ता नहीं रह गई है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श में एक सक्रिय सहभागी बन गई है।

जनभागीदारी और संवाद

डिजिटल प्लेटफॉर्म ने पाठकों को केवल निष्क्रिय उपभोक्ता बनने से रोक कर उन्हें संवाद का सक्रिय हिस्सा बना दिया है। सोशल मीडिया, न्यूज वेबसाइटों के कमेंट सेक्शन, लाइव स्ट्रीमिंग और ऑनलाइन फोरम के माध्यम से पाठक पत्रकारों और अन्य पाठकों के साथ सीधे संवाद कर सकते हैं। इस इंटरैक्टिव प्रक्रिया से जनसंवाद सशक्त होता है और पत्रकारिता की पारदर्शिता तथा जवाबदेही में वृद्धि होती है। पाठक अपने विचार व्यक्त करते हैं, सवाल पूछते हैं और सामग्री पर प्रतिक्रिया देते हैं, जिससे समाचार केवल सूचना का माध्यम नहीं रह जाता, बल्कि यह एक सामाजिक प्रक्रिया और सार्वजनिक विमर्श का महत्वपूर्ण घटक बन जाता है। डिजिटल पत्रकारिता ने इस तरह समाज के विभिन्न वर्गों को अपनी आवाज देने और सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर प्रदान किया है।

हाइपर-लोकल पत्रकारिता

डिजिटल पत्रकारिता ने स्थानीय मुद्दों, क्षेत्रीय भाषाओं, लोकसंस्कृति और परंपराओं को व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अब ग्रामीण त्योहार, सामुदायिक परंपराएँ, स्थानीय कला और सांस्कृतिक गतिविधियाँ ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से वैश्विक स्तर पर साझा की जा सकती हैं। हाइपर-लोकल पत्रकारिता ने न केवल स्थानीय मुद्दों को मुख्यधारा में स्थापित किया है, बल्कि सांस्कृतिक विविधता और क्षेत्रीय पहचान को भी सशक्त किया है। इससे स्थानीय समुदायों में अपने सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता और गर्व की भावना बढ़ी है, और साथ ही पूरे समाज में बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक संवाद को भी बढ़ावा मिला है।

भारतीय संस्कृति पर डिजिटल हिंदी पत्रकारिता का प्रभाव

डिजिटल हिंदी पत्रकारिता ने भारतीय संस्कृति के प्रसार, संरक्षण और परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डिजिटल प्लेटफॉर्मों ने लोक परंपराओं, त्यौहारों, क्षेत्रीय कलाओं और भाषाई विविधता को व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुंचाया है। इससे न केवल प्रवासी भारतीयों को अपनी जड़ों और सांस्कृतिक पहचान से जोड़ने का अवसर मिला है, बल्कि ग्रामीण और हाशिए के समुदायों की सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता पाने लगी हैं।

सांस्कृतिक विमर्श और सामाजिक संवाद के डिजिटल माध्यमों ने स्थानीय कला, हस्तशिल्प और परंपराओं को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया है। इसके परिणामस्वरूप भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में जागरूकता बढ़ी है और समाज में बहुसांस्कृतिक संवाद को बल मिला है।

हालाँकि, डिजिटल पत्रकारिता के प्रसार के साथ कुछ नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए हैं। हिंग्लिश का बढ़ता प्रयोग, सनसनीखेज और सतही कंटेंट, तथा उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों ने हिंदी भाषा और सांस्कृतिक गहराई को प्रभावित किया है। फेक न्यूज और अप्रमाणिक सूचनाएँ भी सांस्कृतिक ध्रुवीकरण और सामाजिक तनाव को जन्म दे रही हैं। इस प्रकार, डिजिटल हिंदी पत्रकारिता भारतीय संस्कृति के लिए दोहरी भूमिका निभा रही है। यह एक ओर संस्कृति के संरक्षण और विस्तार का माध्यम बन रही है, जबकि दूसरी ओर भाषा और सांस्कृतिक मूल्य पर चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही है।

सकारात्मक प्रभाव

डिजिटल हिंदी पत्रकारिता ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण, प्रसार और सामाजिक जागरूकता में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पारंपरिक मुद्रित मीडिया की तुलना में डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे समाचार वेबसाइट, सोशल मीडिया, वीडियो पोर्टल और लाइव स्ट्रीमिंग ने भारतीय त्योहारों, परंपराओं और सांस्कृतिक आयोजनों को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने का अवसर प्रदान किया है। होली, दिवाली, छठ, नवरात्रि, मकर संक्रांति और अन्य लोक पर्वों की कवरेज अब केवल राष्ट्रीय दर्शकों तक सीमित नहीं रही। प्रवासी भारतीय और विदेशी दर्शक भी इन्हें ऑनलाइन देख सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति का वैश्विक स्तर पर सम्मान बढ़ा है और सांस्कृतिक जागरूकता का विस्तार हुआ है।

डिजिटल पत्रकारिता ने प्रवासी भारतीयों का सांस्कृतिक जुड़ाव भी मजबूत किया है। विदेशों में रहने वाले लोग अब अपनी जड़ों और परंपराओं से जुड़े रह सकते हैं और अपने बच्चों को भारतीय त्योहारों, लोककथाओं और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से परिचित करा सकते हैं। डिजिटल मीडिया के माध्यम से प्रवासी भारतीय अपनी सांस्कृतिक पहचान को साझा कर सकते हैं और वैश्विक समुदाय में अपनी सांस्कृतिक भागीदारी अनुभव कर सकते हैं। यह उन्हें अपनी संस्कृति को बनाए रखने और आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाने का सशक्त अवसर देता है।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल पत्रकारिता ने लोकभाषाओं और क्षेत्रीय संस्कृतियों के पुनरुत्थान में भी योगदान दिया है। ग्रामीण और हाशिए के क्षेत्रों के कलाकार, संगीतकार, नर्तक और शिल्पकार अब अपने कार्यों को ऑनलाइन प्रदर्शित कर सकते हैं। इससे उनकी सांस्कृतिक विरासत संरक्षित रहती है और नई पीढ़ी को अपनी भाषा, कला और परंपराओं के महत्व को समझने और अपनाने का अवसर मिलता है। डिजिटल मीडिया ने स्थानीय कलाकारों और सांस्कृतिक समूहों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया है, जिससे उनकी कला और परंपराएँ मान्यता प्राप्त कर रही हैं।

अंततः, डिजिटल हिंदी पत्रकारिता ने सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, सामाजिक न्याय और लोक कल्याण जैसे विषयों पर डिजिटल प्लेटफॉर्म ने जनता को जानकारी, बहस और संवाद का अवसर दिया है। नागरिक अब केवल जानकारी ग्रहण करने वाले नहीं रहे, बल्कि डिजिटल माध्यम के जरिए सक्रिय रूप से चर्चा और प्रतिक्रिया में भाग ले सकते हैं।

इस प्रकार, डिजिटल हिंदी पत्रकारिता भारतीय संस्कृति के सकारात्मक पहलुओं को संरक्षित करने, वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत करने, प्रवासी समुदायों को जोड़ने, लोकभाषाओं और क्षेत्रीय संस्कृतियों का पुनरुत्थान करने और समाज में जागरूकता बढ़ाने में एक सशक्त, प्रभावशाली और व्यापक माध्यम बनकर उभरी है।

नकारात्मक प्रभाव

डिजिटल हिंदी पत्रकारिता ने भारतीय संस्कृति के प्रसार और संरक्षण में योगदान दिया है, लेकिन इसके साथ ही कई नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए हैं, जो भाषा, सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक व्यवहार पर गंभीर चुनौती पेश कर रहे हैं।

सबसे प्रमुख नकारात्मक प्रभाव हिंग्लिश और भाषाई अपवित्रता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर खोज इंजन अनुकूलन (SEO) और अधिक दृश्यता पाने की होड़ ने हिंदी भाषा में अंग्रेजी शब्दों और संकृतियों के उपयोग को बढ़ावा दिया है। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक हिंदी शब्दावली और वाक्य संरचना की शुद्धता प्रभावित हुई है। भाषा का यह संकरण न केवल सांस्कृतिक गहराई को कमजोर करता है, बल्कि नए पाठकों और युवा पीढ़ी के बीच हिंदी के मूल स्वरूप के प्रति जागरूकता को भी कम कर देता है।

दूसरा नकारात्मक प्रभाव सनसनीखेज और क्लिकबेट संस्कृति का बढ़ना है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर व्यूज और क्लिक प्राप्त करने के लिए समाचार और सामग्री का स्वरूप अक्सर आकर्षक और सनसनीपूर्ण बनाया जाता है। गंभीर, विश्लेषणात्मक और सांस्कृतिक मुद्दों पर आधारित सामग्री की तुलना में, उपभोक्ताओं का ध्यान अधिकतर मनोरंजन और आकर्षक शीर्षकों की ओर खिंच जाता है। इससे पत्रकारिता का पारंपरिक उद्देश्य - समाज में सूचनाओं के माध्यम से जागरूकता और विवेक विकसित करना - कम प्रभावशाली होता जा रहा है।

तीसरा नकारात्मक प्रभाव उपभोक्तावादी मानसिकता का विस्तार है। डिजिटल पत्रकारिता ने समाचार और सांस्कृतिक सामग्री को उपभोक्ता वस्तु में बदल दिया है। तेजी से खपत होने वाले समाचार और मनोरंजक कंटेंट के कारण लोग केवल सतही जानकारी का उपभोग करते हैं, जबकि गहन विश्लेषण, सांस्कृतिक विमर्श और गंभीर सोच की जगह कम हो रही है। यह समाज में सांस्कृतिक और बौद्धिक स्तर पर गहराई की कमी उत्पन्न कर रहा है।

अंततः, फेक न्यूज और सांस्कृतिक धुवीकरण एक और गंभीर चुनौती है। अप्रामाणिक और भ्रामक समाचार तेजी से फैलते हैं और समाज में मतभेद, असहमति और सांस्कृतिक अस्थिरता को जन्म देते हैं। ऐसे कंटेंट से लोगों में भ्रम और संदेह की भावना बढ़ती है और सांस्कृतिक मूल्यों तथा सामाजिक विश्वास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार, डिजिटल हिंदी पत्रकारिता भारतीय संस्कृति के लिए दोहरी भूमिका निभा रही है। जहां यह संस्कृति के संरक्षण, प्रसार और सामाजिक जागरूकता का माध्यम है, वहीं यह हिंग्लिश, क्लिकबेट, उपभोक्तावाद और फेक न्यूज जैसी समस्याओं के माध्यम से भाषा, सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक समरसता पर दबाव डाल रही है। इसलिए डिजिटल पत्रकारिता में संतुलन, सांस्कृतिक जिम्मेदारी और गुणवत्ता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

डिजिटल बनाम पारंपरिक पत्रकारिता : एक तुलनात्मक दृष्टि

हिंदी पत्रकारिता के विकास में पारंपरिक और डिजिटल दोनों माध्यमों का अलग-अलग महत्व रहा है। पारंपरिक पत्रकारिता, जो मुद्रित अखबार, पत्रिकाएँ और रेडियो आधारित थीं, भाषा, उद्देश्य और नियंत्रण के दृष्टिकोण से एक मानकीकृत और सुसंगठित स्वरूप में कार्य करती थीं। पारंपरिक पत्रकारिता की भाषा मानक और साहित्यिक होती थी, जिसमें व्याकरण, शैली और सांस्कृतिक शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता था। इसके माध्यम से पाठकों को केवल सूचना ही नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति के प्रति संवेदनशीलता और नैतिक दृष्टिकोण भी प्रदान किया जाता था।

नियंत्रण का दृष्टिकोण भी पारंपरिक पत्रकारिता में संपादक आधारित था। संपादक की जिम्मेदारी यह सुनिश्चित करना होती थी कि समाचार सटीक, संतुलित और निष्पक्ष हो। इसका उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं था, बल्कि समाज में जिम्मेदारी पूर्ण जागरूकता और विवेक विकसित करना था। इसी कारण पारंपरिक पत्रकारिता के उद्देश्य में सामाजिक सरोकार और सामूहिक हित प्रमुख रूप से दिखाई देते थे।

वहीं, डिजिटल पत्रकारिता ने पत्रकारिता के स्वरूप को मूलतः बदल दिया है। डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे न्यूज वेबसाइट, सोशल मीडिया और मोबाइल ऐप्स पर संकरित और अनौपचारिक भाषा का अधिक प्रयोग होता है। वायरल होने की प्रवृत्ति के कारण अक्सर भाषा और शैली में तात्कालिकता और सरलता को प्राथमिकता दी जाती है।

नियंत्रण का दृष्टिकोण भी डिजिटल मीडिया में एल्गोरिदम आधारित हो गया है। एल्गोरिदम तय करते हैं कि कौन-सा समाचार अधिक दर्शकों तक पहुंचेगा, जिससे व्यूज और ट्रैफिक अधिक हो। इस कारण डिजिटल पत्रकारिता का उद्देश्य अधिकतर व्यापारिक और उपभोक्तावादी हो गया है, जबकि सामाजिक और सांस्कृतिक जिम्मेदारी को अक्सर हाशिए पर रखा जाता है।

इस प्रकार, पारंपरिक और डिजिटल पत्रकारिता के बीच भाषा, नियंत्रण और उद्देश्य के स्तर पर स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। जबकि पारंपरिक पत्रकारिता संस्कृति, नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी पर केंद्रित थी, डिजिटल पत्रकारिता तेजी, पहुंच और व्यापक दर्शक तक पहुंच को प्राथमिकता देती है। इस तुलनात्मक दृष्टि से स्पष्ट होता है कि डिजिटल और पारंपरिक पत्रकारिता के बीच संतुलन और जिम्मेदारी बनाए रखना आज की पत्रकारिता की प्रमुख चुनौती बन गई है।

निष्कर्ष

डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता ने भारतीय समाज और संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है। यह स्पष्ट है कि यह पत्रकारिता अब केवल सूचना का साधन नहीं रह गई है, बल्कि संस्कृति, सामाजिक जागरूकता और सार्वजनिक विमर्श का महत्वपूर्ण माध्यम बन गई है। डिजिटल प्लेटफॉर्म ने सूचना के त्वरित प्रवाह, व्यापक पहुंच और जनभागीदारी को संभव बनाया है, जिससे ग्रामीण और हाशिए के क्षेत्रों तक भी समाचार, संस्कृति और सामाजिक मुद्दों की जानकारी पहुंच रही है। साथ ही, डिजिटल पत्रकारिता ने प्रवासी भारतीयों और वैश्विक दर्शकों को भारतीय संस्कृति से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोकभाषाओं, क्षेत्रीय कला और सांस्कृतिक परंपराओं का पुनरुत्थान, त्योहारों और लोक आयोजनों का वैश्विक प्रसार इसके प्रमुख सकारात्मक पहलू हैं। इसने समाज में जागरूकता, संवाद और सहभागिता को भी बढ़ावा दिया है। हालांकि, डिजिटल पत्रकारिता के साथ कई चुनौतियाँ भी जुड़ी हैं। हिंग्लिश और भाषाई संकरण, सनसनीखेज और क्लिकबेट संस्कृति, उपभोक्तावाद और फेक न्यूज जैसी प्रवृत्तियाँ भाषा, सांस्कृतिक गहराई और सामाजिक विश्वास को प्रभावित कर रही हैं। यदि इन नकारात्मक प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया गया, तो डिजिटल पत्रकारिता समाज में सतही जानकारी और सांस्कृतिक असंतुलन को जन्म दे सकती है। अतः भविष्य की हिंदी पत्रकारिता को तकनीकी दक्षता के साथ सांस्कृतिक चेतना, भाषा की शुद्धता और नैतिक जिम्मेदारी का संतुलन बनाए रखना होगा। केवल तभी यह भारतीय संस्कृति के संवाहक और समाज के जागरूक मार्गदर्शक के रूप में अपनी भूमिका निभा सकेगी। डिजिटल युग ने अवसर और चुनौती दोनों प्रस्तुत किए हैं, और इनका संतुलित उपयोग ही हिंदी पत्रकारिता को समाज में प्रभावशाली, सशक्त और जिम्मेदार बनाएगा।

संदर्भ :-

1. द्विवेदी, ह. प्र. (2019). *हिंदी साहित्य की भूमिका*. राजकमल प्रकाशन.
2. कश्यप, श्याम, एवं कुमार, मुकेश. (2008). *खबरें विस्तार से*. राजकमल प्रकाशन.
3. Barthes, R. (1957). *Mythologies*. Éditions du Seuil.
4. Berger, P. L., & Luckmann, T. (1967). *The social construction of reality: A treatise in the sociology of knowledge*. Anchor Books.
5. Bourdieu, P. (1991). *Language and symbolic power* (J. B. Thompson, Ed.; G. Raymond & M. Adamson, Trans.). Harvard University Press.
6. कश्यप, श्याम, एवं कुमार, मुकेश. (2008). *टेलीविजन की कहानी*. राजकमल प्रकाशन.
7. कुमार, मुकेश. (2008). *नये जनसंचार माध्यम और हिंदी*. राजकमल प्रकाशन.
8. Castells, M. (2010). *The rise of the network society* (2nd ed., with a new preface). Wiley-Blackwell.

9. Fiske, J. (1994). *Media matters: Everyday culture and political change*. University of Minnesota Press.
10. लेले, मधुकर. (2011). *भारत में जनसंचार और प्रसारण मीडिया*. राधाकृष्ण प्रकाशन.
11. मंडल, दिलीप. (2011). *मीडिया का अंडरवर्ल्ड: पेड न्यूज, कॉर्पोरेट और लोकतंत्र*. राधाकृष्ण प्रकाशन.
12. नंदा, वर्तिका. (2010). *टेलीविजन और क्राइम रिपोर्टिंग*. राजकमल प्रकाशन.
13. पांडे, मृणाल. (2024). *हिंदी पत्रकारिता: एक यात्रा (हर्ष रंजन, अनुवादक)*. राधाकृष्ण प्रकाशन.
14. राय, सतीश कुमार. (2024). *हिंदी पत्रकारिता के प्रतिमान*. लोकभारती प्रकाशन.
15. Guha, R. (2007). *India after Gandhi: The history of the world's largest democracy*. HarperCollins.
16. Habermas, J. (1991). *The structural transformation of the public sphere: An inquiry into a category of bourgeois society* (T. Burger, Trans.). MIT Press.
17. राजगढ़िया, विष्णु. (2011). *जनसंचार: सिद्धांत और अनुप्रयोग*. राधाकृष्ण प्रकाशन.
18. तिवारी, अर्जुन. (1997). *हिंदी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास*. वाणी प्रकाशन.
19. Castells, M. (2010). *The rise of the network society* (2nd ed., with a new preface). Wiley-Blackwell.
20. Fiske, J. (1994). *Media matters: Everyday culture and political change*. University of Minnesota Press.
21. Guha, R. (2007). *India after Gandhi: The history of the world's largest democracy*. HarperCollins.
22. Habermas, J. (1991). *The structural transformation of the public sphere: An inquiry into a category of bourgeois society* (T. Burger, Trans.). MIT Press.
23. Jeffrey, R. (2000). *India's newspaper revolution: Capitalism, politics, and the Indian-language press, 1977–99*. Hurst.
24. Kumar, K. J. (2016). *Mass communication in India* (5th ed.). Jaico Publishing House.
25. McLuhan, M., & Fiore, Q. (1967). *The medium is the message: An inventory of effects*. Bantam Books.
26. McQuail, D. (2010). *McQuail's mass communication theory* (6th ed.). SAGE Publications.
27. Ranganathan, M., & Rodrigues, U. (2010). *Indian media in a globalised world*. SAGE Publications. <https://doi.org/10.4135/9788132105992>
28. Sen, A. (2005). *The argumentative Indian: Writings on Indian history, culture and identity*. Penguin Books

हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त कश्मीरी निर्वासन की त्रासदी

सुप्रिया कुमारी*
supriyanicki@gmail.com

डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव†
anjanisrivastava@mgcub.ac.in

सारांश -

कश्मीरी पंडितों का निर्वासन आधुनिक भारतीय इतिहास की ऐसी मानवीय त्रासदी है, जिसने एक पूरे समुदाय के सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। कश्मीर से बाहर जाने की प्रक्रिया को केवल भौगोलिक स्थानांतरण के रूप में समझना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इसके साथ व्यक्ति अपने उस परिवेश से भी अलग हो जाता है जिसमें उसकी स्मृतियाँ, परंपराएँ, पारिवारिक संबंध और सांस्कृतिक पहचान निर्मित हुई होती हैं। हिंदी उपन्यासों में इस अनुभव को संवेदना, स्मृति और पात्रों की व्यक्तिगत अनुभूतियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। इन रचनाओं में घर की याद, असुरक्षा, अपनेपन का संकट, शिविरों का जीवन, स्त्रियों की चिंता तथा पुनः अपनी जन्मभूमि में लौटने की आकांक्षा प्रमुख रूप से दिखाई देती है। निर्वासन के बाद भी कश्मीर पात्रों के मानसिक संसार में लगातार उपस्थित रहता है। इस प्रकार हिंदी उपन्यास कश्मीरी पंडितों के निर्वासन को बाहरी परिस्थितियों से उत्पन्न ऐसी त्रासदी के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसका प्रभाव व्यक्ति के वर्तमान के साथ-साथ उसकी स्मृति और भविष्य पर भी बना रहता है।

बीज शब्द -

कश्मीरी पंडित, निर्वासन, त्रासदी, कश्मीर, घर, स्मृति, अस्मिता, सांस्कृतिक पहचान, शरणार्थी जीवन, स्त्री-पीड़ा।

मूल आलेख -

कश्मीरी पंडितों का 1990 के दशक में हुआ निर्वासन कश्मीर के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास की एक अत्यंत जटिल एवं त्रासद घटना है। इसके पीछे किसी एक घटना या कारण को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, बल्कि लंबे समय से विकसित हो रही राजनीतिक अस्थिरता, 1987 के चुनावों के बाद उत्पन्न असंतोष, उग्रवादी गतिविधियों का विस्तार, धार्मिक कट्टरता, बढ़ती हिंसा, धमकियों तथा प्रशासनिक और सुरक्षा-व्यवस्था की विफलता ने मिलकर ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जिनमें कश्मीरी पंडित समुदाय के समक्ष अपनी सुरक्षा और अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया। आतंक और भय के बढ़ते वातावरण ने उनके सामान्य सामाजिक जीवन को प्रभावित किया और अंततः बड़ी संख्या में लोगों को अपनी जन्मभूमि, घर, संपत्ति, रोजगार तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश छोड़कर अन्य स्थानों की ओर जाने के लिए विवश होना पड़ा। हिंदी उपन्यासों में इस निर्वासन की पृष्ठभूमि और उसके कारणों को व्यापक सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में देखा गया है। साहित्यकारों ने यह रेखांकित किया है कि यह केवल भौगोलिक विस्थापन नहीं था, बल्कि अपने घर, स्मृतियों, सांस्कृतिक जड़ों और सामाजिक पहचान से विच्छिन्न होने की प्रक्रिया भी थी। अतः हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में कश्मीरी पंडितों के निर्वासन के कारणों को समझना उस ऐतिहासिक परिस्थिति को समझना है, जिसने एक समुदाय को अपनी ही जन्मभूमि में असुरक्षित अनुभव करने और अंततः पलायन के लिए विवश किया।

कश्मीरी पंडितों के निर्वासन की त्रासदी को समझने के लिए सबसे पहले उस भावनात्मक संबंध को समझना आवश्यक है, जो उनके जीवन और कश्मीर की भूमि के बीच रहा है। उनके लिए कश्मीर केवल रहने का स्थान नहीं था। वहाँ

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

† शोध निर्देशक एवं सह आचार्य, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

उनके परिवारों की पीढ़ियाँ बसी थीं और उसी परिवेश में उनकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहचान विकसित हुई थी। इसलिए परिस्थितियों के कारण जब उन्हें वहाँ से बाहर जाना पड़ा, तो उनके सामने केवल स्थान बदलने की समस्या नहीं थी, बल्कि अपने जीवन के परिचित आधार से अलग होने की स्थिति थी। हिंदी उपन्यासों में इस अलगाव का प्रभाव पात्रों की मानसिक अवस्था में स्पष्ट दिखाई देता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'शिगाफ' में अमिता का अनुभव यह बताता है कि निर्वासन उसके लिए किसी सामान्य विकल्प का परिणाम नहीं था। उसके सामने ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिनमें अपनी मान्यताओं और सम्मान के साथ जीवन जीने के लिए उसे अपनी जन्मभूमि से दूर होना पड़ा- "मैं आज निर्वासित हूँ...क्योंकि तुमने चुना था निहत्थों को मारना।/ मैं आज निर्वासित हूँ...मैंने चुना सम्मान से जीना...हथियार न उठाना।/ मैं आज निर्वासित हूँ...क्योंकि पूरा संसार चुप रहा...महज कुछ लोग ही तो मर रहे थे।/ मैं आज निर्वासित हूँ...क्योंकि मेरा भारतीय होने में विश्वास था।"¹ अमिता का कथन निर्वासन की विवशता के साथ उसके भीतर मौजूद नैतिक संघर्ष को भी सामने लाता है। उसके लिए अपनी पहचान और सम्मान की रक्षा करना अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार उपन्यास निर्वासन को व्यक्ति की इच्छा से होने वाली यात्रा के बजाय परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न मजबूरी के रूप में प्रस्तुत करता है।

निर्वासन की दूसरी बड़ी त्रासदी यह है कि नए स्थान पर पहुँचने के बाद भी व्यक्ति अपने अतीत से अलग नहीं हो पाता। 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' उपन्यास की पात्र शबरी के लिए घर उसके जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का साक्षी रहा है। इसलिए घर छोड़ने का विचार उसके लिए अपने ही जीवन से अलग होने जैसा है- "इस घर-आँगन से लगता है जन्म-जन्मांतर का नाता है। यहीं जन्म लिया, यहीं से ब्याही गयी और जब लौटी भी तो यहीं। यहीं रहकर एक ही जीवन में न जाने कितने जीवन जिये! तो क्या अब अन्तिम पहर में, चला-चली की इस वेला में इसे छोड़ दूँ? नहीं किसी क्रीम पर नहीं। हरगिज नहीं।"² यह प्रसंग बताता है कि घर का अर्थ केवल उसकी भौतिक संरचना तक सीमित नहीं है। उसके भीतर व्यक्ति का बचपन, पारिवारिक जीवन और अनेक निजी स्मृतियाँ सुरक्षित रहती हैं। इसलिए घर से अलग होने के बाद भी उसका मानसिक संबंध उस स्थान के साथ बना रहता है।

इसी मानसिक जुड़ाव का एक अन्य रूप क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' में दिखाई देता है। सुधा की माँ के लिए घर जीवन की अंतिम इच्छा और भावनात्मक आश्रय का प्रतीक था। लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि जिस घर में जीवन का अंतिम संस्कार होने की कल्पना थी, वही घर उसके जीवन से दूर हो गया। "मैंने इस प्यारे घर को बनाने के बाद सोचा था कि उसकी ड्योढ़ी से मेरी अर्थी जाएगी...और तभी चिता पर लेटूँगी...घर मुझे भव्य विदा कहेगा। मगर हुआ उल्टा...मेरे मन के इस घर से वह घर निकला...अर्थी में सोया...और असमय भस्म हुआ...वह मात्र घर ही नहीं...मेरी आत्मा का निवास था...मेरे देवता का निवास था...उसमें मेरा नन्दबब रहता था।"³ इस प्रसंग में घर की क्षति को व्यक्ति के आत्मिक संसार की क्षति के रूप में देखा गया है। घर के साथ व्यक्ति की धार्मिक आस्था, पारिवारिक स्मृति और भावनात्मक सुरक्षा जुड़ी होती है। इसलिए उसका छूट जाना निर्वासन की पीड़ा को और गहरा बना देता है।

'नौशीन' में घर छोड़ने की परिस्थिति के भीतर सुरक्षा और सम्मान दोनों का प्रश्न दिखाई देता है। परिवार को सीमित सामान लेकर बाहर निकलना पड़ता है। बाद में पीछे छोटे घर और उसके प्राकृतिक परिवेश की स्मृतियाँ उनके साथ बनी रहती हैं- "महीदीन चाचा ने रात को दार जी से आकर कहा था- मैं किस-किस से लडूँगा गोबरधन! बस अपनी इज्जत सहेजकर चले जाओ। मैं अकेला क्या कर सकता हूँ! हमने इसी ट्रक में कुछ बिस्तर-भांडे रखे, कुछ राशन डाला और अपनी इज्जत लेकर निकल आये।...जब भी बहार आती है, बीजी कहती है- उस दरख्त पर इतना अखरोट फला होगा, इतने गिलास लगे होंगे, इतने बादाम उतरे होंगे। सेबों के भार से तो दरख्त दोहरे हो रहे होंगे!"⁴ यहाँ पीछे छोटे पेड़ और फलदार बाग केवल प्राकृतिक वस्तुएँ नहीं रह जाते। वे उस जीवन की स्मृति बन जाते हैं जिसे परिवार परिस्थितियों के कारण छोड़ आया है। इस प्रकार निर्वासन के बाद भी अतीत वर्तमान में स्मृति के रूप में बना रहता है।

चंद्रकांता के 'कथा सतीसर' में उजड़े हुए घरों का चित्रण निर्वासन के हिंसक पक्ष को सामने लाता है। दुलारी जब अपने पुराने घर की स्थिति देखती है, तो उसे वहाँ अपने परिचित घरेलू संसार के स्थान पर विनाश और हिंसा के चिह्न दिखाई देते हैं- "उग्रों के घरोंदे, पुरखों की यादगारों से अटी धरती, हवा और मौसम की महक, सब कुछ बदल गया था। शैंडलियरों-कारपेटों से सजा घर, किसी अदेखे भूचाल से तहस-नहस हो गया हो जैसे। नक्काशीदार अखरोटी लकड़ी के पलंगों पर रजाइया-कंबल, बंडल बने बेतरतीब शक्ल में पड़े थे। अजीब-सी उबकाई लाती गन्ध कमरे में ठहर गई थी। बिस्तर पर सूखकर गाढ़े हो चुके खून और पेशाब के धब्बे देख, दुलारी का चेहरा सफेद पड़ गया। कहीं यहाँ भी भोगी गई लड़कियों की लाशें न

पड़ी हों”⁵ इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि निर्वासन के पीछे केवल घर छोड़ने की घटना नहीं, बल्कि हिंसा और भय का वह वातावरण भी है जिसने घर को ही असुरक्षित बना दिया। जिस स्थान से सुरक्षा की अनुभूति मिलनी चाहिए थी, वही भय और विनाश का प्रतीक बन जाता है।

निर्वासन के बाद व्यक्ति के भीतर लौटने की इच्छा भी लगातार बनी रहती है। ‘दर्दपुर’ में सुधा जब एन.जी.ओ. के काम से वापस कश्मीर जाती है और अपने पुराने घर को देखती है तो उसके अतीत की अनेक घटनाएँ एक साथ स्मृति में उभर आती हैं- “हम घर के बहुत नजदीक पहुँच गए हैं गुरप्रीत!... गुरप्रीत यहाँ से मेरा दूल्हा आया था। और यहाँ से मैं उसके साथ निकली थी...और यहीं से मैं सदा के लिए बच्चों को लेकर चली गयी। जिंदगी को बचाने के वास्ते!...यह एक बहुत लम्बी दर्दनाक दास्तान है।”⁶ इस प्रसंग में घर एक स्मृति-स्थल के रूप में सामने आता है। वहीं से विवाह, परिवार और फिर जीवन बचाने के लिए बाहर जाने की घटनाएँ जुड़ी हैं। इसलिए उस स्थान के पास पहुँचना अतीत के पूरे जीवन को पुनः अनुभव करने जैसा है।

निर्वासन के दौरान पीछे छोटे परिवेश की स्मृतियाँ व्यक्ति के साथ लंबे समय तक बनी रहती हैं। ‘कथा सतीसर’ में लल्ली का नए स्थान पर रहते हुए भी अपने पुराने कश्मीर को प्रकृति के माध्यम से तलाशना इसी मनःस्थिति को व्यक्त करता है- “हुआ यों कि एक ढलती साँझ कॉटेज की डेक पर आरामकुर्सी में धँसी लल्ली, दीठ के आगे दूर तक फैले ओक और डॉगवुड के वृक्षों में छूटे हुए घर के चीड़ और चिनार ढूँढ़ रही थी...तभी पेड़ों के झुरमुट के पीछे काले सुरमई मेमनों को आसमान में सिर उठाते देख लल्ली को मतिभ्रम-सा हो गया। उसने बाँह भर की दूरी पर बैठे बेटे को छूकर पूछा, “उधर उन पेड़ों के पीछे पहाड़ों की चोटियाँ-सी दिख रही है न बेटे? नवबंधन की तीन चोटियाँ।”⁷ यह प्रसंग निर्वासित व्यक्ति की स्मृति की शक्ति को दर्शाता है। वर्तमान परिवेश में मौजूद दृश्य उसे अपने पुराने परिवेश की याद दिलाते हैं। इस प्रकार जन्मभूमि भौतिक रूप से दूर होने के बावजूद मानसिक संसार में लगातार उपस्थित रहती है।

निर्वासन की प्रक्रिया में सबसे अधिक पीड़ादायक स्थिति तब उत्पन्न होती है जब परिवार को यह निश्चित नहीं होता कि वह अपने घर में फिर कभी लौट पाएगा या नहीं। ‘दर्दपुर’ में घर से बाहर जाने का अनुभव जीवन की रक्षा से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। यहाँ बाहर जाना किसी नई जगह बसने की आकांक्षा नहीं, बल्कि अस्तित्व बचाने की आवश्यकता है। इस प्रकार उपन्यास निर्वासन को जीवन और घर के बीच उत्पन्न उस संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करता है जिसमें व्यक्ति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपनी जड़ों से दूर होना पड़ता है।

इसी त्रासदी का एक व्यापक रूप ‘एक कोई था कहीं नहीं-सा’ में शिविर जीवन के चित्रण में दिखाई देता है। घर से निकलने के बाद लोगों को अत्यंत कठिन परिस्थितियों में रहना पड़ा। विशेष रूप से परिवार की महिलाओं और बच्चों के लिए यह स्थिति भय, असुरक्षा और अभाव से भरी हुई थी- “जीवन के धधकते श्मशान थे। झुलसाती धूप और तेजाब-सी बारिश में कैसे वे लोग अपने परिवार और बच्चों के साथ उन टेंटों में जीते होंगे! बारिश टेंटों के अन्दर-बाहर कीचड़ ही कीचड़ कर जाती होगी। दुर्गा से सुना था कि कीचड़ की उस ज़मीन पर उगी घास में साँप-बिच्छू भी घुस आते हैं। कहा था उसने कि जहन्नुम है वो जहन्नुम! सुबह-सुबह शौचालयों के लिए लगती लाइनें, मल के ढेर, बदबू! पानी के लिए लंबा इंतज़ार। दिशाहीन आवारा होते बच्चे जो पैसों के अभाव में जेबों से संस्कार और मूल्य निकाल-निकालकर बेचते हैं।...रात में कहीं आशंका और भय से भारी हुई बाँह अपनी जवान बेटा पर रखकर सोती माँ तो दिन-रात नहीं बुढ़ाती बेटियों के भागकर शादी करने का इंतज़ार करते बूढ़े माँ-बापा। बस जिंदगी की साँस को किसी तरह हर हाल में बचाए रखने की मजबूर कोशिश!”⁸ शिविर का यह चित्रण बताता है कि निर्वासन की पीड़ा घर छोड़ने के साथ समाप्त नहीं होती। उसके बाद शुरू होने वाला जीवन भी अनेक अभावों और असुरक्षाओं से घिरा रहता है। परिवारों को सीमित साधनों में जीवन चलाना पड़ता है और स्त्रियों तथा बच्चों की सुरक्षा एक बड़ी चिंता बन जाती है। इस प्रकार निर्वासन व्यक्ति के सामाजिक जीवन और पारिवारिक संरचना को भी प्रभावित करता है।

इन उपन्यासों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कश्मीरी पंडितों का निर्वासन कई स्तरों पर घटित होने वाली त्रासदी है। पहला स्तर घर और जन्मभूमि से अलगाव का है, दूसरा स्मृति और पहचान के संकट का, तीसरा नए स्थान पर असुरक्षित जीवन का और चौथा उस अतीत को पुनः पाने की निरंतर इच्छा का। हिंदी उपन्यास इन सभी स्तरों को पात्रों के निजी अनुभवों के माध्यम से सामने लाते हैं।

निष्कर्ष -

हिंदी उपन्यासों में कश्मीरी पंडितों के निर्वासन का चित्रण केवल ऐतिहासिक घटना के विवरण तक सीमित नहीं है। इन रचनाओं में निर्वासन व्यक्ति के भीतर घटित होने वाली ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें उसका वर्तमान अपने अतीत से लगातार टकराता रहता है। घर की स्मृति, परिवार से जुड़ी घटनाएँ, कश्मीर का प्राकृतिक परिवेश और अपने पुराने जीवन की अनुभूतियाँ निर्वासित पात्रों के मानसिक संसार में निरंतर बनी रहती हैं।

‘शिगाफ़’, ‘कथा सतीसर’, ‘दर्दपुर’, ‘नौशीन’ और ‘एक कोई था कहीं नहीं-सा’ जैसे उपन्यास यह स्थापित करते हैं कि घर से दूर होना व्यक्ति की भौतिक स्थिति को तो बदलता ही है, साथ ही उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को भी प्रभावित करता है। विशेष रूप से स्त्रियों और बच्चों के संदर्भ में निर्वासन की परिस्थितियाँ अधिक जटिल दिखाई देती हैं, क्योंकि उनके सामने सुरक्षा, परिवार और भविष्य से संबंधित अतिरिक्त चिंताएँ उपस्थित रहती हैं।

हिंदी उपन्यासों में कश्मीर की स्मृति निर्वासित जीवन का स्थायी आधार बन जाती है। व्यक्ति नए स्थान पर जीवन आरंभ कर लेता है, लेकिन उसके भीतर पुराना घर, पुराना परिवेश और अपनी जन्मभूमि लगातार जीवित रहती है। इसलिए कश्मीरी पंडितों का निर्वासन केवल स्थान से दूर होने की स्थिति नहीं, बल्कि घर, स्मृति, अस्मिता और सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े गहरे भावनात्मक विच्छेद की त्रासदी है। हिंदी उपन्यासों ने इस मानवीय पीड़ा को पात्रों के निजी अनुभवों के माध्यम से संवेदनात्मक गहराई प्रदान की है।

संदर्भ -

1. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010). *शिगाफ़*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 29
2. कांत, मीरा (2009). *एक कोई था कहीं नहीं-सा*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 181
3. कौल, क्षमा (2004). *दर्दपुर*. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. 128
4. सचदेव, पद्मा (1995). *नौशीन*. नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन. पृ. 46
5. चंद्रकांता (2002). *कथा सतीसर*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 538
6. कौल, क्षमा (2004). *दर्दपुर*. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. 79
7. चन्द्रक्रान्ता (2002). *कथा सतीसर*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 15
8. कांत, मीरा (2009). *एक कोई था कहीं नहीं-सा*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 197

दलित साहित्य में अभिव्यक्त हाशिये का समाज और मीडिया की भूमिका

शालिनी सागर*

shalinisagar68@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में दलित साहित्य में अभिव्यक्त हाशिये के समाज तथा उसके सामाजिक सरोकारों को सामने लाने में मीडिया की भूमिका का अध्ययन किया गया है। भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव, सामाजिक वंचना, आर्थिक असमानता और अस्पृश्यता के कारण दलित समुदाय लंबे समय तक हाशिये पर रहा है। दलित साहित्य ने इस समुदाय के अनुभव, संघर्ष, पीड़ा, अस्मिता और प्रतिरोध को अभिव्यक्ति प्रदान की, जबकि पत्रकारिता और मीडिया ने इन स्वर को व्यापक समाज तक पहुँचाने का कार्य किया। शोध में ज्योतिबा फुले, अछूतानंद हरिहर और डॉ. भीमराव आंबेडकर की पत्रकारिता के माध्यम से दलित चेतना के विकास तथा सामाजिक परिवर्तन के प्रयासों को रेखांकित किया गया है। प्रेमचंद और आधुनिक दलित साहित्यकारों के लेखन के संदर्भ में भी हाशिये के समाज के चित्रण का विवेचन किया गया है। साथ ही, समकालीन दौर में सोशल मीडिया, विशेषकर YouTube जैसे डिजिटल मंचों के माध्यम से दलित-बहुजन समुदायों को प्राप्त वैकल्पिक अभिव्यक्ति के अवसरों का विश्लेषण किया गया है। शोध का निष्कर्ष है कि मुख्यधारा के मीडिया की सामाजिक संरचना, विज्ञापन-केंद्रित आर्थिक व्यवस्था और सत्ता-प्रभाव के कारण हाशिये के समुदायों के मुद्दों को अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाता। ऐसी स्थिति में दलित साहित्य और वैकल्पिक मीडिया सामाजिक न्याय, समानता, अस्मिता तथा लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में उभर रहे हैं।

मुख्य शब्द:

दलित साहित्य, हाशिये का समाज, दलित चेतना, दलित पत्रकारिता, मीडिया, सोशल मीडिया, अस्मिता, सामाजिक न्याय, बहुजन मीडिया, अभिव्यक्ति।

प्रस्तावना :-

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भाषायी, कानूनी, समूह या जेंडर, जातिगत आधारित किसी भी रूप में वंचना एवं वर्जनाओं का जो शिकार है - वह है हाशिये का समाज। वह समाज जो सदियों से प्रताड़ित और शोषित होता रहा है। इन्हीं प्रताड़ित और शोषित लोगों से परिचय करवाने के लिए वर्तमान में इंटरनेट ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। वर्तमान के संजाल स्थल (Social Networking Sites), जो विश्व के अरब से अधिक लोग उपयोग कर रहे हैं। यह एक ऐसा मंच है जहाँ कोई भी व्यक्ति एक सार्वजनिक प्रोफाइल बनाकर एवं वेबसाइट पर अपने विचारों को साझा करने एवं अन्य उपयोक्ताओं के साथ सहभागिता करने की अनुमति देता है। सोशल मीडिया ने समाज की हर समस्या को व अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति को सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख लाकर प्रस्तुत किया है। सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को नया आयाम दिया है। वर्तमान परिस्थिति में बिना किसी डर के सोशल मीडिया के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति खुलकर अपने विचार रख सकता है और अनगिनत जनता तक पहुँच सकता है। मीडिया के माध्यम से विभिन्न समस्याओं से ग्रसित लोगों के मुद्दों को भी उजागर करके सफलतापूर्वक हल ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है।

* पी-एच. डी., शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

साहित्य में मीडिया के माध्यम से समाज में व्याप्त विविध समस्याओं को उजागर किया गया है। यहां तक समाज के अंतिम तबके के व्यक्ति को मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया गया है। यदि हम दलित वर्ग की बात करें तो उसे अभिव्यक्त करने में साहित्य ने निष्पक्ष होकर कार्य किया और वहीं दूसरी ओर साहित्य के इस निष्पक्ष कार्य को जन-जन तक पहुँचाने एवं इसका विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है - मीडिया ने।

हालांकि भारतीय दलित मीडिया के क्षेत्र में आश्चर्यजनक दुखद घटना है कि जिस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दलित गुम है, उसी प्रकार साहित्य, पत्रकारिता व मीडिया में भी उपेक्षित किए गए हैं। एक हजार वर्ष का भारतीय इतिहास केवल सवर्णों के इतिहास का रहा है। लेकिन वर्तमान भारत में समाज और दलित साहित्य को विश्व स्तर पर शीर्ष तक पहुँचाने में दलित पत्रकारिता की भूमिका विशिष्ट रही है। दलितों के इतिहास, साहित्य, संस्कृति, धर्म - दर्शन, समाज व लोक कलाओं को पाठकों - श्रोताओं तक पहुँचाने में दलित सम्पादकों द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण रोल अदा किया है। इस सन्दर्भ में सोशल मीडिया की बात करें तो यह एक परम्परागत पत्रकारिता का रूप ना होकर इंटरनेट के एक धरातल को निर्मित करते हैं जो सम्पूर्ण विश्व को एक समूह में जोड़ता है। यह सूचनाओं को संप्रेषित करने का ऐसा माध्यम है जिसमें हर क्षेत्र की खबरें समाहित होती हैं। सोशल मीडिया ने प्रत्येक व्यक्ति को खुला आकाश दिया है, मूकों को वाणी दी है। जबसे सोशल मीडिया अस्तित्व में आया है उसने विभिन्न विकासात्मक कार्य किये हैं, जिसके कारण जानतान्त्रिक व्यवस्था को शक्ति मिली है और देश की परिस्थिति में गुणात्मक सुधार हुआ है। साथ ही साथ हाशिये के समाज को अभिव्यक्ति मिली।

दलित साहित्य में ये आश्चर्यजनक बात है कि जिस प्रकार सामाजिक स्तर पर प्रत्येक क्षेत्र में शूद्र को उपेक्षित किया गया, उसी प्रकार साहित्य व पत्रकारिता में भी अनदेखा किया गया।

पूर्व काल में हमारे देश में बाह्य आडम्बर, अंध-विश्वास, बाल-विवाह, सती-प्रथा, दास प्रथा जैसे अनेक कू-प्रथाएं, कर्म-कांड, सामाजिक बुराईयां विद्यमान थीं। सन 1885 में राजा राम मोहन राय ने समाज व्याप्त सती-प्रथा पर कानूनी रोक लगायी। अंग्रेजों से मुक्ति का यह उत्तम प्रयास था। इसी प्रथा के विरुद्ध बंगाल के कर्मकांडी ब्राह्मणों ने इंग्लैंड में सती प्रथा जैसी कुप्रथा से मुक्ति के लिए अपील की, जिसमें राजा राम मोहन राय ने जीत हासिल की। सामाजिक कू-प्रथाओं के विरोधी राजा राम मोहन राय ने विधवा विवाह का समर्थन किया। राजा राम मोहन राय ने समाज में व्याप्त इन बुराईयों पर साहित्य के माध्यम से कड़ा प्रहार किया। इन्होंने 1929 ई. में 'संवाद कौमुदी' नामक बंगाली भाषा में साप्ताहिक पत्रिका निकाली थी। तदोपरांत उस समय फ़ारसी भाषा के प्रचलन में होने से 'भीरातूल' नामक अखबार निकाला। उसी वर्ष 'बंगदूत' नामक पत्रिका बांग्ला एवं हिंदी भाषा में और 'इंडिया हैराल्ड' नामक साप्ताहिक पत्रिका अंग्रेजी भाषा में निकाली थी।

'संतसार' नामक पत्रिका का संपादन व प्रकाशन किया महात्मा ज्योतिबा फुले ने। जिसमें इन्होंने महाराष्ट्र में स्त्रियों की दयनीय दशा व दलितों का वर्णन करते हुए, उन पर होने वाले शोषण, अत्याचारों व जुल्मों के विरुद्ध आवाज उठायी। महात्मा ज्योतिबा फुले ने मराठी भाषा में चार पुस्तकें लिखीं। यह पत्रिका में सवर्णों से शिक्षा दिलाने व नारी की सम्मानजनक स्थिति की बात करते हैं। इन्होंने अपनी लेखनी में जुल्म की शिकार, नारियों व दलितों के अधिकारों का वर्णन करते हुए उनके हित की बात की है। इन्होंने विधवा विवाह, नारी की सम्मानजनक स्थिति व इनकी शिक्षा, साथ ही दलित शिक्षा का पुरजोर समर्थन किया है। उन्होंने स्वयं विधवा स्त्री से शादी करके उसे शिक्षित किया और सावित्री बाई फुले से दलित स्त्रियों को पढ़ाने की सर्वप्रथम शुरुआत की। महात्मा ज्योतिबा फुले ने दलित उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठायी, स्त्री शिक्षा के पक्ष में इन्होंने अपनी बात रखी और नये भारत के समर्पित निर्माता व देशभक्त कहलाये। इसी सन्दर्भ में इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है - गुलामगिरी।

दक्षिण भारत में किशन भागुजी बंदसोड़े ने दलितों, शूद्रों की आवाज ऊंची करने के लिए समाचार पत्र निकालने का कार्य किया और अपना निजी छापाखाना खोला। किशन भागुजी बंदसोड़े ने अपनी पत्नी तुलसाबाई के सहयोग से वर्ष 1910 में 'निराश्रित हिन्दू नागरिक', वर्ष 1913 में 'विराट विध्वंसक' तथा वर्ष 1918 में 'मजूर' पत्रिका प्रकाशित की, किंतु आर्थिक तंगी के कारण समाचार पत्र लंबी अवधि तक नहीं चले। बाद में किशन भागुजी ने ज्ञान प्रकाश, केसरी, मुंबई वैभव तथा सुबोध आदि प्रचलित पत्रिकाओं में अस्पृश्यता के बारे में लेख लिखते रहे। किशन भागुजी बंदसोड़े के शब्द में - कलम की ताकत ही पत्रिका प्रमुख आधार है।

तदोपग्रान्त डॉक्टर भीम राव अंबेडकर जी के समकालीन स्वामी 'अछूतानंद हरिहर' ने आदि हिंदू संस्था की स्थापना की और 'आदि हिन्दू' नामक अखबार निकाला। इन्होंने भारत में सर्वप्रथम दलित हिंदी नाटकों की रचना की और गाँव-गाँव

जा कर इनका प्रस्तुतिकरण करके जनता को जाग्रत करने सुकर्म किया। इन्होंने लिखित प्रसिद्ध नाटकों में 'शम्भूकवध' एवं 'मायावध' थे। मनुस्मृति पर लिखी गई इनकी एक कविता प्रस्तुत है -

निशदिन मनुस्मृति ये, हमको जला रही है,
ऊपर उठने न देती, नीचे गिरा रही है।
ब्राह्मण व क्षत्रियों को सबको बनाया अफसर,
हमको" पुराने उतरन पहनो बता रही है।
दौलत कभी जो जोड़ो, गर तो छीन ले वह,
फिर नीचे भी कह हमारा, दिल भी दुखा रही है।
कुत्ते, बिल्ली व मक्खी, से भी बना के नीचा,
दास , शूद्र, ग्राम बाहर हमको भगा रही है।
हमको बिना मजूरी, बैलों के साथ जोते,
गाली व मार उस पर, हमको दिला रही है।
लेते बेगार खाना, तब पेट न भर देते,
बच्चे तड़पते भूखे, क्या जुल्म ढा रही है।
हे हिंदू कौम, सुन ले तेरा भला न होगा,
हम बेकसों को हरिहर गर्त रुला रही है।

डॉक्टर बी. आर. अंबेडकर 'बाबासाहेब' ने दलित पत्रकारिता के क्षेत्र में 1919 से लेकर 1930 तक सक्रिय रूप से कार्य किया। इनके समय में समाज में हो रहे ऊँच-नीच, भेदभाव, छुआछूत, जाति-पाँति में किए गए अंतर आदि को स्पष्ट रूप से देखा गया। उन्हें रहने के लिए घर नहीं मिला, उन्हें पारसी होटल में रहने तक के लिए स्थान नहीं मिला। अनेकों बार जाति को लेकर कटु वचन सहन करने पड़े।

अंततः डॉक्टर बी. आर. अंबेडकर ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विकास, नारी की समस्याओं और विशेषकर दलितों की दशा एवं दिशा सुधारने की जिम्मेदारी ली। इन्होंने दलितों के उत्थान को ही जीवन का मूल उद्देश्य स्वीकार किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने चार पत्रिकाओं का समय-समय पर प्रकाशन किया, जिनमें सर्वप्रथम 1920 में 'मूकनायक' नामक साप्ताहिक पत्रिका मराठी भाषा में प्रकाशित की। इसके माध्यम से बी. आर. अंबेडकर ने दलितों की सामाजिक दशा एवं दिशा का वर्णन साप्ताहिक पत्रिका 'मूकनायक' के प्रथम अंक में वे लिखते हैं—

“भारत एक असमानताओं का घर है। हिंदू समाज एक ऐसी बहुमंजिली इमारत है, जिसमें कोई प्रवेश द्वार नहीं है और न ही एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के लिए कोई सीढ़ी है। जो व्यक्ति जिस मंजिल में पैदा हुआ, वह उसी में मरता है।”

वही आगे लिखते हैं—

“ब्राह्मणों का उद्देश्य ज्ञान व शिक्षा का प्रचार कभी नहीं रहा। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य संचय एवं एकाधिकार रहा है।”

‘मूकनायक’ पत्रिका के एक अन्य लेख में वे लिखते हैं—

“स्वराज्य में यदि अछूतों को मौलिक अधिकार नहीं मिले, तो वह उनके लिए स्वराज्य नहीं होकर दासता की एक नई अवस्था होगी।”

यह 'मूकनायक' पत्रिका समाज के सभी शोषित दलितों की आवाज थी, जिन्हें दबा दिया गया था। किंतु बाद में राशि के अभाव के कारण यह पत्रिका बंद हो गई। स्वयं संपादक के रूप में डॉक्टर अंबेडकर ने बंबई से 3 अप्रैल 1927 को मराठी भाषा में दूसरा पाक्षिक समाचार पत्र 'बहिष्कृत भारत' नामक प्रकाशित किया। इस समाचार पत्र के संपादकीय कॉलम में लिखा गया—

“सभी तालाब और मंदिर अछूतों के लिए खुले होने चाहिए, क्योंकि वे हिंदू हैं।”

उन्होंने बंबई सरकार के बोले प्रस्ताव को व्यवहार में लाने का आग्रह किया, जिसमें सभी तालाबों को अछूतों के लिए खोला गया, ताकि समाज भी उन तालाबों का प्रयोग कर सके। उन्होंने लिखा कि इस प्रस्ताव का उल्लंघन करने वालों

को दंडित किया जाए। अंबेडकर द्वारा लिखे गए एक संपादकीय से हर तरफ तूफान आ गया और जनता में जागरूकता का प्रचार-प्रसार किया गया।

कुछ समय पश्चात दिसंबर 1930 में 'जनता' (The People) नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रथम अंक प्रकाशित किया गया। अंत में उन्होंने 'इक्वालिटी' (Equality) नामक पत्रिका निकाली, जिसमें वे लिखते हैं कि "पानी समानता का ज्वलंत प्रतीक है। जो जानवर पीते हैं और गंदा करते हैं, वह शुद्ध होता है, लेकिन अछूत के स्पर्श मात्र से पानी अपवित्र हो जाता है। यह कैसी विडंबना है?"

इन पत्रिकाओं के माध्यम से डॉक्टर अंबेडकर ने सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में जनता को जागरूक करने की पहल की और दलितों में समानता की इच्छा को जागृत किया। डॉक्टर अंबेडकर ने इनके अलावा बहुत से ग्रंथों की रचना की। इनकी सर्वप्रथम पुस्तक 'Castes in India' थी और अंतिम ग्रंथ इनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ, जो 1957 ईस्वी में 'बुद्ध और उनका धम्म' नाम से प्रचलित हुआ। उन्होंने विश्व का सबसे बड़ा ग्रंथ संविधान लिखकर देश के हर तबके के व्यक्ति को उसके अधिकार व कर्तव्य से परिचित करवाया।

इनकी आवाज़ बंबई की विधानसभा तक पूरी तत्परता के साथ सुनी जाती थी। उच्च वर्ग के बड़े नेताओं का सहयोग इन्हें विशेषकर मिला, जिनमें श्रीधर पंत और लोकमान्य तिलक आदि प्रमुख नेता थे। इन्होंने अंबेडकर के साथ न केवल प्रशंसकों की भूमिका निभाई, अपितु मित्र भी रहे। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का योगदान भारत की जनता के लिए सदैव चिरस्थायी रहेगा।

दलितों की कहानी लेखन में प्रेमचंद का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है। इन्होंने अपने पूरे जीवनकाल में 300 कहानियाँ और 12 उपन्यास लिखे। इनके लेखनकाल की संपूर्ण अवधि 8 अक्टूबर 1936 से 31 जुलाई 1980 तक रही।

प्रेमचंद के दलित लेखन की प्रारंभिक शुरुआत 'ठाकुर का कुआँ' नामक कहानी से मानी जाती है। इनके लेखन का विषय गरीब, शोषित, दलित व समाज में नारी की दयनीय स्थिति आदि था, जिससे राष्ट्रीय स्तर पर संस्कारों का निर्माण हुआ। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास 'सोज-ए-वतन' को उर्दू भाषा में लिखा, जिसे अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया। उस समय की वर्तमान सामाजिक कुरीतियों को प्रेमचंद के महत्वपूर्ण उपन्यासों में, जैसे 'गोदान', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'सेवासदन', 'निर्मला' आदि में बखूबी चित्रित किया गया।

भावनात्मक मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण कहानियों में 'ठाकुर का कुआँ', 'सवा सेर गेहूँ' व 'बड़े घर की बेटा' मानी जाती हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण विशाल देश की जनता के हृदय में संस्कार निर्माण में इनका बहुत बड़ा सहयोग रहा है।

बीते कुछ दशकों में हिंदी के दलित लेखकों, पत्रकारों व मीडिया ने बेहतरीन भूमिका निभाई है, जिनमें मोहनदास नैमिशराय, मधुकर सिंह, गिरिराज किशोर, रमणिका गुप्ता, के.पी., भगवती चरण वर्मा तथा अमृतलाल नागर आदि के नामों का उल्लेख किया जाता है। लेकिन देखने वाली बात यह है कि इनके लेखन में वह अनुभूति, रचना की प्रामाणिकता तथा भाषा-शब्दों में तीखापन या कटाक्ष नहीं है, जो दलित साहित्य में हाशिये के समाज को प्रमुख धारा से जोड़ने व अपनी अलग पहचान बनाने में सहायक हो। इस संदर्भ में हिंदी साहित्य पीछे नहीं है। वर्तमान में हिंदी दलित पत्रकारिता के अनेक नामचीन लेखकों ने अविस्मरणीय कार्य किया है, जिनमें—

1. शिवराज सिंह बेचैन — इन्होंने दलित पत्रिका पर शोध किया।
2. चंद्रभान प्रसाद — ये दलित चिंतक व सिद्धांतकार रहे हैं।
3. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर — राष्ट्रीय दलित साहित्यकार अकादमी के अध्यक्ष हैं।
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि — इनकी महत्वपूर्ण पुस्तक 'जूठन' ने मूक दलितों को स्वर दिया।
5. दया पवार — इन्होंने 'अछूत' पुस्तक की रचना करके अछूतों को उनके अधिकारों व कर्तव्यों से परिचित करवाया।

इसके अतिरिक्त श्यामलाल जेडिया, राजकिशोर, रतन कुमार सांभरिया, कहानीकार मस्तराम कपूर, दलित लेखक, चिंतक व साहित्यकार एच.एल. दुसाद, रतनचंद रोजे, श्री माता प्रसाद, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, कमल

भारती तथा प्रसिद्ध दलित कवि, साहित्यकार, पत्रकार आदि लेखकों व पत्रकारों ने दलित साहित्य पर बहुत कार्य किया है। साथ ही राजस्थान के दलित लेखकों एवं पत्रकारों में आर.के. अकोदिया, श्यामसुंदर बैरवा, कुशाल रेगर, सुरेश बुंदेल, डॉ. हेमलता अकोदिया, भंवर मेघवंशी, एम.एल. परिहार, अभिजीत कुमार, सीताराम स्वरूप, यादराम सिंह यादव आदि का लेखन 'दीक्षा दर्पण' अखबार की 10 वर्ष की रिपोर्ट के अनुसार अव्वल दर्जे का रहा।

पिछले तीन दशकों से दलित विषयों पर जोरदार लेखन का कार्य किया जा रहा है और दलितों में लगातार जागृति पैदा की जा रही है। हिंदी के प्रमुख दलित विषयक लेखक, साहित्यकार व सरस्वती पुरस्कार से सम्मानित श्री सुरेश पंडित अलवर ने डॉक्टर अंबेडकर की पत्रकारिता पर अपने विचार दिए हैं।

डॉक्टर अंबेडकर ने सभी पिछड़ी, वंचित, शोषित जातियों को अपने मानवीय अधिकार पाने के लिए व चातुर्वर्ण व्यवस्था का विरोध करने के लिए संगठित होने का आह्वान किया। अपने जीवन के उत्तरार्ध में उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। महात्मा बुद्ध की जाति-पाँति विहीन समाज व्यवस्था ने उन्हें आकर्षित किया। शूद्र या हरिजन जातियों को वे दलित कहना पसंद करते थे, क्योंकि यह शब्द उन्हें सदियों से इतिहास की याद दिलाता था। उनका मानना था कि उनकी प्रतिभा में कोई कमी न होने पर भी उन्हें जानबूझकर हीन, नीच व अस्पृश्य, अछूत बनाकर रखा गया है।

डॉक्टर बी. आर. अंबेडकर का कहना है कि हिंदुओं को चाहिए था वेद-पुराण, इसलिए उन्होंने व्यास को बुलाया, जो सवर्ण नहीं थे। हिंदुओं को चाहिए था एक महाकाव्य, इसलिए उन्होंने वाल्मीकि को बुलाया, जो अछूत थे। हिंदुओं को जरूरत पड़ी एक संविधान की और उसके लिए मुझे बुलाया गया। वे हिंदू धर्म की प्रत्येक आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हैं और प्राणी मात्र के लिए सिर्फ करुणा प्रदर्शित करते हैं। हिंदू धर्म के अनुयायी मनुष्यों के वर्ग को मनुष्य तक मानने को अस्वीकार करते हैं। वे ससर्प, गाय, बैल, कछुआ, बंदर, वृक्षों इत्यादि की पूजा करते हैं, लेकिन दलित वर्गों को मनुष्य न मानकर बराबरी का दर्जा नहीं देते।

दलितों ने अपनी अस्मिता को बचाए रखने व अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए संघर्ष किया। कुछ वर्षों पहले तक दलित अलग-अलग अत्याचारों के शिकार होते थे। इन्हें पीटा-मारा जाता था, इनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता था। सवर्ण इनकी सामूहिक रूप से हत्या करते थे। यह दलितों के संग भेदभाव का सिलसिला अब भी जारी है। दलितों ने रक्त भरे संघर्ष से अपने को सबल बनाया। इस तरह अपनी अस्मिता व संघर्ष से जूझते हुए, दलित पत्रकारिता से जूझते हुए, इन्होंने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई है।

आधुनिक लोकतांत्रिक भारत में मीडिया ने जितनी भूमिका निभाई है, उतनी ही भूमिका पत्रकारिता ने भी निभाई है। यह बात हैरान कर देने वाली है कि सन 1900 से दुनिया आधुनिकता की ओर तेजी से बढ़ रही थी और पश्चिमी दुनिया के लोगों का जोर-जबरदस्त शोषण धुंधले हो रहे थे। तब व्यक्तिगत पहचान के सवाल ने सबकी आँखें खोल दीं। शनैः-शनैः मुख्यधारा से वंचित सामाजिक समूहों के हितों को ध्यान में रखते हुए नव-विचारधारा का निर्माण किया, जहाँ सैकड़ों दलित-बहुजन वीडियो चैनल उग आए और लोकप्रिय भी रहे।

2020 से मीडिया के तेजी से काम करने का अंदाजा इस बात से लगाइए कि कम से कम दस दलित-बहुजन चैनल YouTube पर ऐसे हैं, जिनके कम से कम पाँच लाख सब्सक्राइबर हैं। ये चैनल मुख्य रूप से दलित, शोषित, बहुजनों पर सामग्री एकत्रित करके अपलोड करते हैं और प्रसिद्ध भी हैं। इनमें कुछ चैनलों की लोकप्रियता इतनी है कि उनकी छवि मिसाल के तौर पर कायम है।

'दलित चैनल नेशनल दस्तक' के 35 लाख से ज्यादा सब्सक्राइबर हैं और इनके आलेख लिखे जाने के वक्त 88 करोड़ से ज्यादा बार देखे जा चुके हैं। वर्तमान में भी मुख्यधारा के भारतीय मीडिया का एक बड़ा हिस्सा केवल विशेष वैभवशाली वर्ग के लोगों की चिंताओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है। हाशिए पर खड़ा वह संपूर्ण समाज, जिसमें देश के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक, महिलाएँ, किसान, मजदूर शामिल हैं, उनके संघर्षों व हितों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

'नेशनल इंडिया न्यूज' चैनल के वीडियो 21 करोड़ बार देखे जा चुके हैं और इनका कहना है कि अपनी आर्थिक और उच्चवर्गीय सामाजिक संरचना के कारण भारतीय मीडिया वंचित बहुसंख्यक आबादी के शत्रु का काम करता है।

उच्चवर्णीय मीडिया में जो कुछ तथाकथित प्रगतिशील या दयालु लोग हैं, उनकी एकमात्र भूमिका मेनस्ट्रीम मीडिया के बारे में भ्रम बनाए रखने की है।

‘बहुजन टीवी’ चैनल के वीडियो 16 करोड़ से ज्यादा बार देखे जा चुके हैं। यह दावा किया जाता है कि ये प्लेटफॉर्म **ज्योतिबा फुले, शाहूजी महाराज और डॉक्टर अंबेडकर के समतावादी विचार** अधिकतर लोगों तक पहुँचाने का कार्य बखूबी करेगा तथा समाज में व्याप्त पाखंड और अंधविश्वास को पूर्ण रूप से मिटाने का प्रयास करेगा। इसी के साथ पाँच लाख से ज्यादा सब्सक्राइबर वाले दलित-बहुजन YouTube चैनलों के क्लब में **दलित दस्तक, मूलनिवासी टीवी, एनएन टीवी, आवाज इंडिया टीवी, दलित न्यूज नेटवर्क, डी.एन.एन., समता आवाज टीवी, एस.एम. न्यूज, वॉइस न्यूज नेटवर्क** आदि शामिल हैं। इसके अलावा **एक्टिविस्ट वेद** जैसे लोग अपने नाम से चैनल चला रहे हैं और **‘द शूद्र’** कंटेंट डाल रहे हैं।

अब सवाल यह उठता है कि क्या यह भारतीय मीडिया के अंडरग्राउंड का स्पेस है, जिसके बारे में सभी भारतीय और विदेश के लोग जानते हों? इन सब मुद्दों पर कोई बात नहीं की जाती, किसी प्रकार की किताब नहीं लिखी जाती, कोई रिसर्च नहीं होता है। इन मंचों, प्लेटफॉर्म और क्षेत्रों में काम करने वाले पत्रकारों को कोई सम्मान नहीं देता है, बल्कि उन्हें पत्रकार मानने में भी लोग दिक्कत महसूस करते हैं। अत्यधिक सोच वाला प्रश्न यह भी है कि **आधुनिकता के इस दौर में भी दलित और बहुजनों को अपना मीडिया क्यों चाहिए?** आखिर क्या वजह है कि लोग इन्हें देख रहे हैं और सब्सक्राइबर भी कर रहे हैं?

दलित-बहुजन पत्रकारिता इसलिए आवश्यक तो नहीं कि मुख्यधारा की पत्रकारिता ने खुद को एक जाति समूह तक सीमित कर लिया है और उसी रुचि और आवश्यकता अनुसार कंटेंट क्रिएट किया जाता है। वैसे देखा जाए तो भारत में **दलित-बहुजन साहित्यकार की धारा हमेशा मौजूद रही है**, जैसे **कबीर, रैदास, ज्योतिबा फुले** और आज तक निरंतरता में मौजूद है।

वर्तमान समय में दलित साहित्य के प्रकाशकों और वितरकों का एक विशाल नेटवर्क भी देश में मौजूद है, जो लाखों की संख्या में साहित्य छापते हैं और बेचते हैं। **हिंदी, पंजाबी और मराठी भाषा में उत्तर और मध्य भारत में यह बहुत प्रचलित है।** यह सभी साहित्य मुख्यधारा के साहित्य को बराबर चुनौती दे रहा है। वहीं दूसरी ओर अखबार या टीवी चैनलों में दलितों की दखल न के बराबर रही है, क्योंकि इसके लिए **दलितों के विशाल तंत्र की आवश्यकता होती है, जिसका अभाव** हाशिए का समाज और इस पर मीडिया की भूमिका पर अनेकों सर्वे हो चुके हैं, जो विविधता वाले विशाल देश में मुख्यधारा के इशारों पर चलने वाले मीडिया की स्थिति को दर्शाते हैं। मुख्यधारा का मीडिया मुख्य रूप से सवर्णों द्वारा संचालित है। इस प्रकार की सामाजिक संरचना का असर मीडिया के कंटेंट पर भी होता है। खासतौर पर जब जाति से संबंधित कोई मसला या विवाद खबर बन जाता है, जैसे **आरक्षण से लेकर जाति जनगणना और SC/ST एक्ट** के मामले आदि।

भारत में मीडिया कंटेंट पर उसके **रेवेन्यू मॉडल** का भी प्रभाव पड़ता है। मीडिया की अधिक आमदनी विज्ञापनों से होती है। विज्ञापनदाता ऐसे मीडिया संस्थान को विज्ञापन देना पसंद करते हैं, जिनमें पाठक-दर्शक अधिक समृद्ध हों, क्योंकि उनकी ही प्रोडक्ट खरीदने की क्षमता ज्यादा होती है। इस पूरे तबके को अपनी ओर खींचने के लिए इन मीडिया संस्थानों को इस तबके की पसंद के अनुसार ही कंटेंट बनाना पड़ता है। इस स्थान पर भी **SC, ST, OBC के हित से जुड़ा कंटेंट पीछे छूट जाता है।**

निष्कर्ष :-

मीडिया के प्रसार के लिए सबसे बड़ा विज्ञापनदाता सरकार है, इसलिए मीडिया संस्थानों को बहुत बार सरकार के अनुसार कंटेंट तैयार करना पड़ता है। यहाँ पर भी आम जन के हितों को सूली पर चढ़ाया जाता है। यही सबसे बड़ा कारण है कि **विज्ञापन-केंद्रित रेवेन्यू मॉडल, सरकार का दबाव और सामाजिक संरचना का हस्तक्षेप** मीडिया पर होता है। इसी कारण ऐसा कंटेंट तैयार होता है, जिसे अब दलित-बहुजन मीडिया व साहित्य भरने की कोशिश कर रहा है।

वर्तमान दौर के जनमत हित के निर्माण में मौजूद कंटेंट विवादित नहीं है। इसके मूल्य और महत्व को समाज के प्रत्येक वर्ग समझने लगे हैं। यह कहा भी जाता है कि **जब तक मुख्यधारा के लोग वंचित धारा के लोगों का स्वर नहीं**

बनेंगे और पर्याप्त संख्या में इनके लिए अपनत्व को स्वीकारेंगे, तब तक दलित-बहुजन मीडिया और बहुजन साहित्य की कमी रहेगी।

हालाँकि मुख्यधारा या सवर्णों की मीडिया के लिए एक साथ कई सामाजिक समूहों के हित का संतुलन बना पाना कठिन होगा। लेकिन ऐसा न करने पर उस पर जातिवादी होने के आरोप लगते रहेंगे और यह अत्यंत गंभीर मसला है। इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. आंबेडकर, बी. आर. (2001). जाति का विनाश [Annihilation of caste].
2. कर्दम, जयप्रकाश. (2009). दलित विमर्श: साहित्य के आईने में. साहित्य संस्थान.
3. गुप्ता, रमणिका. (2001). दलित चेतना: साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार. समीक्षा प्रकाशन.
4. ठाकुर, हरिनारायण. (2010). दलित साहित्य का समाजशास्त्र. भारतीय ज्ञानपीठ. ISBN: 9788126320318.
5. नैमिशराय, मोहनदास. (2013). भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास (खंड 1-4). राधाकृष्ण प्रकाशन. ISBN: 9788183615617.
6. बेचैन, शयोरज सिंह. (2007). समकालीन हिंदी पत्रकारिता में दलित उवाच. अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (2009). मुख्यधारा और दलित साहित्य (3रा संस्करण). सामयिक प्रकाशन. ISBN: 9788171381722.
8. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (2001). दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. राधाकृष्ण प्रकाशन. ISBN: 9788171196906.
9. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (2020). दलित साहित्य: अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ. राधाकृष्ण प्रकाशन. ISBN: 9788183616119.
10. लिंबाले, शरणकुमार. (2005). दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (रमणिका गुप्ता, अनुवादक; 2रा संस्करण). वाणी प्रकाशन.
11. Pai, S., Babu, D. S., & Verma, R. (Eds.). (2023). *Dalits in the new millennium: Identity, social mobility and politics*. Cambridge University Press. ISBN: 9781009231206.
<https://doi.org/10.1017/9781009231220>
12. Saha, A. (2026). *Dalit identity in Indian print media: Caste, power, and representation*. Routledge. ISBN: 9781041006879.

लखनऊ नगर की झुग्गी बस्तियों की लड़कियों के स्वास्थ्य और शिक्षा पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

डॉ. स्नेह लता यादव*

drsneh.msw09@gmail.com

सारांश

भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में जलवायु परिवर्तन का असर असमान रूप से दिखाई देता है। यहाँ ग्रामीण और शहरी दोनों ही समुदाय प्रभावित होते हैं, लेकिन शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाले परिवारों पर इसका प्रभाव कहीं अधिक गहरा और सीधा पड़ता है। झुग्गी बस्तियों में रहने वाली किशोरियाँ इस संकट की सबसे संवेदनशील और प्रभावित समूह हैं। इन पर दोहरा बोझ पड़ता है- एक ओर गरीबी, भेदभाव और सामाजिक असमानता, तो दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन की वजह से बढ़ती स्वास्थ्य और शैक्षिक चुनौतियाँ। जलवायु परिवर्तन का सीधा असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है: कुपोषण, एनीमिया, जलजनित रोग (दस्त, टाइफाइड, मलेरिया, डेंगू), श्वसन संबंधी समस्याएँ और मासिक धर्म से जुड़ी असुविधाएँ इनकी जीवन गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। स्वच्छ पेयजल और पोषक आहार की कमी इनके शारीरिक विकास में बाधा डालती है। झुग्गी बस्तियों में रहने वाली किशोरियों का स्वास्थ्य और शिक्षा सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, जिससे उनका समग्र विकास रुक जाता है। यदि इस समस्या का समय रहते समाधान नहीं किया गया, तो यह भविष्य में न केवल इन किशोरियों के लिए बल्कि पूरे समाज और राष्ट्र के लिए गहरी सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न करेगा। इस शोध लखनऊ की झुग्गी बस्तियों में रहने वाली लड़कियों के जीवन पर जलवायु परिवर्तन के बहुआयामी प्रभावों को समझना है तथा बदलते मौसम की परिस्थितियाँ किस प्रकार स्वास्थ्य समस्याओं को बढ़ाती हैं, शिक्षा की निरंतरता को बाधित करती हैं और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को गहरा करती हैं।

संकेत शब्द:- जलवायु परिवर्तन, झुग्गी बस्तियाँ, किशोरियाँ, शिक्षा।

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय की सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक है। इसे केवल एक पर्यावरणीय समस्या मानना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इसके प्रभाव समाज के हर पहलू-आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य, शिक्षा और लैंगिक समानता - पर गहराई से पड़ रहे हैं। विशेष रूप से यह चुनौती उन समुदायों के लिए और भी बड़ी है जो पहले से ही गरीबी, अशिक्षा और असमानता से जूझ रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और अंतर-सरकारी पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज की रिपोर्टों के अनुसार, जलवायु परिवर्तन का प्रभाव विकासशील देशों में रहने वाली महिलाओं और किशोरियों पर सबसे अधिक पड़ता है, क्योंकि वे संसाधनों और अवसरों की दृष्टि से पहले से ही हाशिए पर हैं।

भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में जलवायु परिवर्तन का असर असमान रूप से दिखाई देता है। यहाँ ग्रामीण और शहरी दोनों ही समुदाय प्रभावित होते हैं, लेकिन शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाले परिवारों पर इसका प्रभाव कहीं अधिक गहरा और सीधा पड़ता है। झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग न केवल आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं, बल्कि उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, स्वच्छ पेयजल और सुरक्षित आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं की भी कमी होती है। ऐसे में जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियाँ जैसे - अत्यधिक तापमान, अनियमित मानसून, बाढ़, जलभराव और वायु प्रदूषण - उनके जीवन को और अधिक कठिन बना देती हैं।

* समाजकार्य कर्ता, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

लखनऊ, उत्तर प्रदेश की राजधानी, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की तेज रफ्तार के कारण निरंतर बदलते मौसम और पर्यावरणीय संकटों का सामना कर रही है। यहाँ लगातार बढ़ती आबादी, अनियंत्रित गतिविधियाँ, यातायात का दबाव और प्रदूषण ने पर्यावरणीय असंतुलन को और बढ़ा दिया है। अनियमित मानसून के कारण कभी भीषण गर्मी और सूखा तो कभी अचानक भारी वर्षा और बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है इन परिस्थितियों में झुग्गी बस्तियों में रहने वाले परिवार, जिनके पास आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा का अभाव है, जलवायु परिवर्तन के असर को सबसे पहले और सबसे गहराई से महसूस करते हैं।

झुग्गी बस्तियों में रहने वाली किशोरियाँ इस संकट की सबसे संवेदनशील और प्रभावित समूह हैं। इन पर दोहरा बोझ पड़ता है- एक ओर गरीबी, भेदभाव और सामाजिक असमानता, तो दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन की वजह से बढ़ती स्वास्थ्य और शैक्षिक चुनौतियाँ। जलवायु परिवर्तन का सीधा असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है: कुपोषण, एनीमिया, जलजनित रोग (दस्त, टाइफाइड, मलेरिया, डेंगू), श्वसन संबंधी समस्याएँ और मासिक धर्म से जुड़ी असुविधाएँ इनकी जीवन गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। स्वच्छ पेयजल और पोषक आहार की कमी इनके शारीरिक विकास में बाधा डालती है।

इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन न केवल पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को प्रभावित करता है, बल्कि यह सामाजिक संरचना और लैंगिक समानता को भी चुनौती देता है। झुग्गी बस्तियों में रहने वाली किशोरियों का स्वास्थ्य और शिक्षा सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, जिससे उनका समग्र विकास रुक जाता है। यदि इस समस्या का समय रहते समाधान नहीं किया गया, तो यह भविष्य में न केवल इन किशोरियों के लिए बल्कि पूरे समाज और राष्ट्र के लिए गहरी सामाजिक और आर्थिक समस्याएं उत्पन्न करेगा।

अध्ययन के उद्देश्य:-

1. लखनऊ नगर की झुग्गी बस्तियों में रहने वाली किशोरियों की सामाजिक - आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. जलवायु परिवर्तन का स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन।
3. जलवायु परिवर्तन से शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन।
4. किशोरियों में जलवायु परिवर्तन की समझ विकसित करने हेतु प्रयास।
5. स्वास्थ्य और शिक्षा में सुधार हेतु समाज कार्य हस्तक्षेप।

परिकल्पना:-

1. जलवायु परिवर्तन का झुग्गी बस्तियों की किशोरियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
2. जलवायु परिवर्तन से झुग्गी बस्तियों की किशोरियों की शिक्षा में अवरोध उत्पन्न होते हैं।
3. सामाजिक- आर्थिक असमानताएं और संसाधनों की कमी जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को और गहरा करती है।

अनुसंधान प्ररचना:-

प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है जिसमें झुग्गी बस्तियों की किशोरियों की सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य और शैक्षिक स्थिति का सामान्य विवरण प्रस्तुत किया गया। साथ ही यह समझने का प्रयास किया गया है कि जलवायु परिवर्तन किस प्रकार इन स्थितियों को प्रभावित करता है।

समग्र:- प्रस्तुत अध्ययन में लखनऊ जिले में पंजीकृत समस्त 783 झुग्गी बस्तियों को समग्र के रूप में सम्मिलित किया गया है जिसमें से निदर्शन विधि की लाटरी विधि द्वारा दस मलिन बस्तियों का चयन किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र:-

प्रस्तुत अध्ययन में चयनित झुग्गी बस्ती में रहने वाली 10-19वर्ष की किशोरियों का चयन किया गया है। यह आयु-वर्ग इसलिए चुना गया क्योंकि इस अवस्था में स्वास्थ्य और शिक्षा दोनों ही क्षेत्र संवेदनशील और निर्णायक होते हैं।

निदर्शन:-

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं का चयन निदर्शन की उद्देश्यपूर्ण पद्धति से किया गया है। जिसमें दस बस्तियों पलटन, गल्लामड़ी, पुरानिया, पुराना पुरावा, मडियांव, कटरा जानकीपुरम्, जगौली, अहिवारनपुर, तथा इन्दिरा नगर बस्तियों को सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में चयनित बस्तियों में से 120 किशोरियों को किया गया है।

आंकड़ों के स्रोत:-

आंकड़ों के स्रोतों को प्रलेखीय एवं क्षेत्रीय स्रोतों में विभाजित किया जा सकता है। अध्ययन में भी उपर्युक्त दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता ने किशोरियों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से उनके स्वास्थ्य, शिक्षा और जलवायु परिवर्तन से जुड़े तथ्यों को प्राप्त किया तथा द्वितीय स्रोतों के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता ने विभिन्न पुस्तकों एवं अधिनियमों तथा प्रलेखों आदि का सहारा लिया, यथेष्ट सामग्री को इस अध्ययन में सामाजिक एवं साहित्यिक रूप में सुसज्जित कर सन्निहित किया गया है तथा ही अवलोकन द्वारा झुग्गी बस्तियों की जीवन-शैली, आवासीय स्थिति, विद्यालय की सुविधाएं और स्वास्थ्य सेवाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया है।

आंकड़ों का संकलन यन्त्र:-

प्रस्तुत अध्ययन में साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन मुख्य यन्त्र के रूप में उत्तरदाताओं से आवश्यक सूचनाओं को एकत्र करने हेतु प्रयुक्त किया गया। अभिलेखों से आंकड़ों को एकत्र करने हेतु एक निश्चित प्रारूप का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों की व्याख्या व विश्लेषण:- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री आंकड़ों का सम्पादन, संकेतीकरण, वर्गीकरण का प्रयोग करके आंकड़ों का विश्लेषण किया है।

साहित्य समीक्षा-

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर वैश्विक स्तर पर अनेक शोध कार्य किये गए हैं। अधिकांश अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जलवायु परिवर्तन केवल प्राकृतिक आपदा या पर्यावरणीय समस्या नहीं है, बल्कि यह एक गंभीर सामाजिक-आर्थिक और लैंगिक असमानता का मुद्दा है। महिलाएँ और किशोरियाँ, विशेषकर शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाली, इस चुनौती से सबसे अधिक प्रभावित होती हैं।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, 2021 : यूएनडीपी की “जेंडर गैप इंडेक्स” रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया है कि भारत जैसे देशों में महिलाओं की स्थिति स्वास्थ्य, शिक्षा और सशक्तिकरण के पैमानों पर काफी कमजोर है। वैश्विक स्तर पर देखा गया है कि जलवायु परिवर्तन के समय, जैसे बाढ़, सूखा या गर्मी की लहरों के दौरान, महिलाओं को स्वास्थ्य और शिक्षा दोनों स्तरों पर अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2020: विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्ययन बताते हैं कि जलवायु परिवर्तन से जलजनित रोगों और पोषण संबंधी समस्याओं में वृद्धि होती है। किशोरियों में एनीमिया और कुपोषण के मामले ऐसे समाजों में और बढ़ जाते हैं जहाँ भोजन की असमान उपलब्धता और आर्थिक संकट अधिक है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन एफ एस-5, 2019-21): एन एफ एस-5 के अनुसार, उत्तर प्रदेश की 45 प्रतिशत से अधिक किशोरियाँ एनीमिया से ग्रस्त हैं। ग्रामीण और शहरी गरीब क्षेत्रों में विद्यालय छोड़ने की दर अधिक पाई गई। यह आँकड़े जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में और अधिक गंभीर हो जाते हैं क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं और आर्थिक संकट के दौरान सबसे पहले लड़कियों की शिक्षा पर असर पड़ता है।

सिंह, लखनऊ 2020: लखनऊ की झुग्गी बस्तियों में किए गए अध्ययन में यह समाने आया है कि मानसून के समय विद्यालय जाने वाली लड़कियों की उपस्थिति बहुत कम हो जाती है। जलभराव और असुरक्षित रास्ते उनके लिए शिक्षा में बड़ी बाधा बनते हैं। साथ ही, बारिश के मौसम में जलजनित रोग भी तेजी से फैलते हैं, जिससे स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ता है।

विश्व बैंक, 2018: विश्व बैंक की रिपोर्ट में उल्लेख है कि जलवायु परिवर्तन से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले परिवार वे हैं जो दिहाड़ी मजदूरी और असंगठित क्षेत्र में कार्यरत होते हैं। ऐसे परिवारों की लड़कियां अक्सर विद्यालय छोड़कर घर के कामों और भाई-बहनों की देखाभाल में लग जाती हैं।

यूनिसेफ, 2019: यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार, जलवायु आपदाओं (जैसे बाढ़ और सूखा) के समय विद्यालय सबसे पहले बन्द होते हैं और सबसे अधिक प्रभावित लड़कियां होती हैं कारण यह है माता-पिता सुरक्षा और घरेलू कार्यों के कारण लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को विद्यालय से निकालना उचित समझते हैं।

भारत शिक्षा सर्वेक्षण, 2017: इस सर्वेक्षण ने पाया कि शहरी गरीब इलाकों में विद्यालय छोड़ने वाली लड़कियों का प्रतिशत लड़कों की तुलना में अधिक है जलवायु परिवर्तन इस प्रवृत्ति को और तेज कर देता है क्योंकि बाढ़ और गर्मी के समय विद्यालय पहुंचना कठिन हो जाता है।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति:-

अध्ययन के आधार पर उत्तरदाताओं की सामाजिक- आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया गया। आयु के आधार पर सर्वाधिक उत्तरदाता 40.00 प्रतिशत 14-16 वर्ष की आयु वर्ग से है एवं 10-13वर्ष और 17-19 वर्ष की आयु वर्ग की किशोरियों की संख्या समान 30.00 प्रतिशत है। सर्वाधिक उत्तरदाता 82.00 प्रतिशत मुस्लिम धर्म से है जबकि 18.00 प्रतिशत हिन्दू धर्म से है। 54.00 प्रतिशत उत्तरदाता पिछड़ी जाति के है, 28.00 प्रतिशत अनुसूचित जाति से जबकि 18.00 प्रतिशत उत्तरदाता सामान्य जाति के है। शिक्षा स्तर के अनुसार अधिकांश किशोरियां 35.00 प्रतिशत केवल उच्च प्राथमिक शिक्षा की पढाई कर रही है, वहीं 30.00 प्रतिशत ने माध्यामिक तक पढाई की है, जबकि 20.00 प्रतिशत की शिक्षा केवल प्राथमिक शिक्षा तक सीमित हैं। चिंताजनक तथ्य यह है कि 15.00 प्रतिशत अभी भी निरक्षर है। उत्तरदाता के परिवार के व्यवसाय के दृष्टिकोण से अधिकांश परिवार 45.00 प्रतिशत दिहाड़ी मजदूरी पर निर्भर हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति अस्थिर रहती है और जलवायु आपदाओं के समय उनकी आय पर सीधा प्रभाव पड़ता है, इसके अतिरिक्त 25.00 परिवार घरेलू कामकाज, 15.00 प्रतिशत रिक्शा/ऑटो चलाने तथा 15.00 प्रतिशत अन्य छोटे काम जैसे ठेला लगाया आदि से अपनी आजीविका चलाते हैं।

स्वास्थ्य की स्थिति:-

अध्ययन में किशोरियों से स्वास्थ्य, जलवायु परिवर्तन और मासिक धर्म संबंधी समस्याओं पर जानकारी प्राप्त किया जिसमें अधिकांश किशोरियों 77.00 प्रतिशत ने बताया कि मौसम में बदलाव से उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है विशेष रूप से बरसात के मौसम में डायरिया 30.00 प्रतिशत, टायफाइड 18.00 प्रतिशत, डेंगू 25.00 प्रतिशत और अन्य बीमारियां 24.00 प्रतिशत सामान्य रूप से होती है। प्रदूषण का प्रभाव भी प्रमुख रूप से समाने आया जहां 57.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे बहुत अधिक, 30.00 प्रतिशत, कुछ हद तक और 13.00 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं कहा है। 70.00 प्रतिशत ने बताया कि जलभराव के कारण बीमारियों में वृद्धि हो जाती है। गर्मियों में पानी की कमी को लेकर 75.00 प्रतिशत किशोरियां का मानना है कि इसका सीधा असर उनके स्वच्छता पर पड़ता है। 79.00 प्रतिशत किशोरियां को मानना है गर्मी व वर्षा के कारण पढाई पर असर पड़ता है उनका कहना है कि पिछले कुछ सालों से अत्याधिक गर्मी के कारण विद्यालयों को यह तो बन्द कर दिया जाता है या समय कम कर दिया जाता है।

मासिक धर्म संबंधी सबसे अधिक 42.00 प्रतिशत ने बताया कि दर्द की, कमजोरी 25.00 प्रतिशत, थकान व अन्य समस्याएं 33.00 प्रतिशत कठिनाइयों का सामना उन्हें करना पड़ता है। यह समस्या गर्मी के समय 95.00 प्रतिशत ने बढ़ जाती है। सैनिटरी पैड्स या अन्य की उपलब्धता को लेकर केवल 46.00 प्रतिशत ने 'हमेंशा', 29.00 प्रतिशत ने 'कभी-कभी' और 21.00 प्रतिशत ने 'नहीं' कहा। पीरियड्स के दौरान स्कूल में अनुपस्थित रहने वाली किशोरियों की संख्या 69.00 प्रतिशत जबकि 31.00 प्रतिशत 'कभी-कभी' अनुपस्थित होती हैं। मौसम के कारण मासिक धर्म स्वच्छता में दिक्कत 65.00 प्रतिशत किशोरियों की। परिवार या समुदाय में पीरियड्स पर खुलकर चर्चा केवल 38.00 प्रतिशत के बीच होती है।

शिक्षा की स्थिति:-

अध्ययन में मौसम और जलवायु संबंधी परिस्थितियाँ विद्यार्थियों की शिक्षा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। अध्ययन में शामिल 120 उत्तरदाताओं में से 68.00 प्रतिशत ने बताया कि बरसात या जलभराव के कारण विद्यालय जाने में कठिनाई होती है। 73.00 प्रतिशत किशोरियों का मानना है गर्मियों में अत्यधिक गर्मी पढ़ाई में ध्यान केंद्रित करने में बाधा डालती है।

63.00 प्रतिशत किशोरियों ने साझा किया कि जलभराव के समय विद्यालय भवन या कक्षाएं प्रभावित होती हैं। पीने के पानी और शौचालय की कमी या साफ-सफाई के कारण 58.00 प्रतिशत का मानना है। मासिक धर्म में स्वच्छता की कमी के कारण स्कूल से 30.00 प्रतिशत किशोरियों को अवकाश करना पड़ता है, विद्यालय में पर्याप्त बिजली या पंखों की कमी से कक्षाओं में पढ़ाई बाधित होती है, 77.00 प्रतिशत किशोरियां का मानना है। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी बीमारियों जैसे डेंगू, डायरिया और टायफाइड के कारण 84.00 प्रतिशत का मानना है कि छुट्टी लेना पड़ता है। शिक्षकों की अनुपस्थिति भी मौसम या जलवायु के कारण बढ़ जाती है जिसमें 64.00 ने हां तथा 36.00 प्रतिशत ने नहीं कहा। केवल 35.00 प्रतिशत किशोरियों ने बताया कि उनके विद्यालय में जलवायु परिवर्तन और स्वास्थ्य शिक्षा के बारे में जानकारी दी जाती है।

विद्यालय तक पहुँचने का रास्ता बरसात या गर्मी में कठिन हो जाता है, 68.00 प्रतिशत ने अनुभव किया। 53.00 प्रतिशत किशोरियां का मानना है कि जलवायु परिवर्तन से शिक्षा पर असर बढ़ रहा है। मौसम की वजह से परीक्षा छूटने की घटना 38.00 प्रतिशत ने बताया। 68.00 प्रतिशत ने बताया कि विद्यालय भवन सुरक्षित और मौसम रोधी नहीं होने की बात बताई। 85.00 उत्तरदाताओं ने स्लम क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा जारी रखने के लिए विशेष सुविधाएं जैसे शौचालय, सैनिटरी पैड, साफ पानी और हेल्थ कैम्प उपलब्ध कराने की उपलब्ध कराने की आवश्यकता जतायी।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लखनऊ नगर की झुग्गी बस्तियों में निवासरत किशोरियों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर जलवायु परिवर्तन का प्रतिकूल और बहुआयामी प्रभाव पड़ रहा है। अत्यधिक गर्मी, अनियमित वर्षा, जलभराव, प्रदूषण तथा जल एवं स्वच्छता संबंधी समस्याओं के कारण डायरिया, टायफाइड, डेंगू आदि रोगों के साथ-साथ मासिक धर्म संबंधी कठिनाइयों में वृद्धि देखी गई। इन स्वास्थ्य समस्याओं का प्रत्यक्ष प्रभाव किशोरियों की विद्यालयी उपस्थिति और अध्ययन की निरंतरता पर भी पड़ता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि गरीबी, अस्थिर आजीविका, आधारभूत सुविधाओं का अभाव तथा स्वास्थ्य एवं शैक्षिक सेवाओं तक सीमित पहुँच जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को और गहरा करते हैं। अतः जलवायु परिवर्तन को केवल पर्यावरणीय समस्या न मानकर स्वास्थ्य, शिक्षा, लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय से जुड़ी समस्या के रूप में समझना आवश्यक है।

किशोरियों की स्थिति में सुधार के लिए सुरक्षित पेयजल, प्रभावी जल निकासी, स्वच्छ शौचालय, मासिक धर्म प्रबंधन की सुविधाएँ, नियमित स्वास्थ्य शिविर तथा मौसम-रोधी विद्यालयी आधारभूत संरचना सुनिश्चित करना आवश्यक है। साथ ही, जलवायु परिवर्तन एवं स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता तथा प्रतिकूल मौसम के कारण बाधित शिक्षा के लिए लचीली शिक्षण व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए। इस प्रकार सरकार, विद्यालय, स्वास्थ्य संस्थाओं, समाज कार्यकर्ताओं और समुदाय के समन्वित प्रयासों से ही इन किशोरियों के स्वास्थ्य, शिक्षा और सुरक्षित भविष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है।

सुझाव:-

स्वच्छता और जल निकासी:- झुग्गी-बस्तियों में स्वच्छ पेयजल और जलभराव को रोकने के लिए बेहतर ड्रेनेज प्रणाली सुनिश्चित की जाए।

मासिक धर्म प्रबंधन- स्कूलों में मुफ्त सैनिटरी पैड और स्वच्छ शौचालय उपलब्ध कराए जाएं।

मौसम-रोधी स्कूल - स्कूल भवनों को मौसम रोधी बनाया जाए और कक्षाओं में पर्याप्त पंखे/बिजली की व्यवस्था की जाए।

लचीली शिक्षा नीति- बीमारी या जलवायु आपदा के कारण अनुपस्थित रहने वाली लड़कियों के लिए उपचारात्मक कक्षाएं और लचीले शिक्षण कार्यक्रम शुरू किए जाएं।

जागरूकता कार्यक्रम - पाठ्यक्रम में जलवायु परिवर्तन और आपदा जोखिम न्यूनीकरण को शामिल किया जाए और किशोरियों के लिए स्वास्थ्य शिविर लगाए जाएं।

संदर्भ :

1. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP). (2021). जलवायु परिवर्तन और लैंगिक समानता: महिलाओं एवं लड़कियों पर प्रभाव. न्यूयॉर्क: यूएनडीपी प्रकाशन.
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO). (2020). जलवायु परिवर्तन एवं स्वास्थ्य रिपोर्ट. जिनेवा: विश्व स्वास्थ्य संगठन.
3. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5). (2019–21). स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार.
4. विश्व बैंक. (2018). दक्षिण एशिया में जलवायु परिवर्तन और शहरी गरीबी. वाशिंगटन डी.सी.: विश्व बैंक प्रकाशन.
5. शर्मा, पी., एवं सिंह, आर. (2020). भारत के शहरी गरीब समुदायों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव. पर्यावरण अध्ययन पत्रिका, 45(2), 121–135.
6. पांडे, ए. (2019). लखनऊ की झुग्गी बस्तियों में जलवायु परिवर्तन से स्वास्थ्य पर प्रभाव: एक अध्ययन. भारतीय जन स्वास्थ्य पत्रिका, 63(3), 165–172.
7. कुमार, एम. (2020). पर्यावरणीय क्षरण और भारतीय झुगियों में सामाजिक असमानता. सामाजिक परिवर्तन समीक्षा, 50(4), 233–251.

websites: -

<https://www.undp.org>

<https://www.unicef.org>

<https://www.who.int>

<https://climateknowledgeportal.worldbank.org>

<https://www.education.gov.in>

<https://www.education.gov.in>

Rural–Urban Labour Migration and Informal Waste Work: A Study of Environmental Injustice and Livelihood Vulnerability in Delhi-NCR

RAHUL*

rahullamba2929@gmail.com

Abstract

Rapid urbanisation in India has generated not only new economic opportunities but also new forms of labour insecurity, spatial inequality and environmental vulnerability. Delhi-NCR represents one of the most significant examples of this transformation, where the growing volume of municipal solid waste is closely connected with an extensive informal waste economy. Within this economy, waste pickers, itinerant waste collectors, scrap dealers and other informal workers perform essential functions of collection, segregation, recovery and recycling, while remaining largely outside the formal structures of employment, social security and urban citizenship. A significant section of these workers consists of migrants from rural and economically disadvantaged regions who enter the urban labour market through low-entry-barrier occupations such as waste collection and recycling.

This paper examines the relationship between rural–urban labour migration, informal waste work, environmental injustice and livelihood vulnerability in Delhi-NCR. It argues that waste is not merely an environmental or municipal-management problem but also a social and economic resource around which unequal forms of labour and value are organised. Informal waste workers contribute substantially to urban sanitation and material recovery, yet they frequently experience insecure employment, unstable income, occupational hazards, social stigma, inadequate housing and limited access to social protection. The paper further examines how processes of privatisation, mechanisation, changing waste-management infrastructures and the expansion of waste-to-energy systems can alter informal workers' access to recyclable materials and urban working spaces. Drawing upon secondary literature, government documents and existing empirical studies, the paper adopts a qualitative and analytical approach to understand the political economy and spatial dimensions of informal waste work. It concludes that environmental justice in Delhi-NCR requires not only improved waste-management infrastructure but also the recognition, protection and meaningful integration of informal waste workers into urban waste-governance systems.

Keywords:

Rural–Urban Migration, Informal Waste Workers, Waste Pickers, Environmental Injustice, Livelihood Vulnerability, Delhi-NCR, Urbanisation, Informal Economy, Environmental Justice.

* *Geography, Seth Meghraj Jindal College, Siwani (Choudhary Bansilal University Bhiwani)*

1. Introduction

The rapid expansion of Indian metropolitan regions has transformed the relationship between urbanisation, labour and the environment. Cities are increasingly presented as centres of economic opportunity, employment and modern infrastructure, but the material functioning of these cities depends upon extensive forms of labour that frequently remain invisible within formal urban planning. Waste management provides one of the clearest examples of this contradiction. Modern cities generate enormous quantities of discarded materials, but the processes through which these materials are collected, sorted, recovered, recycled and ultimately disposed of involve thousands of workers whose labour remains socially and institutionally undervalued.

Delhi-NCR occupies a particularly important position in this context. Delhi has historically relied upon both formal municipal systems and informal networks of waste collection and recycling. Academic research has shown that waste pickers and collectors constitute a crucial lower layer of the city's recycling economy. They recover recyclable materials from streets, neighbourhoods, garbage points and other locations and transfer them through networks of scrap dealers and recycling enterprises. Despite their contribution to the urban economy and environmental management, many remain economically vulnerable.

The significance of informal waste work becomes clearer when examined alongside rural–urban labour migration. Migration to metropolitan regions is not always a movement into secure formal employment. For workers with limited education, financial capital, social networks or recognised skills, urban employment is frequently obtained through informal occupations. Waste work is one such occupation because entry barriers are relatively low. It can provide immediate income without formal qualifications, although this apparent accessibility is accompanied by occupational insecurity, exposure to hazardous materials and social stigma.

The relationship between migration and waste work is therefore not accidental. It is connected to the structure of the urban informal economy itself. Migrants arriving in cities often depend upon social networks, contractors, intermediaries and community connections to obtain employment and housing. Research on Delhi's informal recycling economy has demonstrated that labour migration and status-based relations can play an important role in organising informal garbage collection.

At the same time, waste workers occupy a paradoxical position within the city. They are essential to maintaining urban cleanliness but are frequently excluded from the social and spatial privileges associated with urban citizenship. Their work is necessary for the functioning of the city, but the workers themselves are often treated as undesirable or invisible. This contradiction lies at the heart of environmental justice.

Environmental injustice occurs when environmental benefits and environmental risks are distributed unequally across social groups. In the case of informal waste workers, the contradiction is particularly striking: the wider urban population benefits from waste removal and recycling, while workers at the bottom of the waste hierarchy often experience the greatest exposure to contaminated waste, dangerous materials, smoke, dust and unsafe working environments.

Delhi's waste-management system has also undergone significant institutional transformation. The Solid Waste Management Rules, 2016 emphasised source segregation, door-to-door collection and integration of waste pickers into waste-management systems. More recently, the **Solid Waste Management Rules, 2026** have superseded the 2016 rules from 1 April 2026, expanding the regulatory framework and continuing to address systematic waste management. This policy transition makes the question of how informal workers are recognised and incorporated into contemporary waste-management systems especially important.

Delhi's waste infrastructure includes major landfill sites such as Ghazipur, Bhalswa and Okhla, while waste-to-energy facilities and other processing infrastructure have also become important components of the city's waste-management landscape. The Delhi Pollution Control Committee maintains extensive documentation on solid-waste management, including annual reports, regulatory orders and compliance material.

2. Conceptual Framework

2.1 Rural–Urban Labour Migration : Rural–urban migration is generally understood as the movement of people from rural areas towards towns and cities in search of employment, income, education and improved living conditions. However, migration should not be understood simply as a geographical movement from village to city. It is also a process of restructuring labour, social relations and access to resources. For economically vulnerable households, migration may be a livelihood strategy developed in response to inadequate agricultural employment, low rural wages, landlessness, indebtedness, seasonal employment and limited local opportunities. The city therefore becomes a destination not because it necessarily provides secure employment but because it offers a greater variety of income-generating activities.

This distinction is important for understanding waste workers. A migrant entering Delhi may not have access to formal industrial or service-sector employment. Informal waste collection can consequently become one of the available occupational options.

Recent research on Delhi's garbage economy particularly highlights the relationship between rural-to-urban migration and informal waste work. Research has documented migrant workers entering garbage collection through established networks and examining the ways in which migration, labour and social status become connected within the urban waste economy.

2.2 Informal Waste Work

Informal waste work includes a broad range of activities rather than a single occupation. These activities may include:

- collection of recyclable materials
- door-to-door waste collection
- street and roadside collection
- sorting and segregation
- transportation
- buying and selling recyclable materials

- scrap dealing
- material storage
- Processing and resale.

The informal waste economy is therefore a complex chain connecting households, waste generators, collectors, waste pickers, intermediaries, scrap dealers and recycling industries.

In Delhi, empirical research has shown that informal recyclers collect substantial quantities of recyclable materials and participate in a wider economic chain. One study based on data from informal recyclers estimated that recyclers collected approximately 50 kg of recyclable material per day and earned around ₹8,000 per month in the period studied, demonstrating both the economic importance of their labour and the low compensation relative to the value generated through recycling. Consequently, informal waste workers should not be understood simply as people who “deal with garbage.” They are participants in a resource-recovery economy.

3. Waste as an Urban Economic Resource

A major conceptual shift in contemporary waste studies is the recognition that waste is not simply useless material. Many materials classified as waste possess exchange value and can re-enter production through recycling and reuse. Plastic, paper, cardboard, glass, metal and other materials form part of commodity chains connecting urban consumption with recycling industries. Informal waste workers occupy an important position within these chains because they identify and recover materials before they are permanently disposed of.

Research on Delhi demonstrates that informal recyclers can generate environmental services by diverting recyclable material from the municipal waste stream. This creates an important paradox. The informal waste worker performs a service that benefits the municipality and urban residents, yet the worker does not necessarily receive compensation corresponding to the environmental and economic value generated. The waste economy can therefore be understood as a system of **unequal value distribution**.

At one end of the chain are consumers and commercial establishments producing waste. At the other end are recycling industries that transform recovered material into economic commodities. Between them stand workers who physically recover and sort the material. The lowest-paid participants frequently perform the most physically demanding and hazardous activities.

4. Migration and Entry into Informal Waste Work

Migration provides an important mechanism through which labour enters the urban waste economy. Rural migrants often arrive without formal employment contracts, stable accommodation or sufficient financial capital. Informal employment becomes attractive because it can provide relatively immediate income.

Waste work has several characteristics that facilitate entry:

1. relatively low educational requirements
2. limited requirement for formal certification

3. possibility of daily or frequent cash income
4. access through informal social networks
5. flexibility of working hours
6. Connection with established scrap markets.

Because the employment relationship is informal, workers may lack:

- written employment contracts
- stable wages
- paid leave
- employment insurance
- occupational safety
- pension benefits
- Formal grievance mechanisms.

The worker therefore enters the city through employment but remains outside many institutional structures of urban protection. Research on Delhi's informal garbage collectors has demonstrated how social relationships, caste and labour migration interact in establishing informal occupational arrangements.

This suggests that migration into waste work should not be interpreted merely as an individual economic decision. It is embedded in social networks and institutional structures that determine who can access particular occupations.

5. Livelihood Vulnerability among Informal Waste Workers

Livelihood vulnerability refers to the extent to which individuals or households are exposed to economic, social, environmental and institutional risks without possessing sufficient resources to respond to those risks. For informal waste workers, vulnerability operates across several dimensions.

5.1 Income insecurity

Informal waste work is strongly affected by fluctuations in recyclable-material prices, seasonal variations, access to collection areas and changes in municipal policies. Unlike formal workers receiving fixed monthly salaries, many waste workers' earnings depend upon the quantity and type of recyclable material collected.

5.2 Occupational insecurity

Informal workers can lose access to their work areas because of changes in municipal collection arrangements, private contractors, redevelopment projects, closure of waste collection points or mechanisation. Recent research on Delhi's *dhalao* closures illustrates this problem. Traditional waste-collection and sorting spaces have been replaced in some locations by compactors, material-recovery infrastructure or other uses, forcing waste pickers particularly women to shift waste-related activities into their homes.

5.3 Health and occupational hazards

Waste workers are routinely exposed to materials that may include broken glass, sharp metal, contaminated organic waste, chemical containers and other hazardous materials.

The NITI Aayog–UNDP handbook identifies waste pickers as among the most vulnerable participants in the waste-management system and identifies occupational health risks, lack of fixed income, social exclusion, inadequate basic rights and limited voice in development as major vulnerabilities.

5.4 Housing vulnerability

Many informal workers live in settlements located close to employment opportunities but lacking adequate infrastructure. The location of housing is therefore directly related to the geography of work. Moving farther away from waste-collection areas may increase transportation costs and reduce working time.

6. Environmental Injustice and Waste Work

Environmental justice traditionally asks three interconnected questions:

1. Who receives environmental benefits?
2. Who bears environmental risks?
3. Who participates in environmental decision-making?

Urban residents benefit from the removal of waste from their neighbourhoods. Municipalities benefit from the reduction of waste requiring disposal. Recycling industries benefit from the availability of recovered materials. Yet waste workers often bear the physical risks associated with collection and sorting.

The environmental injustice experienced by waste workers is therefore not simply a consequence of living near a landfill. It is embedded in the organisation of the entire waste-management system. Research on Delhi has explicitly connected informal recycling with environmental justice and political economy, arguing that changes in waste governance can simultaneously threaten informal workers' livelihoods and redistribute environmental burdens across urban populations.

7. Landfills and the Spatiality of Vulnerability

Landfills are not socially neutral spaces. Their location reflects urban land values, planning decisions and political power. When landfills are located near low-income settlements, the environmental risks associated with waste disposal become concentrated among communities with relatively limited political capacity. Delhi's major landfill sites - *Ghazipur*, *Bhalswa* and *Okhla* have become important symbols of the city's waste-management crisis. However, it would be analytically insufficient to examine landfills only as sites of pollution. They are also spaces of labour. For some informal workers, waste itself is a source of livelihood. This produces a complex relationship between environmental degradation and economic survival.

A landfill may simultaneously represent:

- environmental danger
- employment
- access to recyclable materials
- social exclusion
- economic opportunity
- Occupational risk.

The World Bank has noted that when informal waste pickers are excluded from residential collection, they may be pushed towards landfill sites, where health and environmental risks can be even greater. Policies designed to make cities cleaner can unintentionally relocate environmental risks onto the most vulnerable workers if they do not adequately account for livelihoods.

8. Formalisation, Privatisation and the Changing Waste Economy

One of the most significant transformations in urban waste management has been the movement towards formalisation, mechanisation and privatisation. The objectives of formal waste management are understandable: cities need reliable collection, transportation, segregation, processing and safe disposal systems.

If informal workers are incorporated into formal systems, they may gain:

- identity cards
- occupational protection
- access to social security
- protective equipment
- stable collection arrangements
- Recognition as environmental workers.

But if formalisation simply means replacing informal workers with private contractors or machines, existing livelihoods may be undermined.

The NITI Aayog's work on sanitation and waste management has previously recognised that modernisation, privatisation and mechanisation can threaten informal workers' access to waste as an economic resource. It has also emphasised the importance of recognising and strengthening the informal sector.

Research on Delhi similarly indicates that the expansion of private waste-management arrangements can create competition over access to recyclable materials. The key policy question, therefore, is not whether waste management should be formalised, but **what kind of formalisation is socially just.**

9. Policy and Institutional Framework

The policy framework surrounding solid waste management in India has evolved significantly. The Solid Waste Management Rules, 2016 introduced several important principles, including source segregation, door-to-door collection and mechanisms for integrating waste pickers

into waste management. The framework recognised that waste management cannot be limited to final disposal. Instead, it requires a chain involving generation, segregation, collection, processing, recycling and disposal. The Delhi Pollution Control Committee maintains records concerning implementation of solid-waste-management rules, National Green Tribunal proceedings and annual reports. An important development is the notification of the **Solid Waste Management Rules, 2026**, which came into force on 1 April 2026 and superseded the 2016 Rules. For research on contemporary Delhi-NCR, this transition is particularly important. It creates a need to examine whether new regulatory mechanisms can move beyond the recognition of waste workers in policy language towards meaningful participation in waste governance. *Recognition must include more than legal terminology. It should translate into:*

occupational identity, social security, access to protective equipment; health services, safe working spaces, livelihood protection, participation in municipal planning, Access to grievance mechanisms.

10. Gendered Dimensions of Informal Waste Work

Although the waste economy is often represented through the figure of the male rag picker, women play a substantial role in collection, sorting and household-based recycling activities. Women's vulnerability can be intensified by the combination of occupational and domestic responsibilities. Research on Delhi's *dhalao* closures demonstrates that women waste pickers can experience particularly strong spatial and livelihood impacts when traditional workspaces disappear. In some cases, homes become simultaneously residential spaces and waste-sorting workplaces. *This produces several overlapping burdens:*

unpaid domestic labour, paid waste work, exposure to waste materials, lack of dedicated workspace, childcare responsibilities, Insecure income.

11. Caste, Social Stigma and Occupational Marginalisation

Informal waste work cannot be fully understood without recognising the historical social stigma attached to waste-handling occupations in India. Waste collection has historically been associated with socially marginalised communities. Contemporary research on Delhi documents the continuing significance of caste, social status and occupational stigma within the waste economy. This does not mean that every informal waste worker belongs to one caste or community. Rather, it indicates that the social meaning of waste work is shaped by historical hierarchies. For migrant workers, this can generate a layered form of marginalisation.

A worker may experience vulnerability because of:

Migration status + informal employment + poverty + occupational stigma + insecure housing.

This also explains why the social recognition of waste work is so important. A city may value cleanliness while simultaneously devaluing the workers who make cleanliness possible.

12. Delhi-NCR as a Subaltern Urban Geography

The concept of **subaltern geography** helps explain how marginalised communities inhabit, work within and experience the city differently from socially privileged populations. The city is not experienced uniformly. For middle- and upper-income residents, waste disappears from everyday

visibility when it is collected from neighbourhoods. For waste workers, however, waste is a material source of income. The same object therefore has different meanings for different social groups.

A plastic bottle may be:

- waste for the consumer
- recyclable material for the waste picker
- a commodity for the scrap dealer
- An industrial input for the recycling industry.

Waste workers operate across multiple urban spaces streets, neighbourhoods, waste collection points, settlements, scrap shops and recycling markets. Their mobility creates a distinctive geography of work. Their presence is essential to the city, yet their workplaces may remain institutionally invisible. This is why the concept of subaltern geography is useful: it draws attention to urban spaces and labour relations that formal planning frequently overlooks.

13. Informal Waste Workers and the Circular Economy

The contemporary policy discourse of the circular economy emphasises recycling, resource recovery, reuse and waste minimisation. Yet there is a danger of discussing the circular economy as if it were exclusively a technological or corporate innovation. In cities such as Delhi, circular material flows have long been sustained by informal workers. Waste pickers recover materials that would otherwise enter disposal systems. Their labour reduces the amount of recyclable material reaching landfills and contributes to the circulation of secondary materials. Therefore, a socially inclusive circular economy should recognise informal workers as existing environmental-service providers rather than treating them merely as a problem to be eliminated.

The challenge is to transform informal recycling into **decent and dignified green work** without destroying the livelihood networks on which workers depend.

14. Methodology

The present study adopts a **qualitative and analytical research design** based primarily on secondary sources.

The study draws upon:

1. peer-reviewed academic research
2. books and scholarly literature on informal economies and waste
3. Government of India documents;
4. Delhi government and Delhi Pollution Control Committee records
5. policy documents
6. reports of international organisations
7. Existing empirical studies of waste workers in Delhi.

The analysis employs a thematic approach focusing on:

Migration, informal labour, waste economy, environmental injustice, livelihood vulnerability, spatial exclusion, privatization, formalization, Social protection.

Rather than treating waste management exclusively as a technical issue, the study approaches it through the perspective of **urban political economy and environmental justice**. The paper is therefore primarily interpretive and does not claim to provide a statistically representative survey of all waste workers in Delhi-NCR.

15. Major Findings and Discussion

The analysis reveals several interconnected findings.

- *First, migration and informal waste work are structurally connected.*

Rural-urban migration brings labour into metropolitan informal economies. For workers lacking formal qualifications or capital, waste work can provide an accessible entry point into the urban labour market.

- *Second, informal workers provide significant environmental services.*

Their work contributes to collection, segregation, recycling and material recovery. Earlier Delhi research demonstrated that waste pickers and collectors generate economic value while also contributing to savings in municipal waste-disposal costs.

- *Third, environmental benefits and risks are distributed unequally.*

Urban residents benefit from cleaner surroundings and recovered materials, while waste workers experience greater occupational exposure and livelihood uncertainty.

- *Fourth, infrastructure transformation can produce livelihood displacement.*

The closure or transformation of traditional waste-collection spaces can remove access to recyclable materials and force workers to modify their work practices.

- *Fifth, formalisation is not automatically socially just.*

If informal workers are recognised, integrated and protected, formalisation can improve livelihoods. If they are simply displaced by private contractors or mechanised systems, formalisation can deepen vulnerability. Research on Delhi has documented tensions between informal workers and emerging private waste-management systems.

- *Sixth, environmental justice requires participation.*

Workers affected by changes in waste-management infrastructure should not merely be treated as beneficiaries of welfare schemes. They should have a role in decisions concerning collection systems, workspaces, recycling facilities and livelihood protection.

16. towards an Environmentally Just Waste-Management Model

A more equitable waste-management system in Delhi-NCR should be based on **integration rather than displacement**.

16.1 Recognition of waste workers:

Municipal authorities should systematically identify and register informal waste workers and provide appropriate occupational identity documents.

16.2 Social protection: Workers should have access to social-security mechanisms, health services, accident protection and other relevant welfare programmes.

16.3 Occupational safety: Protective equipment, vaccination where appropriate, first-aid facilities, safe sorting spaces and occupational-health programmes should become integral to waste-management policy.

16.4 Secure workspaces: Urban planning should recognise that waste workers require physical spaces for sorting and storing recyclable materials. The experience of *dhalao* closures demonstrates the consequences of removing such spaces without providing viable alternatives.

16.5 Fair economic participation: Waste workers should receive a fair share of the value generated by recycling and resource recovery.

16.6 Inclusion in municipal systems: Rather than replacing informal workers, municipal systems can create structured partnerships with cooperatives, worker organisations and self-help groups.

16.7 Gender-sensitive policies: Women's specific needs concerning safety, sanitation, childcare and workspace should be incorporated into waste-management planning.

16.8 Participatory urban governance: Waste workers should have representation in consultations concerning changes in waste infrastructure and collection arrangements.

Municipal Solid Waste Landscape in Delhi-NCR: 2020–2026

Table 1: Delhi Municipal Solid Waste Generation & Management, 2020–2026

Year / Period	MSW Generation in Delhi	Waste Processing / Treatment	Landfill / Disposal Status	Major Source
2020–21	10,990 TPD	—	Three major dumpsites—Ghazipur, Bhalswa and Okhla	DPCC (Gaon Connection)
2021–22	11,095 TPD	5,280 TPD	Approximately 5,828 TPD landfilled/disposed	DPCC Annual Report (dpcc.delhigovt.nic.in)
2022–23	Approximately 11,104 TPD	5,223 TPD	Approximately 5,881 TPD in the landfill/SLF stream	Delhi Economic Survey (Scribd)
2023–24	11,342 TPD	7,542 TPD	Approximately 3,800 TPD landfilled	CPCB/DPCC data (Digital Sansad)
2024–25	Approximately 11,500–11,852 TPD*	Approximately 7,586.5 TPD available processing capacity/management framework	Approximately 4,241 TPD untreated/landfill stream	DPCC/EIA data (dpcc.delhigovt.nic.in)
2025–26	11,328 TPD (average)	Approximately 68% reported in terms of processing/management	Legacy waste remediation continues at the three major dumpsites	CAQM

MSW Generation in Delhi, 2020–21 to 2023–24

Between **2020–21** and **2023–24**, the reported generation of municipal solid waste (MSW) in Delhi increased from approximately **10,990 tonnes per day (TPD)** to **11,342 TPD**. In 2023–24, out of the total reported MSW generation of **11,342 TPD**, approximately **7,542 TPD** was reported

as processed, while around **3,800 TPD** entered the landfill/disposal stream. This indicates a substantial increase in waste-processing capacity in Delhi; however, a significant volume of municipal waste continued to require disposal through landfill and related waste-management systems.

The Broader Delhi-NCR Scenario

At the broader **Delhi-NCR level**, a report of the **Commission for Air Quality Management (CAQM)** estimated total municipal solid waste generation at approximately **20,777 TPD**, comprising:

- **Delhi:** approximately **11,500 TPD** **Haryana-NCR cities:** approximately **4,738 TPD**
- **Uttar Pradesh-NCR:** approximately **4,141 TPD** **Rajasthan-NCR:** approximately **400 TPD**

The report also recorded approximately **184.47 lakh metric tonnes of legacy waste** across the NCR. Legacy waste refers to accumulated waste that has remained at dumpsites for prolonged periods and requires remediation, bio mining, or other scientific treatment.

These figures demonstrate that **Delhi alone accounts for a substantial proportion of the municipal solid waste burden of the entire NCR**. The concentration of waste generation in Delhi, combined with the persistence of large quantities of legacy waste, places considerable pressure on the region's waste-processing infrastructure, landfill sites, and surrounding communities. It also highlights the spatial dimension of environmental inequality, as communities living in and around major landfill sites are often exposed to the environmental and health risks associated with accumulated and poorly managed waste.

2. Comparative Case Study of Three Major Landfills in Delhi

For the purpose of this research paper, it is highly useful to examine **Ghazipur, Bhalswa, and Okhla** together, as these three sites differ in terms of **waste accumulation, remediation efforts, and the socio-environmental conditions of the surrounding communities**.

Table 2: Comparative Status of Ghazipur, Bhalswa, and Okhla Landfills

Indicator	Ghazipur	Bhalswa	Okhla
Initial Operation	1984	1994	1996
Legacy Waste in 2019	14.0 million MT	8.0 million MT	6.0 million MT
Drone Assessment, June 2022	8.5 million MT	7.3 million MT	4.5 million MT
Fresh Waste Disposed, FY 2025–26*	0.672 million MT	1.254 million MT	1.148 million MT
Legacy Waste Remediated, FY 2025–26*	1.724 million MT	3.143 million MT	2.544 million MT
Balance Around February 2026	7.418 million MT	3.019 million MT	1.645 million MT
Major Regional Association	East Delhi / Trans-Yamuna	North Delhi	South Delhi
Current Major Intervention	Bio-mining + Waste Processing	Bio-mining + Remediation	Bio-mining + Processing/WtE Ecosystem

For FY 2025–26, the figures cover the period from *April 2025 to February 2026*. According to the **Delhi Economic Survey 2025–26**, based on the *June 2022 drone assessment*, the three major dumpsites **Ghazipur, Bhalswa, and Okhla** collectively contained approximately **203 lakh metric tonnes of above-ground legacy waste**. By **February 2026**, the total remaining balance had been reduced to approximately **120.82 lakh metric tonnes**, indicating substantial progress in legacy-waste remediation through biomining and related waste-processing measures.

Conclusion

The relationship between rural–urban migration and informal waste work in Delhi-NCR reveals a fundamental contradiction in contemporary metropolitan development. Cities require increasingly sophisticated systems of waste management, yet a substantial part of the labour that makes material recovery and urban cleanliness possible remains informal, insecure and socially marginalised. Informal waste workers are not simply recipients of urban poverty. They are active economic agents participating in the recovery, circulation and recycling of valuable materials. Their labour contributes to municipal sanitation, environmental sustainability and the wider recycling economy. Nevertheless, they frequently receive little institutional recognition relative to the environmental and economic value they create.

The experience of Delhi demonstrates that environmental problems cannot be separated from questions of labour, migration, poverty and social inequality. Waste is simultaneously an environmental problem and an economic resource. Landfills are simultaneously sites of ecological risk and sites of livelihood. Urban waste-management reforms can simultaneously improve environmental infrastructure and create new livelihood insecurities.

The concept of environmental justice therefore provides an important framework for analysing these contradictions. Environmental justice demands more than equal exposure to environmental risks; it requires fair distribution of benefits, recognition of marginalised communities and meaningful participation in decision-making.

The evidence also demonstrates that formalisation should not be equated with the elimination of informal labour. The challenge is to develop a system in which informal workers can move from precarious survival to dignified and protected employment without losing access to their existing livelihood resources. Existing research and policy documents provide a strong basis for such an approach. The 2016 framework explicitly recognised the need to integrate waste pickers, while the new Solid Waste Management Rules, 2026 provide an important contemporary policy context for examining the future of worker inclusion. For Delhi-NCR, an environmentally just waste-management model should therefore rest on five principles: **recognition, integration, protection, participation and livelihood security**. Ultimately, the cleanliness of a megacity should not be measured only by how efficiently waste disappears from privileged neighbourhoods. It should also be measured by whether the people who collect, sort, recover and recycle that waste can work with dignity, safety and social protection. A sustainable Delhi-NCR cannot be created by making waste workers invisible. It must be created by recognising them as essential participants in the city's environmental and economic life.

References

- Demaria, F. (2023). *The political ecology of informal waste recyclers in India: Circular economy, green jobs, and poverty*. Oxford University Press.
- Hayami, Y., Dikshit, A. K., & Mishra, S. N. (2006). Waste pickers and collectors in Delhi: Poverty and environment in an urban informal sector. *The Journal of Development Studies*, 42(1), 41–69.
- International Labour Organization. (2017). *Cooperation among workers in the informal economy: A focus on home-based workers and waste pickers*. ILO.
- Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2016). *Solid Waste Management Rules, 2016*. Government of India.
- Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2026). *Solid Waste Management Rules, 2026*. Government of India.
- NITI Aayog & UNDP. (2021). *Handbook on sustainable urban plastic waste management*. Government of India.
- NITI Aayog. (2015). *Report of the Sub-Group of Chief Ministers on Swachh Bharat Abhiyan*. Government of India.
- Shalaka. (2025). the intersection of waste, space and informality: Exploring spatial and livelihood impacts of dhalao closures on women waste pickers in Delhi. *[Journal article]*.
- Delhi Pollution Control Committee. (2026). *Solid waste management: Rules, annual reports and compliance documents*. Government of NCT of Delhi.
- Delhi Department of Environment. (2026). *Waste management*. Government of NCT of Delhi.
- World Bank. (2008). *The informal recycling sector and urban waste management*. World Bank.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भारतीय भाषाओं का संरक्षण एवं संवर्धन

डॉ. नवनीत कुमार*

n.kumar@osou.ac.in / navneetkumar727@gmail.com

1. प्रस्तावना

राष्ट्र से अभिप्राय केवल भौगोलिक सीमा से अवरुद्ध भूखंड से नहीं लिया जाना चाहिए। राष्ट्र उसमें रहने वाले समाज, उसकी भाषा और उसकी संस्कृति से निर्मित होता है। यह हमारे जातीय गौरव हमारी सांस्कृतिक एकता और हमारी भावना को अभिव्यक्त करता है। समाज एवं संस्कृति के निर्माण में भाषा महत्वपूर्ण है। इसके बिना इसकी कल्पना संभव नहीं है। भाषा संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। किसी भी भाषा का एकमात्र उद्देश्य संप्रेषण ही है। विभिन्न संस्कृतियों को संधारित करने वाले देश का जन मुख्यधारा से अलग रहा। भाषा समाज को बाँधे रखती है, समाज को जोड़ने का कार्य करती है। भाषा केवल विचार-विनिमय का साधन मात्र नहीं है। यह मानव समाज को एक आधार देती है, मानव संस्कृति के निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान देती है। हिंदी की भाँति अन्य भारतीय भाषाओं में भी ज्ञान-विज्ञान की एक सुदीर्घ परंपरा विद्यमान रही है। कुछ अवरोध जरूर रहे जिसके कारण वे ज्ञान संपदाएँ हमारे समक्ष नहीं आ सकीं। इस दृष्टि से नयी शिक्षा नीति-2020 और अधिक उपयोगी सिद्ध होती दिखाई पड़ती है, क्योंकि इस नयी शिक्षा नीति में अनुवाद की महत्ता और उसकी सार्थकता पर विशेष बल दिया गया है। अंग्रेजी के मोह में और समुचित संसाधन न होने की दशा में भारतीय भाषाओं की उपेक्षा हुई। किंतु, व्यवस्था बदली और नयी शिक्षा नीति में मातृभाषा शिक्षण पर विशेष बल देने की बात कही गयी। यह हमारी विडंबना रही कि इस दिशा में शासन/प्रशासन की ओर से भी कोई खास यत्न नहीं किये गये। किंतु, भारत सरकार की नयी शिक्षा नीति-2020 में भाषा-संबंधी प्रावधान हमें भारत की एकता और अखंडता को बनाए रखने की प्रेरणा देते हैं।

भारत में पहली शिक्षा नीति सन् 1968 में लागू हुई थी। सन् 1986 में दूसरी शिक्षा नीति तैयार लागू हुई। उसके बाद सन् 1992 में इस नीति में कुछ संशोधन हुए और 34 साल बाद भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लागू किया। इस नवीन और दूरदर्शी शिक्षा नीति जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के नाम से जाना जाता है, इसे तैयार करने के लिए 2019 में डॉ. के.के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में भारत सरकार ने एक समिति का गठन की। इस समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया। जुलाई 2020 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी।

बीज शब्द : शिक्षा नीति, भाषा, राष्ट्र, संस्कृति, संधारण, संप्रेषण, समाज, कारक, शिक्षण, कौशल, ऑनलाइन शिक्षण, उच्च शिक्षा।

2. उद्देश्य

- 1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से पहले राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का अनुशीलन।
- 2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में नवाचारों की पहचान करना।
- 3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषायी प्रावधानों की चर्चा।

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति का इतिहास

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में लागू की गई थी। इसे कोठारी आयोग की सिफारिशों के तहत पेश की गई थी। यह अनुच्छेद-45¹ के तहत निर्देशक सिद्धांत का उद्देश्य को पूरा करते हुए लागू किया गया। इसका उद्देश्य देश के सभी भागों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बाधाओं को दूर करना भी था। इसमें ग्रामीण, पिछड़े या आदिवासी

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, ओड़िशा राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, संबलपुर

क्षेत्रों के छात्रों पर भी ध्यान केंद्रित किया गया और बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। इस प्रकार, इस नीति ने संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार 'त्रिभाषा सूत्र' लागू किया और पूरे देश में 'हिंदी' के विकास को प्रोत्साहित किया। इस नीति में माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने पर विशेष बल दिया गया। रोजगार के अवसरों में सुधार के लिए व्यावसायिक शिक्षा पर भी ध्यान केंद्रित किया गया। कृषि, व्यापार, चिकित्सा, कला, शिल्प, वाणिज्य, गृह प्रबंधन, सचिवीय प्रशिक्षण आदि क्षेत्रों में सुविधाओं को बेहतर बनाने पर विशेष जोर दिया गया। इसके साथ ही नये विश्वविद्यालयों के खोलने और वयस्क साक्षरता (प्रौढ़ शिक्षा) के माध्यम से आम जनता में कार्यात्मक साक्षरता को बढ़ावा देने पर भी बल दिया गया। इस शिक्षा नीति ने शिक्षकों की स्थिति में सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया, उनके प्रशिक्षण और शिक्षा पर भी ध्यान केंद्रित किया गया। इसके द्वारा शिक्षा प्रणाली का एक नया ढाँचा 10+2+3 के रूप में लागू किया गया। इससे छात्रों को मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली में बनाए रखने में मदद मिली। इससे पूरे देश में बुनियादी ढाँचे और शिक्षा के अवसरों का विकास हुआ।

दूसरी शिक्षा नीति सन् 1986 में लागू हुई जिसमें सबसे महत्वपूर्ण कदम 14 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों को स्कूल में प्रवेश दिलाना, स्कूली वातावरण, छात्र प्रबंधन और शिक्षण पद्धतियों में सुधार, स्कूल न जाने वाले छात्रों के लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था थी। प्राथमिक विद्यालय स्तर पर अनुत्तीर्ण न करने की नीति लागू की गई। दूरदराज के इलाकों में नवोदय विद्यालय और प्राथमिक विद्यालय खोले गए। देश भर के स्कूलों में 10+2+3 का एक समान पैटर्न लागू किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का उद्देश्य 1995 तक सभी के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का लक्ष्य हासिल करना भी था। छात्रों को मुख्यधारा की प्रणाली में बनाए रखना, उपस्थिति की नियमितता, स्कूली शिक्षा की प्रासंगिकता की जांच करने के लिए सर्वेक्षण (घर-घर) करने का सुझाव दिया गया था। बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए, दो सेट निःशुल्क गणवेश, निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें और स्टेशनरी उपलब्ध कराना, आदि की व्यवस्था दी गयी। इसके अलावा, प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं को निःशुल्क परिवहन सुविधा भी प्रदान की गई। प्राथमिक विद्यालयों में न्यूनतम आवश्यक सुविधाएँ सुनिश्चित करने के लिए ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड की शुरुआत की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE) 1986 का उद्देश्य शिक्षा प्रणाली में व्याप्त असमानताओं को दूर करना था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में सुधार की आवश्यकता थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा और एक विस्तृत कार्यक्रम/कार्ययोजना तैयार करने के लिए सन् 1992 में एक समिति गठित की गई। समीक्षा समिति में आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री एन. जनार्दन रेड्डी की अध्यक्षता में छह शिक्षा मंत्री और आठ शिक्षाविद् शामिल थे। इसके अलावा, एक संचालन समिति के साथ-साथ शिक्षाविदों और सरकारी अधिकारियों सहित विभिन्न विषय क्षेत्रों के लिए 22 कार्यबल भी गठित किए गए। 1992 के प्रस्ताव में पूरे देश में नवोदय विद्यालय खोलने पर जोर दिया गया था। इन विद्यालयों की योजना उच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले छात्रों की मदद के लिए बनाई गई थी, चाहे उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। इस प्रस्ताव के ज़रिए आम जनता के लिए स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाया गया।

सन् 2005 में एनसीईआरटी (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) ने 2005 में अपना नवीनतम दस्तावेज़, "राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा" प्रकाशित किया। इसमें शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया के लिए एक नए मार्ग का सुझाव दिया गया था। इसका उद्देश्य शिक्षक-निर्देशित निर्देशों से हटकर छात्र के "सक्रिय अधिगम" पर ध्यान केंद्रित करना था। इस रूपरेखा ने उपयुक्त तकनीकों का उपयोग करके अधिक प्रभावी शिक्षण कार्यक्रम तैयार किए। इस ढाँचे के ज़रिए, नीरस रटंत सीखने की पद्धति को ज्ञान निर्माण और सक्रिय शिक्षण में बदल दिया गया। इससे छात्रों को व्यावहारिक अनुभवों के ज़रिए ज़्यादा अवसर मिले। पाठ्यपुस्तक संस्कृति से दूर जाने की एक नई अवधारणा पेश की गई। इस ढाँचे ने इसे और अधिक छात्र-केंद्रित बना दिया।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

भारत सरकार ने 34 वर्षों के बाद भारत की शिक्षा नीति में बदलाव का निर्णय लिया। नई शिक्षा नीति तैयार करने के लिए, केंद्र सरकार ने 2017 में कस्तूरीरंगन समिति की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 का दस्तावेज़ तैयार किया। भारत में, जुलाई 2020 में, केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी। इस मंजूरी के संबंध में, प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने ट्वीट किया और मानव संसाधन विकास मंत्री श्री रमेश पोखरियाल निशंक ने प्रेस कॉन्फ्रेंस में जनता को जानकारी दी। यह भी स्पष्ट किया गया कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदलकर "शिक्षा मंत्रालय" कर दिया गया है।

4.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के लक्ष्य

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के लक्ष्यों में स्कूल न जाने वाले लगभग दो करोड़ छात्रों को मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली में वापस लाना शामिल है। इसके अलावा, इसका उद्देश्य नई शिक्षा प्रणाली को 21वीं सदी के सीखने के दृष्टिकोण के अनुरूप बनाना भी है। 10+2 की स्कूली शिक्षा संरचना को अब 5+3+3+4 (3 वर्ष से 18 वर्ष तक के आयु वर्ग को शामिल करते हुए) में बदल दिया गया है। इससे प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा मुख्य संरचना का हिस्सा बन गई है। क्योंकि पहले 3 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों को इस संरचना में शामिल नहीं किया जाता था (कक्षा 1 की शुरुआत 6 वर्ष की आयु से होती है)।

नीति निर्माताओं का लक्ष्य प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा में अधिक निवेश करना है क्योंकि भारत में लाखों छात्र प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) से वंचित हैं। इसमें ईसीसीई पर शोध और उद्योग में अपनाई गई सर्वोत्तम प्रथाओं के आधार पर एक ढाँचा (राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा पाठ्यक्रम और शैक्षणिक ढाँचा) बनाने का सुझाव दिया गया है। इससे पूरे देश में ईसीसीई की गुणवत्ता और पहुँच में सुधार होगा, साथ ही अधिक प्रशिक्षित कर्मचारी/शिक्षक और बेहतर बुनियादी ढाँचा उपलब्ध होगा।

4.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के चार चरण

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) ने पारंपरिक 10+2 सिस्टम (जिसमें कक्षा 10 के बाद के दो वर्ष शामिल थे) को बदलकर 5+3+3+4 का नया ढाँचा लागू किया है। यहाँ इस नए ढाँचे की उम्र के हिसाब से सरल जानकारी दी गई है:

5 साल का फाउंडेशनल स्टेज (मूलभूत स्तर)	उम्र: 3 से 8 साल	कक्षा: आंगनवाड़ी/प्री-स्कूल, कक्षा 1 और 2	केन्द्रबिंदु: इस स्तर में प्री-स्कूल और प्राथमिक स्कूल शामिल हैं, जो खेल आधारित और गतिविधियों से सीखने महत्व दिया जाता है। भाषा विकास की शुरुआत होती है।
3 साल का प्रिपरेटरी स्टेज (प्रारंभिक स्तर)	उम्र: 8 से 11 साल	कक्षा: कक्षा 3 से 5	केन्द्रबिंदु: भाषा और गणित की बुनियादी समझ, खेल और गतिविधियों के माध्यम से सीखना, कक्षा में बातचीत और खोज के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना।
3 साल का मिडिल स्टेज (मध्य स्तर)	उम्र: 11 से 14 साल	कक्षा: कक्षा 6 से 8	केन्द्रबिंदु: विज्ञान, गणित, कला, सामाजिक विज्ञान और मानविकी में अनुभवात्मक (अनुभव पर आधारित) शिक्षा दी जाती है।
4 साल का सेकेंडरी स्टेज (माध्यमिक स्तर)	उम्र: 14 से 18 साल	कक्षा: कक्षा 9 से 12	केन्द्रबिंदु: विषयों की गहरी समझ पर जोर, इसे दो चरण में बांटा गया है – कक्षा 9-10 और कक्षा 11-12।

4.2.1 फाउंडेशन स्टेज: नई शिक्षा नीति में 3 से 8 वर्ष तक के बच्चों के लिए फाउंडेशन स्टेज को शामिल किया गया है। फाउंडेशन स्टेज 5 वर्षों के लिए निर्धारित किया गया है। जिसमें 3 वर्ष की प्री-स्कूल शिक्षा आंगनवाड़ी और कक्षा 1, 2 की स्कूली शिक्षा में होगी, जिसके अंतर्गत छात्रों के भाषा कौशल और क्षमता स्तर का परीक्षण किया जाएगा और उनके विकास पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

4.2.2 प्रारंभिक चरण: इस चरण का समय 3 वर्ष तक रखा गया है। इस चरण में 8 से 11 वर्ष तक के बच्चे शामिल हैं। जिसमें कक्षा 5 तक के बच्चे होंगे। नई शिक्षा नीति के इस चरण में छात्रों के संख्यात्मक कौशल को मजबूत करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। साथ ही, सभी बच्चों को क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान भी दिया जाएगा। इसके साथ ही, बच्चों को प्रयोगों के माध्यम से विज्ञान, कला, गणित आदि की शिक्षा दी जाएगी।

4.2.3 मध्य चरण: इस चरण की अवधि 3 वर्ष निर्धारित की गई है। इस चरण में छठी से आठवीं कक्षा तक के बच्चों को शामिल किया गया है, जिन्हें विषयों के अनुसार पाठ्यक्रम पढ़ाया जाएगा और कोडिंग भी छठी कक्षा के बच्चों से ही शुरू हो जाएगी। साथ ही, सभी बच्चों को व्यावसायिक परीक्षाएँ और व्यावसायिक इंटरनशिप करने का अवसर मिलेगा, जिसका उद्देश्य स्कूली शिक्षा के दौरान ही बच्चों को रोजगार के योग्य बनाना है।

4.2.4 माध्यमिक चरण: इस चरण की अवधि 4 वर्ष की होती है। यह कक्षा 9वीं से 12वीं तक होता है। इसमें विषयों का गहन अध्ययन कराया जाता है। यहाँ छात्र अपनी पसंद के अनुसार विषय चुन सकते हैं, किसी विशिष्ट स्ट्रीम में नहीं। छात्र विज्ञान और कला या वाणिज्य के विषय एक साथ ले सकते हैं।

4.3 उच्च शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति -2020 में उच्च शिक्षा को नया रूप देने की योजना की गयी है। यह उच्च मानकों वाले प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। यह विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शोध को वित्तपोषित करने के लिए एक राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (एनआरएफ) की स्थापना पर भी बल देता है। व्यावसायिक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा में सकल नामांकन दर वर्तमान 26.3% (2018) से बढ़कर 2035 तक 50% तक ले जाने की योजना है। शोध कार्य को को स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर भी शामिल किया गया है।

इसमें एक समग्र और बहु-विषयक शैक्षिक दृष्टिकोण होगा। उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षाशास्त्र संचार, प्रस्तुति, चर्चा, बहस, अनुसंधान, विश्लेषण और अंतःविषय सोच पर केंद्रित होगा। बहु निकास विकल्पों के साथ चार साल की स्नातक की डिग्री, एक से दो साल की मास्टर दूसरे वर्ष में पूर्ण शोध के साथ दो वर्षीय मास्टर डिग्री, चार वर्षीय स्नातक डिग्री के लिए एक वर्षीय मास्टर डिग्री, और पाँच वर्षीय एकीकृत स्नातक/मास्टर डिग्री। शिक्षक-केंद्रित शिक्षण मॉडल के बजाय छात्र-केंद्रित शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया। छात्रों की विकासात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम और शैक्षणिक संरचना का पुनर्गठन किया गया है। उनका लक्ष्य अनुभवात्मक अधिगम के भरपूर अवसरों के साथ एक अधिक संवादात्मक कक्षा बनाना है। माध्यमिक स्तर पर, आलोचनात्मक सोच में सुधार, जीवन की आकांक्षाओं पर ध्यान और लचीलेपन पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

शिक्षा राष्ट्र न केवल राष्ट्र बल्कि विश्व के प्रति दायित्वबोध जगाने का काम करती है। बापू ने कहा था- “सच्ची शिक्षा वह है जो बालकों के आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक विकास हेतु प्रेरित करती है।”² राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विविध बदलावों और नवीन आवश्यकताओं के साथ इसमें भारतीयता की संश्लिष्टता और जीवन मूल्यों को संधारित किये है। इस शिक्षा नीति के विजन में लिखा गया है कि “इस राष्ट्रीय शिक्षा का विजन भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा प्रणाली है, जो सभी को उच्चतम गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराकर, भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाकर एक जीवंत और न्याय संगत ज्ञान समाज में बदलने के लिए योगदान करेगी।”³

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषायी प्रावधान :

अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया में मातृभाषा का विशेष महत्व होता है, जिससे बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है। उसके सीखने की गति भी बढ़ती है। मनोविज्ञान के अनुसार बालक अपनी मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा में सरलता एवं शीघ्रता से सीखता है। इसी को ध्यान में रखकर हुए नयी शिक्षा नीति में भाषायी विविधता को महत्व दिया गया है-

5.1 नई शिक्षा नीति के अनुसार-पाँचवीं कक्षा तक मातृभाषा की बात कही गयी है। इसे कक्षा आठ या उससे आगे भी बढ़ाया जा सकता है। विदेशी भाषाओं की पढ़ाई सेकेंडरी लेवल से होगी, बाकी विषय चाहे वह अंग्रेजी में ही क्यों ना हो, एक सब्जेक्ट के तौर पर ही पढ़ाया जाए।

5.2 संस्कृति भाषा के वृहद एवं महत्वपूर्ण योगदान तथा विभिन्न विद्याओं एवं विषयों के साहित्य, सांस्कृतिक महत्व, वैज्ञानिक प्रकृति, के चलते संस्कृत को केवल संस्कृत पाठशालाओं एवं विश्वविद्यालयों तक सीमित न रखते हुए इसे मुख्य धारा में लाया जायेगा।

5.3 नयी शिक्षा नीति इस बात को स्वीकारती है कि शिक्षार्थियों को भारत की समृद्ध विविधता का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के तहत इस दिशा में देश के 100 पर्यटन स्थलों की पहचान की जाएगी, जहाँ शिक्षण संस्थान

छात्रों को इन क्षेत्रों के बारे में ज्ञानवर्धन करने के लिए स्थलों और उनके इतिहास, वैज्ञानिक योगदान, परम्पराओं, स्थानीय साहित्य और ज्ञान आदि का अध्ययन करने के लिए भेजेंगे।

5.4 भारतीय वाङ्मय में कला और भाषा का अन्योन्ययात्रित संबंध हैं तथा ये एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। किसी भी कला की अभिव्यक्ति का सीधा संबंध भाषा से होता है। पुरातत्वकालीन कलाकृतियों में भी तत्सम की भाषा ही अभिव्यक्ति का साधन थी, चाहे वह अरबी, फारसी या कोई भी यूरोपीय परिवार की भाषा रही हो। भारतीय संस्कृति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के चिंतन पर आधारित होकर समाज का मार्गदर्शन करते हुए भारत को वास्तव में 'अतुल्य और अनुपम भारत' बनाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 पाँचवीं कक्षा तक मातृभाषा में शिक्षा पर जोर देती है। उच्च-गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकें मातृभाषा में उपलब्ध होनी चाहिए। इससे बोली जाने वाली भाषा और शिक्षण माध्यम के बीच की खाई को रोका जा सकेगा। देश भर में त्रि-भाषा सूत्र को पूरा करने के लिए बहुभाषावाद के विचार पर अतिरिक्त जोर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, इसका उद्देश्य प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से भाषा सीखने को लोकप्रिय बनाना है। इसमें भारतीय भाषाओं जैसे मातृभाषा या स्थानीय भाषा को कक्षा 5 तक पढ़ाई का माध्यम बनाने पर विशेष बल दिया है, साथ ही यह सुझाव भी दिया गया है कि इसे कक्षा 8 और आगे तक जारी रखा जा सकता है। नीति के अनुसार, सभी छात्रों को स्कूल में तीन भाषाएँ सीखनी होंगी। इन तीन भाषाओं का चुनाव राज्य, क्षेत्र, और छात्रों की पसंद के अनुसार किया जाएगा। हालाँकि, इन तीन भाषाओं में से कम से कम दो भाषाएँ भारतीय होनी चाहिए। इनमें से एक भाषा आमतौर पर स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा होगी। यह नियम सरकारी और निजी (प्राइवेट) स्कूलों दोनों पर लागू होगा। उच्च गुणवत्ता वाली किताबें, जैसे कि विज्ञान की किताबें, छात्रों को उनकी मातृभाषा में उपलब्ध कराई जाएंगी, ताकि पढ़ाई छात्रों के लिए आसान और समझने योग्य हो। अगर किसी विषय की किताब मातृभाषा में उपलब्ध नहीं है, तो शिक्षक और छात्र के बीच बातचीत की भाषा, जहाँ तक संभव हो, मातृभाषा ही रखी जाएगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षकों को द्विभाषिक (दो भाषाओं में) तरीका अपनाने के लिए बढ़ावा देती है। यानी जिन छात्रों की मातृभाषा और पढ़ाई की भाषा अलग है, उनके लिए द्विभाषिक पढ़ाई की सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए।

भारतीय भाषाओं का संवर्धन एवं विकास

सरकार की नीति सभी भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने की है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 बहुभाषावाद को बढ़ावा देने और भारतीय भाषाओं को जीवंत बनाए रखने के प्रयासों पर विशेष बल देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारत सरकार ने यह प्रावधान किया है कि जहाँ तक संभव हो, कम से कम कक्षा 5 तक और अधिमानतः कक्षा 8 तक शिक्षा का माध्यम गृह भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा में होगा। नीति इस बात पर जोर देती है कि शिक्षण गृह भाषा/स्थानीय भाषा में हो और भारतीय भाषाओं को स्कूली और उच्च शिक्षा के साथ एकीकृत किया जाए, ताकि छात्रों के पास किसी भी भारतीय भाषा में अध्ययन करने का विकल्प हो। निधियों का आवंटन भाषा के आधार पर नहीं, बल्कि आवश्यकता और उपयोग के अनुसार किया जाता है। हालाँकि, शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत, भारत सरकार निम्नलिखित योजनाओं/शीर्षों के माध्यम से भाषा संस्थानों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है:

- हिंदी निदेशालय (सीएचडी)
- वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग (सीएसटीटी)
- केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान (सीआईआईएल)
- भारतीय भाषाओं के संवर्धन हेतु अनुदान (जीपीआईएल)
- यूजीसी के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालयों (संस्कृत) के लिए अनुदान

केंद्रीय हिंदी निदेशालय और केंद्रीय हिंदी संस्थान हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य करते हैं, जबकि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग सभी भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दावली विकसित करने के लिए कार्य करता है। भारतीय भाषा संवर्धन अनुदान (जीपीआईएल) योजना के अंतर्गत, भारत सरकार केन्द्रीय हिंदी संस्थान (केएचएस), महर्षि संदीपनी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान (एमएसआरवीवीपी), केन्द्रीय शास्त्रीय तमिल संस्थान (सीआईसीटी), राष्ट्रीय सिंधी भाषा संवर्धन परिषद और राष्ट्रीय उर्दू भाषा संवर्धन परिषद को क्रमशः हिंदी, वेद, शास्त्रीय तमिल, सिंधी और उर्दू के संवर्धन के लिए अनुदान प्रदान करती है।

इसके अलावा, भारत सरकार तीन केंद्रीय विश्वविद्यालयों, अर्थात् केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली और राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति के माध्यम से संस्कृत भाषा को बढ़ावा दे रही है। इन विश्वविद्यालयों को संस्कृत भाषा में शिक्षण और अनुसंधान के लिए धनराशि प्रदान की जाती है, जिसके माध्यम से छात्रों को डिग्री, डिप्लोमा या प्रमाणपत्र प्रदान किए जाते हैं।

विगत पांच वर्षों में विभिन्न भाषाओं के संवर्धन हेतु बजट आवंटन नीचे दिया गया है: (लाख में)

क्र.सं.	योजना/वर्ष	सीआईआईएल	सीएचडी	सीएसटीटी	जीपीआईएल	संस्कृत विश्वविद्यालय
1	2020-21	54.88	47.51	12.54	433.00	279.36
2	2021-22	54.87	47.51	12.54	423.00	370.26
3	2022-23	54.87	47.51	12.54	430.00	417.69
4	2023-24	54.87	47.51	12.54	370.00	468.76
5	2024-25	39.87	16.54	15.36	310.10	514.09

2014-15 और 2015-16 सत्रों के लिए उत्खनन रिपोर्ट जनवरी 2023 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एसआई) को प्राप्त हुई थी। विशेषज्ञों द्वारा इसकी जांच की गई है और कार्यप्रणाली, कालक्रम, व्याख्या, प्रस्तुति और विश्लेषणात्मक कठोरता आदि में कमियों को प्रमुख उत्खननकर्ता को सूचित किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अंतर्गत, ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म का भी विस्तार किया गया है। 'डिजिटल इंडिया अभियान' के माध्यम से, भारत सरकार ने विभिन्न ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म और टूल लॉन्च किए। ऑनलाइन कक्षाओं के लिए 'स्वयं', 'दीक्षा' और 'स्वयंप्रभा' जैसे प्लेटफॉर्म सिस्टम में शामिल किए गए और आने वाले वर्षों में, छात्रों के लिए ऐसे प्लेटफॉर्म को और अधिक विकसित किया जाएगा, जिसमें भाषा संबंधी बुनियादी सुविधा पर भी विशेष ध्यान देने की बात कही गयी है।

निष्कर्ष:

हमारा देश बहुत विशाल है, भाषाओं की विविधता है। विभिन्न उत्कृष्ट ज्ञान अलग-अलग भाषाओं में उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारत के विभिन्न भाषाओं, बोलियों, कला एवं संस्कृति के संवर्धन के लिए पर्याप्त प्रावधान किये गये हैं। संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन के भाषा अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। भारतीय भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान संपदा को अनुवाद के माध्यम से सामने लाया जा सकता है। सभी भारतीय भाषाओं के प्रोन्नयन और उत्थान के लिए एक नया संस्थान भी स्थापित किया जाएगा। सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सभी आवश्यक प्रावधान कर दिये गये हैं किंतु, यह पर्याप्त नहीं हैं। इनकी जब तक ठीक से पूरी निष्ठा से इसकी अनुपलना नहीं होगी, यह प्रभावी नहीं होगा। यदि इन सभी प्रावधानों का सम्यक कार्यान्वयन हो तो भारतीय संस्कृति अपने गौरवशाली अतीत को पुनः प्राप्त कर राष्ट्र एक नये भारत श्रेष्ठ भारत के रूप में उभरेगा।

संदर्भ:

¹ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान होना चाहिए।

2 गांधी, मोहन दास करमचंद. (1989). *मेरे सपनों का भारत*. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन. पृष्ठ- 196

3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ-8

गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि और भारतीय ज्ञान परंपरा

डॉ. आशुतोष कुमार शुक्ल*

ashutosh.educator@gmail.com

सारांश-

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल स्वर केवल शास्त्रीय ज्ञान संचय में नहीं, अपितु ज्ञान को जीवनानुभव, साधना, आत्मानुशासन और लोकमंगल से जोड़ने में निहित है। इस विराट परंपरा में गोरखनाथ का स्थान विशिष्ट है। वे नाथपंथ के प्रमुख आचार्य के रूप में योग, साधना, गुरु-परंपरा, देहबोध, मनोनिग्रह और आत्मानुभूति को ज्ञान-प्रक्रिया से जोड़ते हैं। गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि का केंद्रीय आग्रह है – 'सत्य केवल वाद-विवाद या शास्त्र-पाठ से उपलब्ध नहीं होता; उसे साधना और अनुभव के माध्यम से आत्मसात करना पड़ता है'। इस दृष्टि से उनका चिंतन भारतीय ज्ञान परंपरा की अनुभवपरक धारा का महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

इस आलेख में गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि का अध्ययन भारतीय दार्शनिक एवं साधना परंपराओं के संदर्भ में किया गया है। उपनिषदों की आत्मविद्या, पतंजलि का योगदर्शन, सिद्ध परंपरा की साधनामूलक चेतना तथा नाथपंथ की हठयोग परंपरा के संदर्भ में गोरखनाथ के चिंतन की विशिष्टता को समझने का प्रयास है। विशेष रूप से देह, मन, गुरु, योग, अनुभव, सहजता और लोकभाषा के प्रश्नों को विश्लेषण का आधार माना गया है। हिंदी के प्रतिष्ठित विद्वान इतिहासकार और आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अध्ययन को संदर्भ मानकर यह प्रतिपादित किया गया है कि गोरखनाथ का महत्त्व केवल धार्मिक या योगिक इतिहास तक सीमित नहीं है, अपितु उनकी परंपरा मध्यकालीन भारतीय समाज में ज्ञान के लोकाभिमुखीकरण और साधना की पुनर्स्थापना की महत्वपूर्ण प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है।

बीज शब्द:

गोरखनाथ, भारतीय ज्ञान परंपरा, नाथपंथ, योग, देहबोध, आत्मानुभूति, गुरु-परंपरा, लोकचेतना, साधना, ज्ञान-दृष्टि।

प्रस्तावना-

भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन में सर्वप्रथम उसके स्वरूप को पश्चिमी आधुनिक ज्ञान-प्रतिमानों से अलग रूप में पहचानना जरूरी है। भारतीय संदर्भ में ज्ञान केवल तथ्य, सूचना अथवा बौद्धिक निष्कर्ष-मात्र नहीं है। वह मनुष्य के अस्तित्व रूप और उसके जीवन-मूल्यों से संबद्ध एक प्रक्रिया है। ज्ञान का अंतिम उद्देश्य केवल संसार को जानना नहीं, अपितु स्वयं की पहचान और जीवन का परिष्कार भी है। उपनिषदों में आत्मविद्या की प्रतिष्ठा, भगवद्गीता में ज्ञान-कर्म-योग का समन्वय, सांख्य-दर्शन में तत्त्व-विवेक और पतंजलि के योग में चित्तवृत्ति-निरोध—ये सभी भारतीय ज्ञान परंपरा की बहुआयामी प्रकृति को सिद्ध करते हैं। इसी क्रम में बौद्ध, जैन, सिद्ध और नाथ परंपराएँ ज्ञान को अनुभव-साधना से जोड़ती हैं। गोरखनाथ इसी व्यापक सांस्कृतिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वे नाथ परंपरा के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं और नाथ संप्रदाय का मुख्य साधना-आधार हठयोग रहा है। नाथ योगियों ने भ्रमणशील साधक-परंपरा के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में अपने विचारों और साधना-पद्धतियों का प्रचार-प्रसार किया।

गोरखनाथ का चिंतन इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि वे ज्ञान को साधना से अलग नहीं मानते। उनके लिए शरीर, मन, प्राण और चेतना एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। मानव शरीर साधना की आधारशिला है, मन अनुशासन का क्षेत्र है और अनुभव ज्ञान की कसौटी। यही दृष्टि गोरखनाथ को भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्वपूर्ण प्रतिनिधि के रूप में प्रतिस्थापित करती है। भारतीय

* प्र. स्ना. शिक्षक, शिक्षा विभाग, दिल्ली सरकार

ज्ञान परंपरा पर अब तक हुए अनेक अध्ययनों में वैदिक, उपनिषदिक, बौद्ध, जैन और वेदांतिक धाराओं को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। नाथ परंपरा प्रायः धार्मिक इतिहास अथवा हठयोग के विकास के संदर्भ में व्याख्यायित होता है। इससे गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि का व्यापक दार्शनिक और ज्ञानमीमांसात्मक पक्ष पर्याप्त रूप से सामने नहीं आ पाता। गोरखनाथ के चिंतन में ज्ञान की अवधारणा किस प्रकार विकसित होती है? और वह भारतीय ज्ञान-परंपरा की व्यापक अनुभवपरक, साधनामूलक तथा लोकाभिमुखी चेतना से किस प्रकार संबद्ध होती है? यह विचारणीय सवाल है। गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि के मूल तत्त्वों की पहचान करना तथा गोरखनाथ के चिंतन को भारतीय ज्ञान परंपरा के व्यापक संदर्भ में देखना इस आलेख का अभीष्ट है।

भारतीय ज्ञान परंपरा : स्वरूप और विशेषताएँ-

भारतीय ज्ञान परंपरा बहुस्तरीय और बहुधारात्मक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ ज्ञान का संबंध जीवन से अविच्छिन्न है। भारतीय चिंतन में विद्या व्यक्ति को केवल बौद्धिक रूप से सक्षम नहीं बनाती, अपितु उसे विवेकशील और आत्मानुशासित बनाने की अपेक्षा रखती है। उपनिषदों का ज्ञान केवल आत्मा की खोज से संबद्ध है। यह सांख्य प्रकृति और पुरुष के विवेक को महत्त्व देता है। योग चित्त के अनुशासन को साधना का आधार बनाता है। बौद्ध दर्शन अनुभव और प्रज्ञा के माध्यम से दुःख से मुक्ति की दिशा प्रस्तुत करता है। जैन दर्शन अनेकांत और आत्मसंयम पर बल देता है। इन विविध परंपराओं में मतभेद होते हुए भी एक साझा तत्त्व दिखायी देता है—'ज्ञान का जीवनपरक स्वरूप। गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि इसी जीवनपरकता को योगिक साधना के माध्यम से आगे बढ़ाती है।' भारतीय ज्ञान-चिंतन का प्रारंभिक स्वरूप वैदिक साहित्य में दिखायी देता है। ऋग्वेद में प्रकृति, देवत्व, सृष्टि और अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों पर चिंतन हुआ है। वैदिक ऋषियों ने बाह्य प्रकृति के साथ-साथ उसमें निहित सत्ता को समझने का प्रयास किया। उपनिषद के संबंध में विचार करें तो यह जिज्ञासा और अधिक अंतर्मुखी हो जाती है। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है? आत्मा क्या है? और जगत् के मूल में कौन-सी सत्ता विद्यमान है? 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' जैसी उपनिषदिक अवधारणाएँ ज्ञान को आत्मान्वेषण से जोड़ती हैं। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में बाह्य जगत् की खोज और अंतर्जगत् की खोज समानांतर रूप से विकसित हुई।

भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रमुख विशेषता अनुभवपरकता है। भारतीय चिंतन में केवल किसी सिद्धांत को स्वीकार करना पर्याप्त नहीं माना गया। अपितु श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रक्रिया के माध्यम से ज्ञान को आत्मसात करने पर बल दिया गया। योग परंपरा में यह अनुभवपरकता और अधिक स्पष्ट होती है। पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग का आधार माना। बाद में सिद्ध, नाथ, संत और भक्त परंपराओं ने भी अनुभव को ज्ञान की महत्त्वपूर्ण कसौटी बनाया। भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रकृति बहुलतावादी है। भारतीय चिंतन किसी एक विचार-पद्धति तक सीमित नहीं रहा। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा और वेदांत जैसे आस्तिक दर्शन विकसित हुए, तो दूसरी ओर बौद्ध और जैन दर्शन ने वैकल्पिक दार्शनिक दृष्टियों को सामने रखा। चर्वाक जैसी भौतिकवादी विचारधारा ने भी भारतीय बौद्धिक परंपरा में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। इन मतों के बीच वैचारिक मतभेद थे। किंतु तर्क, संवाद और शास्त्रार्थ की समृद्ध परंपरा ने भारतीय ज्ञान-जगत् को गतिशील बनाए रखा। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा मूलतः एकरूप नहीं, बल्कि बहुधारात्मक है। भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान और आचरण का संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारतीय चिंतन में विद्या का उद्देश्य केवल बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ होना नहीं है। ज्ञान से विवेक उत्पन्न होना चाहिए और विवेक से आचरण का परिष्कार भी। भगवद्गीता में ज्ञान, कर्म और योग के विभिन्न मार्गों का समन्वय इसी जीवनपरक दृष्टि को व्यक्त करता है। यहाँ मनुष्य के लिए केवल यह जानना पर्याप्त नहीं कि सत्य क्या है; उसे अपने कर्म और व्यवहार में उस सत्य को अभिव्यक्त भी करना है। इसलिए भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का लक्ष्य चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व-विकास से भी जुड़ा रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की एक अन्य विशेषता समग्र दृष्टि है। इसमें मनुष्य को केवल शरीर या केवल मन के रूप में नहीं देखा गया। आयुर्वेद में स्वास्थ्य को शरीर, मन और जीवन-व्यवस्था के संतुलन से जोड़ा गया। योग में शरीर और चित्त के अनुशासन का संबंध स्थापित हुआ। भारतीय गणित, ज्योतिष, खगोल, धातु-विज्ञान, वास्तु, कृषि और चिकित्सा संबंधी ज्ञान ने भी व्यावहारिक जीवन को समृद्ध किया। स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल आध्यात्मिक चिंतन तक सीमित नहीं थी; उसमें व्यावहारिक और वैज्ञानिक ज्ञान की भी समृद्ध धाराएँ थीं। गुरु-शिष्य परंपरा का उल्लेख भी नितांत जरूरी है। भारतीय ज्ञान का संरक्षण और प्रसार लंबे समय तक मौखिक परंपरा, संवाद और प्रत्यक्ष शिक्षण के माध्यम से हुआ। गुरु केवल विषय का अध्यापक नहीं था। वह ज्ञान और जीवन के बीच सेतु का कार्य करता था। शिष्य अध्ययन के साथ अनुशासन, आत्मसंयम

और व्यवहार की शिक्षा भी प्राप्त करता था। नाथ परंपरा में गुरु की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि को समझने में गुरु-शिष्य परंपरा एक केंद्रीय मजबूत धरातल प्रदान करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा की लोकाभिमुख है। ज्ञान केवल राजदरबारों और विद्वत् वर्ग तक सीमित नहीं रहा। बौद्ध, जैन, सिद्ध, नाथ और संत परंपराओं ने लोकभाषाओं को ज्ञान-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। गोरखनाथ, कबीर, नानक, दादू और अन्य संतों की वाणी ने जटिल आध्यात्मिक प्रश्नों को लोकजीवन से जोड़ा। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मध्यकालीन संत और नाथ परंपराओं का अध्ययन करते हुए इस लोक-संपृक्ति को विशेष महत्व दिया है। इसी प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के विकास को लोकजीवन और सामाजिक चेतना से जोड़कर देखने की दृष्टि विकसित की।

समग्र रूप से भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल चेतना समन्वय और निरंतरता में निहित है। यह परंपरा स्थिर नहीं रही। समय-समय पर नए प्रश्नों को स्वीकार किया, पुराने विचारों की समीक्षा की और नवीन ज्ञान-धाराओं को एक स्थान दिया। इस परंपरा की प्रमुख शक्ति इसकी गतिशीलता में है। गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि इसी व्यापक परंपरा का एक विशिष्ट रूप है, जहाँ योग, देह, मन, गुरु और आत्मानुभूति के माध्यम से ज्ञान को जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से जोड़ा गया। इसलिए भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल अतीत की विरासत मानना उचित नहीं है। वह वर्तमान को समझने और भविष्य की ज्ञान-दृष्टि निर्मित करने के लिए भी एक महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करती है।

गोरखनाथ : परंपरा और ऐतिहासिक संदर्भ-

गोरखनाथ के काल-निर्धारण को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने गोरखनाथ और उनके समकालीन सिद्धों के काल तथा परंपरा से संबंधित विभिन्न मतों और प्रमाणों पर विचार किया है। उपलब्ध स्रोतों में भी गोरखनाथ के समय को लेकर अनेक मतों का उल्लेख मिलता है। किंतु इस ऐतिहासिक अनिश्चितता को गोरखनाथ के सांस्कृतिक प्रभाव के मूल्यांकन में बाधा नहीं बनना चाहिए। किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व की परंपरा का प्रभाव कई बार उसके निश्चित जीवनकाल से अधिक व्यापक होता है। गोरखनाथ की यही स्थिति है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नाथ संप्रदाय में गोरखनाथ को लोकजीवन से संबद्ध साधक के रूप में देखने का प्रयास किया।

गोरखनाथ के चिंतन में अनुभव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। शास्त्र ज्ञान का आधार हो सकता है, किंतु साधक की अंतिम उपलब्धि आत्मानुभूति से संबंधित है। यहाँ ज्ञान को केवल जानना नहीं, अपितु होना माना गया है। साधक किसी सत्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद रुकता नहीं। वह साधना के माध्यम से उस सत्य को अपनी चेतना का अंग बनाने का प्रयत्न करता है। यही कारण है कि नाथ परंपरा में योग की व्यावहारिकता अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि योग केवल सिद्धांत होता, तो उसकी साधना-पद्धति विकसित करने की आवश्यकता नहीं होती। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध और ध्यान आदि प्रक्रियाएँ इसी अनुभवात्मक ज्ञान की दिशा में साधक को प्रशिक्षित करती हैं। इस दृष्टि से गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि में ज्ञान और साधना अभिन्न हैं। गोरखनाथ की विचार-दृष्टि का सबसे विशिष्ट आयाम देह के प्रति उनका दृष्टिकोण है। नाथ परंपरा में शरीर को त्याज्य वस्तु के रूप में देखने की अपेक्षा उसे साधना का क्षेत्र माना गया। देह के भीतर स्थित प्राणशक्ति और चेतना के विभिन्न स्तरों को योगिक अनुशासन के माध्यम से अनुभव करने का प्रयास किया जाता है। यहाँ देह केवल शरीर-विज्ञान का विषय नहीं है। वह योगिक अनुभव की संरचना है। शरीर की शुद्धि, प्राण का नियंत्रण और मन की स्थिरता साधक को आत्मानुभूति की दिशा में अग्रसर करते हैं। इस संदर्भ में गोरखनाथ की देह-दृष्टि भारतीय ज्ञान परंपरा में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत देती है। आत्मज्ञान की यात्रा शरीर को अस्वीकार करके नहीं, अपितु उसे साधना के योग्य बनाकर आगे बढ़ती है।

गोरखनाथ के लिए मन साधना का केंद्रीय क्षेत्र है। मनुष्य का बाह्य जीवन उसके अंतःकरण की स्थिति से प्रभावित होता है। इसलिए ज्ञान का वास्तविक मार्ग मन के अनुशासन से होकर जाता है। पतंजलि ने योग को चित्तवृत्ति-निरोध के रूप में परिभाषित किया। गोरखनाथ की योग-दृष्टि अपनी विशिष्ट हठयोगिक संरचना के कारण पतंजलि से भिन्न है, फिर भी दोनों परंपराओं में मन के अनुशासन की केंद्रीयता दिखायी देती है। गोरखनाथ की साधना में शरीर और मन के बीच कोई विरोध नहीं है। शरीर को साधने से प्राण पर नियंत्रण स्थापित होता है और प्राण के अनुशासन से मन की स्थिरता का मार्ग खुलता है।

इस प्रकार उनकी ज्ञान-दृष्टि एक क्रम प्रस्तुत करती है—

देह-अनुशासन → प्राण-संयम → मनोनिग्रह → अंतःचेतना → आत्मानुभूति

यह क्रम गोरखनाथ की योगिक ज्ञान-दृष्टि को समझने की एक उपयोगी व्याख्यात्मक संरचना प्रदान करता है।

गुरु : ज्ञान का जीवंत माध्यम-

भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु का स्थान केवल शिक्षक का नहीं है। गुरु ज्ञान के जीवंत अनुभव का प्रतिनिधि है। नाथ परंपरा में यह भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। गोरखनाथ की परंपरा मत्स्येन्द्रनाथ से उनके संबंध के कारण गुरु-शिष्य परंपरा के विशिष्ट उदाहरण के रूप में देखी जाती है। गुरु साधक को मार्ग दिखाता है, किंतु साधना का अनुभव स्वयं साधक को करना पड़ता है। यहाँ गुरु-परंपरा ज्ञान को जीवित रखती है। ग्रंथ ज्ञान को स्थिर रूप देते हैं, जबकि गुरु-शिष्य परंपरा उसे अनुभव और व्यवहार में गतिशील बनाए रखती है। गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि में गुरु का महत्व इसी कारण है कि वह साधक को बाह्य सूचना से आंतरिक अनुभूति की दिशा में ले जाता है। गोरखनाथ के यहाँ योग ज्ञान का व्यावहारिक पक्ष है। यदि दर्शन प्रश्न प्रस्तुत करता है, तो योग उन प्रश्नों को साधना के स्तर पर जाँचने का मार्ग देता है। हठयोग की परंपरा में शरीर और प्राण पर विशेष ध्यान दिया गया। किंतु इसे केवल शारीरिक क्रियाओं तक सीमित करना नाथ परंपरा के साथ अन्याय होगा। हठयोग का व्यापक लक्ष्य चेतना के परिष्कार से संबंधित है। नाथपंथ के अध्ययन में यह तथ्य सामने आता है कि हठयोग उसकी मुख्य साधना-धारा रहा, लेकिन उसकी संरचना में विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक धाराओं के समन्वय के तत्व भी उपस्थित थे। गोरखनाथ का योग इस अर्थ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रयोगशीलता का उदाहरण है। साधक स्वयं साधना करता है और अनुभव के माध्यम से अपने भीतर परिवर्तन को पहचानता है।

गोरखनाथ की वाणी में बाहरी प्रदर्शन की अपेक्षा आंतरिक साधना पर बल दिया है। यह प्रवृत्ति सिद्ध और नाथ साहित्य की व्यापक विशेषता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में सिद्ध और नाथ परंपराओं की चर्चा करते हुए उनके धार्मिक-सांस्कृतिक प्रभावों को रेखांकित किया है। आचार्य शुक्ल जी की यह इतिहास-दृष्टि सिद्ध करती है कि साहित्यिक प्रवृत्तियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से अलग नहीं होतीं। गोरखनाथ की आलोचना का केंद्र केवल बाहरी कर्मकांड नहीं है। वे उस साधना का समर्थन करते हैं जिसमें मनुष्य स्वयं को बदलता है। इस प्रकार उनका आडंबर-विरोध आत्मानुशासन की स्थापना से जुड़ा है। यही प्रवृत्ति आगे चलकर संत काव्य में अधिक तीव्र रूप ग्रहण करती है। गोरखनाथ की वाणी का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका लोकाभिमुख स्वरूप है। ज्ञान यदि केवल कठिन शास्त्रीय भाषा में सीमित रहे, तो उसका सामाजिक प्रसार सीमित हो जाता है। नाथ सिद्धों की रचनाओं में लोकभाषा और अपभ्रंश से विकसित भाषिक रूपों का प्रयोग महत्वपूर्ण है। हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित नाथ सिद्धों की रचनाएँ में उपलब्ध सामग्री से भी स्पष्ट है कि नाथ साहित्य की भाषिक परंपरा हिंदी के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। गोरखनाथ की वाणी में जटिल योगिक और आध्यात्मिक प्रश्नों को संवादात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया। इससे ज्ञान का संबंध लोकजीवन से जुड़ा। यह प्रक्रिया हिंदी भाषा के विकास के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है।

गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि और भारतीय ज्ञानमीमांसा-

भारतीय ज्ञानमीमांसा का मूल प्रश्न केवल यह नहीं है कि मनुष्य क्या जानता है, बल्कि यह भी है कि ज्ञान क्या है, उसका स्वरूप क्या है, उसकी प्राप्ति के साधन कौन-से हैं और सत्य की पहचान किस प्रकार संभव है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में इस प्रश्न पर न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत, बौद्ध और जैन दर्शनों ने अपने-अपने ढंग से विचार किया। इसी बहुलतापूर्ण ज्ञान-दृष्टि के बीच गोरखनाथ की साधना-परंपरा एक विशिष्ट अनुभवपरक ज्ञान-दृष्टि प्रस्तुत करती है। गोरखनाथ का चिंतन किसी व्यवस्थित प्रमाणशास्त्र के रूप में विकसित नहीं हुआ, इसलिए उन्हें न्याय या मीमांसा की तरह औपचारिक ज्ञानमीमांसक कहना उचित नहीं होगा। फिर भी उनकी वाणी और नाथ योग की साधना-पद्धति में ज्ञान की एक स्पष्ट अवधारणा दिखायी देती है। इस दृष्टि में ज्ञान का सर्वोच्च रूप वह है जो साधक के प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभव से उत्पन्न हो। केवल शास्त्र का अध्ययन, तर्क-वितर्क या बाहरी धार्मिक आचरण पर्याप्त नहीं है। साधक को अपने शरीर, मन और चेतना के स्तर पर सत्य का साक्षात्कार करना पड़ता है। भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष को ज्ञान का महत्वपूर्ण प्रमाण माना गया है। किंतु गोरखनाथ की साधना में प्रत्यक्ष का अर्थ सामान्य इंद्रियानुभव तक सीमित नहीं है। योगिक साधना के माध्यम से प्राप्त अंतःअनुभूति उनके ज्ञान-विचार का महत्वपूर्ण आधार बनती है। शरीर और प्राण पर नियंत्रण, मन का संयम तथा ध्यान की प्रक्रिया साधक को ऐसी अनुभूति की ओर ले जाती है, जिसे नाथ परंपरा आत्मबोध की दिशा में महत्वपूर्ण मानती है। इस प्रकार गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि में अनुभव ज्ञान का साधन भी है और उसकी कसौटी भी। पतंजलि के योगदर्शन में चित्तवृत्ति-निरोध के माध्यम से पुरुष के स्वरूप के साक्षात्कार की बात कही गयी है। गोरखनाथ की साधना इससे पूर्णतः समान नहीं है, क्योंकि नाथ परंपरा ने हठयोग,

देह-साधना और प्राण-अनुशासन को विशेष महत्त्व दिया। फिर भी दोनों परंपराओं में एक बुनियादी साम्य दिखायी देता है— अशांत और असंयमित चित्त ज्ञान की उच्चतर अवस्था में बाधक है। गोरखनाथ के लिए मन को साधना इसलिए आवश्यक है कि बाहरी ज्ञान अंततः अंतःचेतना के परिष्कार से ही सार्थक बनता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नाथ संप्रदाय में नाथ साधना को भारतीय साधना-परंपरा के व्यापक विकासक्रम में रखकर देखा है। उनके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नाथ परंपरा ने शरीर, योग और अनुभव को साधना के केंद्रीय आधारों में प्रतिष्ठित किया। इसी संदर्भ में गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि को भारतीय ज्ञान परंपरा की अनुभवपरक धारा का महत्त्वपूर्ण रूप माना जाता है। गोरखनाथ के यहाँ गुरु भी ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। गुरु साधक को मार्ग प्रदान करता है, लेकिन अंतिम अनुभूति साधक को स्वयं प्राप्त करनी होती है। इस प्रकार गुरु-परंपरा और आत्मानुभूति परस्पर पूरक हैं। ज्ञान केवल हस्तांतरित सूचना नहीं, बल्कि साधना द्वारा अर्जित चेतना है।

गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष ज्ञान और आचरण की एकता है। वास्तविक ज्ञान मनुष्य के व्यवहार में संयम, विवेक और आत्मनियंत्रण उत्पन्न करता है। इसीलिए उनकी साधना में देहशुद्धि, मनोनिग्रह और इंद्रिय-संयम को महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार गोरखनाथ भारतीय ज्ञानमीमांसा में कोई औपचारिक प्रमाण-सिद्धांत प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि अनुभव, साधना और आत्मानुशासन पर आधारित ज्ञान-प्रतिमान सामने रखते हैं। उनकी दृष्टि में ज्ञान बाहर से अर्जित की जाने वाली वस्तु मात्र नहीं है; वह साधक के भीतर घटित होने वाली परिवर्तनकारी प्रक्रिया है। यही विशेषता गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि को भारतीय ज्ञान परंपरा के व्यापक विमर्श में विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण बनाती है।

समकालीन संदर्भ में गोरखनाथ की प्रासंगिकता-

वर्तमान समय सूचना-विस्फोट का समय है। इंटरनेट और डिजिटल तकनीक ने ज्ञान तक पहुँच को अत्यंत सरल बना दिया है। किंतु, सूचना की अधिकता ने ज्ञान और सूचना के बीच का अंतर भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। इस संदर्भ में गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाती है—क्या सूचना का संचय ही ज्ञान है? गोरखनाथ का उत्तर नकारात्मक होगा। उनके चिंतन की मूल दिशा यह बताती है कि ज्ञान का संबंध आंतरिक परिवर्तन से है। मनुष्य जितना अपने मन को समझता और नियंत्रित करता है, उतना ही उसकी चेतना परिष्कृत होती है। आज मानसिक एकाग्रता, आत्मअनुशासन और शरीर-मन की समग्रता पर होने वाली चर्चाएँ गोरखनाथ की परंपरा को नये संदर्भ में पढ़ने, समझने और देखने का अवसर देती हैं। हालाँकि पारंपरिक योगिक अवधारणाओं को आधुनिक विज्ञान का विकल्प मानना उचित नहीं है, लेकिन उनके दार्शनिक और सांस्कृतिक महत्त्व की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

निष्कर्ष-

गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि भारतीय ज्ञान परंपरा के उस जीवंत पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें ज्ञान पुस्तक या सिद्धांत की सीमा में नहीं रहता। वह साधना, अनुभव, आत्मानुशासन और जीवन-परिवर्तन की प्रक्रिया बन जाता है। उनके चिंतन में देह साधना का आधार है, मन आत्मानुशासन का क्षेत्र है, प्राण योगिक प्रक्रिया का माध्यम है, गुरु ज्ञान-मार्ग का निर्देशक है और आत्मानुभूति ज्ञान की चरम परिणति। इस प्रकार उनकी ज्ञान-दृष्टि मनुष्य के अस्तित्व को समग्रता में देखने का प्रयास करती है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अध्ययन ने गोरखनाथ और नाथपंथ के लोक-संपृक्त एवं सांस्कृतिक स्वरूप को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान किया है। रामचंद्र शुक्ल की साहित्येतिहास-दृष्टि नाथ-सिद्ध परंपरा को हिंदी साहित्य की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में देखने की दृष्टि देती है। गोरखनाथ की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उन्होंने ज्ञान को साधना से और साधना को जीवन से जोड़ा। उनकी परंपरा में ज्ञान किसी विशेष वर्ग की संपत्ति नहीं रहता। लोकभाषा, भ्रमणशील साधक-परंपरा और अनुभवपरक साधना के माध्यम से वह व्यापक सामाजिक क्षेत्र में पहुँचता है। इस दृष्टि से गोरखनाथ को भारतीय ज्ञान परंपरा में केवल हठयोग के आचार्य के रूप में देखना अधूरा होगा। वे अनुभवपरक ज्ञान, देह-साधना, मनोनिग्रह, गुरु-परंपरा और लोकाभिमुख आध्यात्मिक चेतना के महत्त्वपूर्ण प्रवक्ता हैं। समकालीन समय में उनकी प्रासंगिकता इस बात में है कि वे हमें ज्ञान और सूचना के अंतर को समझने की प्रेरणा देते हैं। सूचना बाहर से आती है; ज्ञान तभी सार्थक होता है जब वह मनुष्य के भीतर विवेक, अनुशासन और आत्मबोध उत्पन्न करे। इस अर्थ में गोरखनाथ की ज्ञान-दृष्टि आज भी भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनर्पाठ के लिए एक सशक्त आधार प्रस्तुत करती है।

संदर्भ :

1. उपाध्याय, ब. (2015). *भारतीय दर्शन*. चौखम्बा विद्याभवन.
2. गोरक्षनाथ. (2009). *सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति*. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.
3. गोरक्षनाथ. (2005). *गोरखबानी* (पीतांबरदत्त बड़थवाल, संपा.). हिंदी साहित्य सम्मेलन.
4. द्विवेदी, ह. प्र. (2019). *कबीर*. राजकमल प्रकाशन.
5. द्विवेदी, ह. प्र. (2021). *नाथ संप्रदाय*. लोकभारती प्रकाशन.
6. द्विवेदी, ह. प्र. (संपा.). (2009). *नाथ सिद्धों की रचनाएँ*. साहित्य भवन.
7. पतंजलि. (2018). *पातंजल योगदर्शन* (रामशंकर भट्टाचार्य, व्याख्या.). चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.
8. मिश्र, वि. (2005). *भारतीय चिंतन की परंपरा*. भारतीय ज्ञानपीठ.
9. राधाकृष्णन, स. (2008). *भारतीय दर्शन (खंड 1-2)*. राजपाल एंड संस.
10. शुक्ल, रा. च. (2015). *चिंतामणि: भाग 1*. लोकभारती प्रकाशन.
11. शुक्ल, रा. च. (2017). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा.

From Leadership to Classroom Practice: Examining the Role of School Principals in Supporting Teachers for Inclusive Education

SHRI NARENDRA KHICHI*

khichi.n16@gmail.com

SHRI RADHEY SHYAM†

radheynsuihr@gmail.com

Abstract

Inclusive education is no longer understood merely as the physical placement of children with disabilities in regular schools. It involves creating educational environments in which diverse learners can participate, learn, interact, and experience belonging. Teachers are central to this process because inclusive education is ultimately enacted through classroom practices. However, teachers' capacity to respond to learner diversity is shaped by the professional and organisational conditions in which they work. School principals therefore occupy an important position between inclusive education policy and classroom practice. This paper critically examines the role of school principals in supporting teachers to implement inclusive education, with particular attention to the Indian context. A critical narrative review of literature on inclusive education, teacher preparedness, inclusive school leadership, organisational support, and Indian policy was undertaken. The review suggests that principal leadership influences inclusive practice through interconnected mechanisms, including developing a shared vision, strengthening teacher capacity, facilitating collaboration, ensuring access to resources, providing instructional support, and monitoring implementation. At the same time, leadership should not be viewed as a direct or automatic determinant of inclusive classroom practice. Its influence is mediated by teacher workload, professional autonomy, specialist support, resource availability, school structures, and wider policy conditions. The paper identifies an important gap in existing research concerning the ways teachers experience and interpret principal support, particularly within Indian schools. A six-dimensional conceptual framework is proposed linking inclusive principal leadership with organisational conditions, teacher capacity, inclusive classroom practices, and student participation. The paper argues that effective inclusive leadership requires a shift from administrative compliance towards creating sustained professional and organisational conditions in which teachers can enact inclusion.

Keywords:

inclusive education, inclusive leadership, school principals, teacher support, inclusive classrooms, teacher capacity, children with disabilities, India

* HoS, GBSSS, Amalwas, Jwalapuri, Delhi

† TGT (Social Science), GBSSS Amalwas, Jwalapuri, Delhi

1. Introduction

Inclusive education represents a significant shift in how educational systems understand learner diversity. Earlier approaches frequently positioned disability as a characteristic requiring separate provision or specialised settings. Inclusive education places greater emphasis on transforming schools so that differences among learners are accommodated within common educational environments.

This transformation involves more than admitting children with disabilities to regular schools. Physical placement does not necessarily guarantee participation, learning, social interaction, or belonging. A learner may be present in a classroom while remaining excluded from meaningful classroom activities because instructional methods, materials, assessment practices, communication systems, or social relationships create barriers to participation.

The Salamanca Statement was an important international milestone in this development. It emphasised the capacity of regular schools to respond to diverse learning needs and contributed to the international movement towards inclusive education. The principle has subsequently been reflected in national legislation and educational policies in many countries.

In India, inclusive education has received significant policy attention through the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016, the National Education Policy (NEP) 2020, and Samagra Shiksha. The Rights of Persons with Disabilities Act establishes provisions concerning inclusive education and the duties of educational institutions. Samagra Shiksha provides support related to children with special needs, teacher training, special educators, assistive devices, teaching-learning materials, and accessibility. The NEP 2020 similarly places equity and inclusion within the broader vision of school education.

Yet the existence of policy does not guarantee its implementation.

The classroom remains the principal site where inclusion becomes visible. Teachers determine how curriculum is presented, how learners participate, how learning difficulties are addressed, how assessment is adapted, and how peer relationships are facilitated. Consequently, teacher preparedness is a critical element in the implementation of inclusive education.

Research has repeatedly drawn attention to teachers' attitudes, preparedness, and confidence. For example, Bhatnagar and Das (2014) examined the attitudes of 470 secondary school teachers towards inclusive education in New Delhi and demonstrated the importance of understanding teachers' perspectives when considering inclusion. However, teacher attitudes cannot be interpreted independently of the organisational context in which teachers work.

A teacher may support inclusion philosophically but encounter difficulties when implementing it because of limited preparation time, large classes, inadequate resources, insufficient specialist support, or competing responsibilities. This suggests that teacher capacity is not solely an individual characteristic. It is also shaped by the conditions created within the school.

The school principal therefore becomes an important actor in the implementation process.

The principal influences school priorities, resource allocation, professional development, collaboration, communication, monitoring, and organisational culture. However, it would be overly

simplistic to assume that effective leadership automatically produces inclusive classrooms. Leadership operates through multiple organisational and contextual conditions.

Recent research supports this more nuanced understanding. A systematic review of empirical research on inclusive principal leadership identified three broad areas of leadership practice: developing a shared commitment to inclusion, establishing inclusive organisational conditions, and building instructional and leadership capacity (DeMatthews et al., 2026).

The critical issue is therefore not simply whether principals support inclusive education. The more important question is **how principal support creates conditions that enable teachers to enact inclusive practices**.

This paper examines that relationship.

2. Purpose of the Paper

The purpose of this paper is to critically examine the role of school principals in supporting teachers for inclusive classroom practice. The paper addresses four questions:

1. What forms of principal leadership are associated with the development of inclusive schools?
2. How can principals strengthen teachers' capacity to implement inclusive classroom practices?
3. What organisational and contextual conditions mediate the influence of principal leadership?
4. What gaps remain in research concerning teachers' experiences of principal support, particularly in the Indian context?

The paper does not attempt to establish a causal relationship between principal leadership and student outcomes. Instead, it develops a conceptual understanding of the mechanisms through which leadership may influence teachers' capacity to implement inclusion.

3. Methodological Approach

This paper adopts a **critical narrative review** approach.

A critical narrative review is appropriate because the purpose is to interpret and synthesise literature across interconnected areas rather than calculate a pooled statistical effect.

Literature was considered across four broad areas:

1. inclusive education and inclusive classroom practices;
2. school and principal leadership;
3. teacher preparedness, attitudes, and professional support; and
4. Indian policy and school-level implementation.

Peer-reviewed research concerning inclusive leadership and teacher perspectives was prioritised. Relevant policy documents from the Government of India and UNESCO were also considered because inclusive education is strongly shaped by legislative and policy expectations.

The recent systematic review by DeMatthews et al. (2026) provides an important contemporary foundation. The review examined empirical studies of inclusive principal leadership published between 1995 and January 2024 and identified 38 studies conducted across 13 countries. Its findings were used to strengthen the conceptual interpretation developed in this paper.

The literature was examined thematically rather than statistically. Particular attention was given to evidence concerning: shared inclusive vision; teacher professional development; collaboration; organisational conditions; resources; instructional leadership; school culture; and monitoring and reflection.

The purpose of this approach is not to claim that all principals influence inclusion in the same way. Instead, the review considers the conditions under which leadership may facilitate or constrain teachers' inclusive practice.

4. Conceptualising Inclusive Education

Inclusive education needs to be distinguished from simple integration. Integration may involve placing learners with disabilities within existing mainstream structures. Inclusion requires greater attention to whether those structures themselves are capable of responding to learner diversity. This distinction changes the question from:

Can the learner fit into the existing classroom?

to:

How can the classroom reduce barriers to the learner's participation and learning?

An inclusive classroom may therefore require differentiated instruction, flexible grouping, accessible teaching-learning materials, adapted assessment, peer support, assistive technology, alternative communication systems, and reasonable accommodations.

However, the implementation of these practices requires teacher knowledge and confidence.

Saloviita (2019), for example, examined factors associated with classroom teachers' attitudes towards inclusive education and demonstrated the relevance of teacher perceptions to inclusive practice. Such research highlights the importance of teacher attitudes, but it also raises a broader question: **what shapes those attitudes and the confidence to act upon them?**

The school environment is one possible influence. Teachers operate within organisational systems. Their opportunities to learn, collaborate, access specialist expertise, obtain resources, and discuss classroom difficulties are affected by school-level decisions.

Consequently, inclusive education should be understood as both a **classroom responsibility and an organisational responsibility**.

5. From Teacher Preparedness to Teacher Capacity

Teacher preparedness is often discussed as though it were an individual quality. However, the ability to implement inclusion depends on more than knowledge acquired through teacher education. Teacher capacity includes at least four interconnected elements:

- knowledge of inclusive pedagogy;
- confidence in adapting instruction;
- access to professional and specialist support;
- opportunities to apply and reflect upon new practices.

This distinction is important.

A teacher may know that differentiated instruction is desirable but lack the time or resources required to differentiate materials for a large class. Similarly, a teacher may understand the importance of individualised support but have limited access to specialist advice.

Therefore:

Teacher capacity is partly constructed by the organisational environment.

This provides the conceptual bridge between teacher practice and school leadership.

6. The Principal as an Inclusive Leader

The role of the principal has traditionally been associated with administration, discipline, staffing, infrastructure, and institutional management. Contemporary leadership perspectives place greater emphasis on teaching, learning, professional development, collaboration, and school improvement.

The UNESCO Global Education Monitoring Report on leadership identifies four broad dimensions of effective educational leadership: setting expectations, focusing on learning, fostering collaboration, and developing people. These dimensions have direct relevance to inclusive education. An inclusive principal therefore does not simply ensure that children with disabilities are enrolled. The principal must consider:

- whether teachers understand inclusive education;
- whether teachers have access to professional learning;
- whether general and special educators collaborate;
- whether classrooms are accessible;
- whether learning materials are available;
- whether students with disabilities participate meaningfully;
- whether teachers can discuss difficulties;
- and whether school monitoring considers participation as well as compliance.

Sider et al. (2021), in their study of Canadian school principals, identified relationships, modelling behaviours, communication, and lack of preparation or professional isolation as significant themes in principals' experiences of supporting students with special education needs.

This suggests that inclusive leadership has both **organisational and relational dimensions**.

The principal influences inclusion through formal decisions, but also through everyday interactions and the expectations communicated to teachers.

7. Six Dimensions of Principal Support for Teachers

The literature reviewed in this paper suggests six interconnected dimensions through which principals can support teachers.

7.1 Inclusive Vision and Shared Expectations: The first responsibility is developing a shared understanding that every learner belongs to the school community.

If disability is considered exclusively the responsibility of the special educator, inclusion is unlikely to become a whole-school practice.

The principal can communicate that all teachers have responsibility for learner participation and progress.

However, an inclusive vision has value only when supported by organisational decisions. A school cannot claim to prioritise inclusion while failing to provide reasonable access to resources, collaboration, or professional learning.

Thus, **vision must be accompanied by action.**

7.2 Professional Learning and Teacher Capacity: Teachers require continuing opportunities to develop inclusive pedagogical knowledge. Professional learning may address:

differentiated instruction;	Universal Design for Learning;	disability awareness;
classroom accommodations;	accessible assessment;	assistive technology;
communication strategies;	curriculum adaptation; and	behaviour support.

Samagra Shiksha recognises the importance of sensitisation and training for general teachers and capacity building for special educators.

The principal's role extends beyond sending teachers to workshops. Professional learning should be connected to actual classroom problems. School-based professional learning may include: peer observation; demonstration lessons; case discussions; collaborative planning; mentoring; professional learning communities; and reflection on classroom experiences.

This approach is more likely to connect professional knowledge with classroom practice than training that remains disconnected from teachers' everyday challenges.

7.3 Collaboration Between General and Special Educators: Collaboration is another important dimension of principal support.

General teachers possess knowledge of curriculum, classroom routines, and peer relationships. Special educators bring specialised knowledge concerning disability, accommodations, assessment, assistive technology, and individual support. These forms of knowledge can complement each other.

However, collaboration cannot be created merely through an instruction to "work together."

It requires: time; clear responsibilities; communication; shared planning; professional respect; and institutional support.

The principal therefore plays an important organisational role.

If collaborative planning is not given time within the school schedule, it may remain informal and inconsistent.

7.4 Resources and Accessibility: Teachers cannot implement inclusive practices effectively without appropriate resources. These may include:

accessible teaching-learning materials; assistive devices; adapted worksheets; visual supports; communication aids; accessible digital content; Braille or large-print resources; suitable classroom arrangements; barrier-free infrastructure.

Samagra Shiksha provides for several such forms of support.

However, resource provision should not be confused with resource utilisation.

A school may possess assistive technology that teachers do not know how to use. A school may have accessible infrastructure while learning materials remain inaccessible.

Therefore, principals need to consider both:

availability of resources and teachers' capacity to use them.

7.5 Instructional Leadership: Inclusive leadership must eventually reach classroom instruction.

Principals can support teachers through classroom observation, feedback, modelling, and professional dialogue. Observation can focus on:

student participation; accessibility of instructions; differentiation; peer interaction; use of learning materials; assessment practices; learner independence; & opportunities for meaningful engagement.

However, observation presents an important tension.

When observation is used primarily for compliance, teachers may experience it as surveillance.

When it is developmental, it can support professional learning.

Thus, the question is not simply whether principals observe classrooms. The important question is **how teachers experience that observation.**

7.6 Monitoring, Reflection and Follow-Up: Monitoring is necessary for sustainable implementation. Principals can monitor: learner participation; individual support plans; classroom adaptations; teacher support needs;

collaboration between staff; accessibility; student progress; and participation in co-curricular activities. However, monitoring should not become a paperwork exercise.

The purpose should be to identify barriers and determine what support is required.

A useful cycle is:

Identify barrier → understand need → plan response → implement → review → modify.

This changes monitoring from inspection into continuous improvement.

Teacher Voice and the Leadership–Practice Relationship

A critical weakness in much discussion of inclusive leadership is the tendency to examine what principals **intend to provide** rather than what teachers **experience as support**. This distinction is important.

A principal may consider a one-day workshop adequate professional development. Teachers may consider it insufficient if they still lack classroom assistance or opportunities for follow-up.

A principal may describe collaboration as effective. Teachers may report that they rarely have time to meet with special educators.

A principal may believe that classroom observation supports teachers. Teachers may experience it as evaluation.

Research by Khaleel, Alhosani, and Duyar (2021) is valuable because it specifically examines the role of school principals in promoting inclusive schools from teachers' perspectives.

Teacher experience should therefore be central to research on principal support.

This leads to an important proposition:

The effectiveness of principal support should be evaluated not only by leadership intention or administrative provision but also by teachers' perceptions of usefulness and its relationship with classroom practice.

This proposition provides a stronger basis for empirical research.

Inclusive Leadership Is Context-Dependent

It would be inappropriate to treat principal leadership as a universal solution to the challenges of inclusion. Principals operate within systems.

Their influence may be constrained by: school size; class size; teacher workload; availability of special educators; funding; infrastructure; leadership autonomy; administrative requirements; teacher experience; and wider policy conditions.

This means that two principals demonstrating similar commitment to inclusion may achieve different outcomes because their organisational contexts differ.

Scheer (2021) provides a useful framework for understanding principal leadership within broader organisational and policy contexts. Importantly, the framework should not be interpreted as establishing a simple causal relationship between leadership practices and inclusive outcomes.

This contextual understanding prevents an overly individualistic interpretation of leadership.

The problem of inclusion cannot simply be attributed to principals or teachers. It is produced through interactions between leadership, organisational structures, professional capacity, resources, and policy.

The Indian Policy–Practice Context

India provides a particularly important setting for examining the relationship between school leadership and inclusive education.

The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 provides a legal basis for inclusive education and establishes responsibilities for educational institutions.

The National Education Policy 2020 places equity and inclusion among the important principles guiding school education. Samagra Shiksha provides mechanisms supporting children with special needs through teacher training, special educators, assistive devices, teaching-learning materials, accessibility, and other forms of support. These policy provisions demonstrate that inclusion is a recognised responsibility of the education system. However, policy implementation occurs within schools.

The principal becomes a mediator between:

Policy expectations

and

classroom realities.

This creates a policy–leadership–practice relationship:

National Policy**School Leadership****Organisational Conditions****Teacher Capacity****Classroom Practice****Student Participation**

The principal therefore does not simply implement policy. The principal interprets, prioritises, coordinates, and operationalises it.

At the same time, principals may themselves have limited authority over staffing, resources, specialist appointments, or broader administrative structures.

This creates an important tension:

Principals may be held responsible for inclusive implementation without having complete control over the conditions required for that implementation.

This tension deserves greater attention in Indian research.

11. Principal Support and the Risk of Compliance

An important critical issue concerns the difference between **implementation and compliance**.

Schools may demonstrate compliance through: completed documentation; training attendance; individual support plans; accessibility reports; enrolment records.

However, these indicators do not necessarily demonstrate meaningful inclusion.

A student may have an IEP without receiving appropriate classroom support.

A teacher may attend inclusive education training without changing instructional practice.

A school may have a ramp without providing accessible learning materials.

Therefore, inclusive leadership should not be evaluated solely through administrative indicators.

A stronger approach is to examine whether leadership practices contribute to: teacher capacity; classroom adaptation; participation; student engagement; belonging; and learning.

This shifts the focus from **"Was the programme implemented?"** to **"Did implementation reduce barriers for learners?"**

12. Proposed Conceptual Framework

Based on the critical synthesis, this paper proposes a six-dimensional framework for examining principal support.

Six dimensions

1. **Inclusive Vision:** Shared expectations and commitment to learner diversity.
2. **Teacher Capacity:** Professional development, mentoring, confidence, and knowledge.
3. **Collaboration:** General–special educator collaboration and professional communication.
4. **Resources:** Accessible materials, assistive technology, infrastructure, and classroom support.
5. **Instructional Leadership:** Classroom observation, feedback, modelling, and pedagogical guidance.
6. **Monitoring and Reflection:** Review of student participation, individual support, progress, and classroom barriers.

These dimensions influence teacher capacity through organisational conditions.

Conceptual pathway

Inclusive Principal Leadership



Organisational Conditions: Time, resources, collaboration, professional learning, school culture



Teacher Capacity: Knowledge, confidence, self-efficacy, problem-solving



Inclusive Classroom Practices

Differentiation, accommodations, accessible instruction, flexible assessment, peer participation



Student Outcomes: Participation, engagement, belonging, learning

The pathway is moderated by contextual factors such as school size, teacher workload, specialist availability, resources, and principal autonomy.

The framework is therefore **conceptual rather than causal**.

It provides a structure for future empirical research rather than claiming that the six dimensions automatically produce inclusive outcomes.

Research Gap

The review identifies several areas requiring further investigation.

First, existing literature provides evidence that school leadership is important for inclusive education, but there is insufficient understanding of **how teachers experience different forms of principal support**.

Second, leadership practices are often examined separately from teacher capacity. Greater attention is needed to the mechanisms connecting principal support with teachers' knowledge, confidence, and classroom practice.

Third, the influence of organisational conditions requires further examination. Principal support may be effective only when teachers have adequate time, resources, specialist assistance, and professional autonomy.

Fourth, much of the empirical literature on inclusive leadership originates outside India. Although Indian research has examined teacher attitudes and broader implementation issues, more research is needed on the specific relationship between **principal support and teacher practice**.

Fifth, there is a need to distinguish between administrative compliance and meaningful inclusion.

These gaps suggest the need for research that combines:

Principal perspective; Teacher perspective; Organisational conditions; Classroom practice.

A study based on only one of these perspectives may provide an incomplete understanding of inclusive leadership.

Implications for Research

The conceptual framework developed here can provide the basis for future empirical investigation. A mixed-method design could examine the relationship between principal support and teachers' inclusive practices.

Possible independent variable

The principal's support for inclusive education may be considered the possible independent variable, measured through inclusive vision, professional development, collaboration, resources, instructional support, and monitoring. Teacher capacity may serve as a mediating variable, assessed through teachers' knowledge, confidence, self-efficacy, attitudes, and perceived competence. The possible outcome variable is inclusive classroom practice, measured through differentiation, classroom accommodations, accessible materials, flexible assessment, participation opportunities, and peer interaction. Several contextual variables, including school type, class size, teaching experience, availability of special educators, school location, principal experience, and perceived workload, may also influence the relationship among these variables. A strong research design could combine teacher and principal questionnaires with semi-structured interviews and classroom observations. Such triangulation would provide a more comprehensive understanding of inclusive leadership and help identify differences between principals' perceptions of support and teachers' actual experiences of that support.

A particularly strong design would combine teacher questionnaires with principal questionnaires, semi-structured interviews, and classroom observations.

Such triangulation would help address an important problem in leadership research: the possibility that **leaders' perceptions of support differ from teachers' experiences of support**.

Implications for School Practice

The review suggests that inclusive education should be a whole-school responsibility involving principals, teachers, and special educators. Professional development should be connected to classroom needs through training, mentoring, and reflection. Schools should provide time for collaboration and joint planning and ensure that available resources are effectively used. Classroom

observation should support professional growth rather than evaluation-related fear. Teachers should participate in decision-making because of their practical classroom experience. Schools should focus on actual student participation and learning, not merely documentation. Finally, principal preparation and continuing professional development should include inclusive leadership to promote sustainable inclusive practices.

Conclusion

Inclusive education is ultimately realised through everyday interactions between teachers and learners. Policies can establish rights and expectations, but classroom practices determine whether learners experience genuine participation, learning, and belonging.

Teachers are therefore central to inclusive education. Yet teachers cannot be expected to carry the responsibility for inclusion individually. Their capacity is shaped by the organisational environment in which they work.

School principals occupy a critical position within that environment.

The literature reviewed in this paper suggests that principals influence inclusive education through six interconnected areas: inclusive vision, teacher capacity, collaboration, resources, instructional leadership, and monitoring and reflection. These practices can create conditions that enable teachers to respond more effectively to learner diversity.

However, principal leadership should not be treated as a direct or automatic cause of inclusive classroom practice. Its influence is mediated by school structures, teacher workload, specialist availability, resources, professional autonomy, and policy conditions. This makes inclusive leadership a contextual and relational process rather than a simple set of administrative responsibilities.

The distinction between **principal intention and teacher experience** is particularly important. A leadership practice can be intended as support but experienced as compliance. Professional development can raise awareness without changing classroom practice. Monitoring can strengthen accountability but can also become bureaucratic. Resources can exist without being effectively used.

Consequently, the quality of inclusive leadership should be judged not simply by what principals provide but by whether their actions create conditions that enable teachers to practise inclusion meaningfully.

The Indian context makes this issue particularly significant. The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016, NEP 2020, and Samagra Shiksha establish important commitments towards inclusive education. The continuing challenge is translating these commitments into sustainable classroom practice.

The principal is an important mediator in this process, but not an isolated one.

The conceptual framework proposed in this paper places principal leadership at the beginning of a broader pathway:

Inclusive Leadership → Organisational Conditions → Teacher Capacity → Inclusive Classroom Practice → Student Participation and Belonging.

This framework offers a basis for future empirical research, particularly research that brings together the perspectives of principals and teachers.

The most important shift is therefore from asking whether principals support inclusion to examining **how their leadership creates the conditions in which teachers can successfully enact it.**

Inclusive leadership, in this sense, is not merely the management of an inclusive education programme. It is the creation of a professional and organisational environment in which **every teacher is supported to teach every learner.**

References

- Bhatnagar, N., & Das, A. (2014). Attitudes of secondary school teachers towards inclusive education in New Delhi, India. *Journal of Research in Special Educational Needs*, 14(4), 255–263. <https://doi.org/10.1111/1471-3802.12016>
- DeMatthews, D. E., Conroy, K., & McKenzie, L. (2026). Inclusive principal leadership from 1995 to 2024: A systematic literature review. *Review of Educational Research*. <https://doi.org/10.3102/00346543261446662>
- Government of India. (2016). *The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016*. Ministry of Law and Justice.
- Khaleel, N. K., Alhosani, M. A., & Duyar, I. (2021). The role of school principals in promoting inclusive schools: A teachers' perspective. *Frontiers in Education*, 6, 603241. <https://doi.org/10.3389/educ.2021.603241>
- Ministry of Education, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India.
- Ministry of Education, Government of India. (n.d.). *Samagra Shiksha: Inclusive Education for Children with Special Needs*. Government of India.
- Saloviita, T. (2019). Explaining classroom teachers' attitudes towards inclusive education. *Support for Learning*, 34(4), 432–442. <https://doi.org/10.1111/1467-9604.12277>
- Scheer, D. (2021). Integrated framework model for the leadership role of principals in inclusive education. *European Journal of Education*, 56(4), 660–680. <https://doi.org/10.1111/ejed.12480>
- Sider, S., Maich, K., Morvan, J., Villella, M., Ling, P., & Repp, C. (2021). Inclusive school leadership: Examining the experiences of Canadian school principals in supporting students with special education needs. *Journal of Research in Special Educational Needs*, 21(3), 233–241. <https://doi.org/10.1111/1471-3802.12515>
- UNESCO. (2024). *Global Education Monitoring Report 2024/5: Leadership in education—Lead for learning*. UNESCO.

हिन्दी भाषा और एआई : अवसर, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ

डॉ. गेलजी भाटिया*

geljibhatiya@gujaratvidyapith.org

सारांश

प्रस्तुत आलेख में हिंदी भाषा और AI (Artificial Intelligence) जिसका हिंदी अनुवाद कृत्रिम बुद्धिमत्ता है। इन दोनों का परस्पर संबंध, उसके अवसरों, चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं का अध्ययन किया गया है। वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षा, प्रशासन, संचार, स्वास्थ्य, व्यापार तथा शोध के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन ला रही है। हिंदी जैसी व्यापक जनभाषा के लिए AI डिजिटल समावेशन, ज्ञान के लोकतंत्रीकरण तथा वैश्विक स्तर पर भाषा के विस्तार का प्रभावी माध्यम बनकर उभर रही है। प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP), मशीनी अनुवाद, वाक् पहचान (Speech Recognition), टेक्स्ट-टू-स्पीच, ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकग्निशन (OCR) तथा चैटबॉट जैसी तकनीकों ने हिंदी भाषा के उपयोग को अधिक सरल और प्रभावी बनाया है।

शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि AI के माध्यम से हिंदी शिक्षा, ई-गवर्नेंस, सांस्कृतिक संरक्षण, साहित्यिक अध्ययन तथा शोध कार्यों में नए आयाम स्थापित हो रहे हैं। इसके साथ ही गुणवत्तापूर्ण भाषायी डेटा का अभाव, बोलियों की विविधता, व्याकरणिक एवं लिपिगत जटिलताएँ, एल्गोरिथ्मिक पक्षपात, डेटा गोपनीयता तथा डिजिटल विभाजन जैसी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। अध्ययन का निष्कर्ष है कि यदि सरकार, शैक्षणिक संस्थान, उद्योग तथा शोध संस्थाएँ समन्वित रूप से कार्य करें और हिंदी के लिए समृद्ध भाषायी संसाधन विकसित किए जाएँ, तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी को वैश्विक ज्ञान-विज्ञान, डिजिटल संचार तथा अनुसंधान की सशक्त भाषा के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

की-वर्ड

हिंदी भाषा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), डिजिटल संसाधन, प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP), मशीनी अनुवाद, वाक् पहचान, टेक्स्ट-टू-स्पीच, समावेशन, भाषायी प्रौद्योगिकी, ई-गवर्नेंस, शिक्षा, सूचना, इकोसिस्टम, AI-स्टार्टअप, विश्लेषण, डिजिटल मानविकी, सांस्कृतिक संरक्षण, शोध एवं नवाचार, ट्यूटर, स्मार्ट असाइनमेंट सहायता, स्वचालित, मूल्यांकन,

प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी को प्रौद्योगिकी और सूचनाओं की शताब्दी कहा जा सकता है, और इस परिवर्तन के केंद्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) है। AI ने केवल उद्योग, चिकित्सा, व्यापार और संचार को ही नहीं बदला, बल्कि भाषा की दुनिया में भी गहरे परिवर्तन किए हैं। विशेषतः हिंदी जैसी व्यापक, जीवंत और जनभाषा के लिए AI एक ऐसी शक्ति बनकर उभरी है जो उसकी डिजिटल उपस्थिति, वैश्विक पहुंच और ज्ञान-प्रसार की क्षमता को नया रूप दे सकती है।

हिंदी भारत की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, फिर भी लंबे समय तक डिजिटल संसाधनों, मानकीकृत कॉर्पस, उच्च-गुणवत्ता वाले प्रशिक्षण-डेटा और तकनीकी उपकरणों की कमी के कारण यह AI-आधारित नवाचारों में पीछे रही। हाल के वर्षों में Bhashini जैसी सरकारी पहलें, A I4 Bharat जैसे शोध-प्रयास, तथा न्यूरल मशीन अनुवाद, वाक् पहचान और टेक्स्ट-टू-स्पीच जैसी तकनीकों ने हिंदी के लिए नए द्वार खोले हैं। इसलिए हिंदी और AI के संबंध को केवल तकनीकी प्रश्न के रूप में नहीं, बल्कि भाषायी समानता, डिजिटल समावेशन और सांस्कृतिक संरक्षण की दृष्टि से देखना आवश्यक है। AI और हिंदी का संबंध AI का भाषा-क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण योगदान प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) है, जिसके अंतर्गत मशीनी अनुवाद, स्वचालित वाक् पहचान, टेक्स्ट-टू-स्पीच, चैट बॉट, भाव-विचार विश्लेषण, OCR, और

* प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, भाषा- साहित्य संकाय, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद-09

सूचना पुनर्प्राप्ति जैसी प्रणालियाँ आती हैं। हिंदी के संदर्भ में इन तकनीकों ने अनेक व्यवहारिक संभावनाएँ खोली हैं, क्योंकि हिंदी केवल शहरी डिजिटल उपयोगकर्ताओं की भाषा नहीं, बल्कि ग्रामीण, अर्ध-शहरी, शैक्षिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से प्रयुक्त होती है। सरकारी और संस्थागत स्तर पर भी हिंदी-समर्थ AI पर ध्यान बढ़ा है। PIB के अनुसार भारत बहुभाषी डिजिटल अवसंरचना के रूप में AI का उपयोग कर रहा है, और BHASHINI इस दिशा का प्रमुख मंच है जो अनुवाद, speech-to-text, text-to-speech, transliteration और document understanding जैसी सेवाएँ प्रदान करता है। Science.org की रिपोर्ट के अनुसार Bhashini का उद्देश्य भारत की भाषायी विविधता को डिजिटल बाधा नहीं, बल्कि डिजिटली सुलभ शक्ति में बदलना है। इससे स्पष्ट है कि हिंदी का AI से संबंध अब प्रयोगात्मक चरण से आगे बढ़कर व्यवहारिक और संस्थागत चरण में प्रवेश कर चुका है।

शोध का उद्देश्य

1. हिंदी भाषा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के परस्पर संबंध का अध्ययन करना।
2. हिंदी भाषा के विकास में AI की भूमिका एवं उपयोगिता का विश्लेषण करना।
3. शिक्षा, प्रशासन, शोध, साहित्य तथा संचार के क्षेत्र में AI द्वारा उपलब्ध अवसरों का मूल्यांकन करना।
4. हिंदी भाषा के संदर्भ में AI के समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करना।
5. हिंदी के डिजिटल विकास एवं भाषायी समावेशन के लिए आवश्यक नीतिगत एवं संस्थागत उपायों का सुझाव देना।
6. भविष्य में हिंदी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के समन्वित विकास की संभावनाओं का अध्ययन करना।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) हिंदी के लिए अवसर

हिंदी और AI के मेल से सबसे बड़ा पहला अवसर **ज्ञान का लोकतंत्रीकरण** है। जब सरकारी जानकारी, शिक्षा-सामग्री, स्वास्थ्य-सलाह, कृषि-निर्देश और नागरिक सेवाएँ हिंदी में AI-आधारित माध्यमों से उपलब्ध होंगी, तब उन करोड़ों लोगों तक डिजिटल संसाधन पहुँच सकेंगे जो अंग्रेजी या अन्य तकनीकी भाषाओं में सहज नहीं हैं। Bhashini जैसे मंच इसी उद्देश्य से बनाए गए हैं कि उपयोगकर्ता अपनी मातृभाषा में सूचना प्राप्त कर सकें और सेवाओं का लाभ उठा सकें।

दूसरा बड़ा अवसर **भाषायी समावेशन** का है। भारत में अनेक भाषाएँ, बोलियाँ और उपभाषाएँ हैं; PIB के अनुसार देश में 22 अनुसूचित भाषाएँ, 99 गैर-अनुसूचित भाषाएँ और हजारों मातृभाषाएँ तथा जनजातीय भाषाएँ हैं। AI-आधारित बहुभाषी प्रणालियाँ इन भाषाओं के बीच सेतु का कार्य कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी से अंग्रेजी, हिंदी से क्षेत्रीय भाषाएँ, या हिंदी से बोलियों के बीच स्वचालित अनुवाद और वाक्-आधारित संवाद संभव हो रहा है।

तीसरा अवसर **शिक्षा** में है। हिंदी माध्यम के छात्रों के लिए AI ट्यूटर, स्मार्ट असाइनमेंट सहायता, स्वचालित उत्तर-मूल्यांकन, प्रश्नोत्तर प्रणाली, और व्यक्तिगत अधिगम सहायक अधिक सुलभ बन सकते हैं। भाषा-शिक्षा में AI चैट बॉट और अनुवाद-सहायक विद्यार्थी की भाषा-क्षमता, शब्दावली और लेखन को बेहतर बनाने में सहायक हो सकते हैं। हिंदी साहित्य, व्याकरण, आलोचना और लेखन-शैली की शिक्षा में AI सहायक उपकरणों का उपयोग शिक्षण को अधिक संवादात्मक और प्रभावी बना सकता है।

चौथा अवसर **प्रशासन और जनसेवा** में दिखाई देता है। यदि सरकारी पोर्टल, शिकायत-निवारण, ई-गवर्नेंस, स्वास्थ्य-सेवाएँ, कृषि सूचना और न्याय-सम्बंधी सामग्री हिंदी में AI की सहायता से उपलब्ध हो, तो जनता की भागीदारी अधिक सहज होगी। Bhashini को इसी प्रकार बहुभाषी डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना के रूप में विकसित किया गया है।

पाँचवाँ अवसर **सांस्कृतिक संरक्षण** से जुड़ा है। AI की मदद से पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण, पाठ-परिचालन, OCR, भाषायी खोज और विरासत-सामग्री तक पहुँच आसान की जा सकती है। PIB के अनुसार AI भारत की सांस्कृतिक धरोहर, ज्ञान-सिस्टम और भाषायी विविधता को संरक्षित करने में सहायक है। हिंदी साहित्य, लोकभाषा, लोककथा, जीवनी, आलोचना और पुरालेखीय सामग्री के अध्ययन में यह एक शक्तिशाली साधन बन सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की प्रमुख चुनौतियाँ

इतने अवसरों के बावजूद हिंदी के लिए AI का मार्ग सरल नहीं है।

पहली चुनौती है **गुणवत्तापूर्ण डेटा का अभाव**। विज्ञान org की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय भाषाओं के लिए मानकीकृत पाठ और संगठित प्रशिक्षण-डेटा की कमी एक बड़ी बाधा रही है। हिंदी में भी व्यापक, संतुलित और विविध डेटा-संग्रह की आवश्यकता है, जो साहित्यिक, प्रशासनिक, सामाजिक और बोलचाल की विभिन्न शैलियों को समेट सके।

दूसरी चुनौती है **बोलियों और उपभाषाओं की विविधता**, हिंदी केवल एकरूप भाषा नहीं, बल्कि अनेक क्षेत्रीय रूपों, स्थानीय प्रयोगों और सांस्कृतिक परतों वाली भाषा है। एक AI मॉडल मानक हिंदी में तो कुछ हद तक प्रभावी हो सकता है, लेकिन अवधी, ब्रज, भोजपुरी, हरियाणवी, बुंदेली, मारवाड़ी, या जनजातीय भाषाई प्रभाव वाले हिंदी प्रयोगों में त्रुटियाँ कर सकता है। इसी कारण Bhashini और अन्य मंचों को स्थानीय भाषायी सूक्ष्मताओं पर विशेष ध्यान देना पड़ रहा है।

तीसरी चुनौती है **व्याकरणिक और लिपिगत जटिलता**, हिंदी की लिपि देवनागरी है, जिसमें संयुक्ताक्षर, मात्रा-चिह्न, संदर्भ-आधारित शब्द रचना और वर्तनी विविधताएँ AI प्रणालियों के लिए चुनौती प्रस्तुत करती हैं। OCR, ASR और मशीन अनुवाद में इन जटिलताओं के कारण त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है। हिंदी में एक ही अर्थ के लिए कई समानार्थक या प्रासंगिक रूप हो सकते हैं, जिससे अर्थ-सटीकता पर असर पड़ सकता है।

चौथी चुनौती है **एल्गोरिथ्मिक पक्षपात**, यदि प्रशिक्षण-डेटा सीमित, असंतुलित या किसी विशेष क्षेत्र/वर्ग/शैली पर केंद्रित हो, तो AI एकांगी परिणाम दे सकता है। इससे भाषा की विविधता का प्रतिनिधित्व कमजोर हो जाता है और कुछ समुदायों की भाषायी पहचान छूट सकती है। **प्रशासन और जनसेवा** में यदि सरकारी पोर्टल, शिकायत-निवारण, ई-गवर्नेंस, स्वास्थ्य-सेवाएँ, कृषि सूचना और न्याय-सम्बंधी सामग्री हिंदी में AI की सहायता से उपलब्ध हो, तो जनता की भागीदारी अधिक सहज होगी। Bhashini के संदर्भ में भी रिपोर्टों ने विभिन्न बोलियों की सटीकता को सुधारने की आवश्यकता पर बल दिया है। Bhashini को बहुभाषी डिजिटल सार्वजनिक असंरचना के रूप में विकसित किया गया है।

पाँचवीं चुनौती है **नैतिकता और गोपनीयता, सांस्कृतिक संरक्षण से जुड़ा है**। भाषा-आधारित AI प्रणालियाँ उपयोगकर्ता के संवाद, प्रश्न, रुचि और व्यवहार संबंधी संवेदनशील जानकारी संशोधित करती हैं। इसलिए डेटा-सुरक्षा, सहमति, पारदर्शिता और जिम्मेदार उपयोग सुनिश्चित करना आवश्यक है। AI की मदद से पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण, पाठ-परिचालन, OCR, भाषायी खोज और विरासत-सामग्री तक पहुंच आसान की जा सकती है। PIB के अनुसार AI भारत की सांस्कृतिक धरोहर, ज्ञान-सिस्टम और भाषायी विविधता को संरक्षित करने में सहायक है। हिंदी साहित्य, लोकभाषा, लोककथा, जीवनी, आलोचना और पुरालेखीय सामग्री के अध्ययन में यह एक शक्तिशाली साधन बन सकता है। यदि इन पहलुओं को अनदेखा किया गया तो AI का लाभ सामाजिक अविश्वास में बदल सकता है।

छठी चुनौती है **डिजिटल विभाजन**, भारत के कई ग्रामीण और वंचित क्षेत्रों में अभी भी इंटरनेट, उपकरण और डिजिटल साक्षरता सीमित है। AI-आधारित हिंदी सेवाएँ तभी व्यापक प्रभाव डालेंगी जब अंतिम उपयोगकर्ता तक तकनीक सहज रूप से पहुँच सके। केवल तकनीक विकसित कर देना पर्याप्त नहीं, उसे सामाजिक-आर्थिक संरचना के अनुरूप बनाना भी आवश्यक है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का शैक्षिक और साहित्यिक प्रभाव

हिंदी शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में AI का प्रभाव अत्यंत व्यापक हो सकता है। विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और विद्यालयों में AI-समर्थित सामग्री विश्लेषण, स्वचालित सारांश, प्रश्न निर्माण, अनुवाद और भाषायी संपादन से अध्यापन की गुणवत्ता बढ़ सकती है। शोधार्थियों के लिए भी AI ग्रंथ-सूची निर्माण, संदर्भ-संयोजन, पाठ-तुलना और विषय-विश्लेषण में सहायक हो सकता है।

साहित्यिक अध्ययन में AI की भूमिका विशेष रूप से रोचक है। उपन्यासों, कहानियों, कविताओं और आलोचनात्मक ग्रंथों का विशाल डिजिटल संग्रह यदि उपलब्ध हो, तो शैली-विज्ञान, पात्र-विश्लेषण, विषय-विश्लेषण, शब्द-आवृत्ति और अंतरपाठ्यता जैसी विधियों का उपयोग अधिक व्यवस्थित हो सकता है। इससे हिंदी साहित्य का डिजिटल

मानविकी-आधारित अध्ययन भी विकसित होगा। हालांकि यह ध्यान रखना चाहिए कि AI साहित्यिक संवेदना का स्थान नहीं ले सकता; वह केवल सहायक विश्लेषण-साधन है, रचनात्मक चेतना का विकल्प नहीं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI): भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य में हिंदी और AI का संबंध और अधिक गहरा होने की संभावना है।

पहला, **वॉइस-फर्स्ट इंटरफेस** प्रमुख होगा, जिसमें उपयोगकर्ता टाइप करने के बजाय बोलकर प्रश्न पूछेंगे और उत्तर प्राप्त करेंगे। यह उन लोगों के लिए विशेष उपयोगी होगा जिनकी टाइपिंग-क्षमता सीमित है या जो कम साक्षर हैं।

दूसरा, **स्थानीयकृत AI मॉडल** विकसित होंगे, जो केवल मानक हिंदी नहीं बल्कि क्षेत्रीय बोलियों, सांस्कृतिक संदर्भों और विषय-विशेष शब्दावली को भी समझेंगे। इससे शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य और लोक-प्रशासन में अधिक प्रभावी अनुप्रयोग बनेंगे।

तीसरा, **बहुभाषी डिजिटल भारत** की दिशा में हिंदी केंद्रीय भूमिका निभा सकती है। Bhashini (भाषीणी- भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया एक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) संचालित भाषा अनुवाद मंच है) जैसी प्रणालियाँ और AI4Bharat जैसे अनुसंधान मंच भारतीय भाषाओं के लिए साझा संसाधन विकसित कर रहे हैं। इससे हिंदी केवल उपभोग की भाषा नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ संवाद करने वाली डिजिटल सेतु-भाषा बन सकती है।

चौथा, **जनजातीय और लोकभाषाओं का संरक्षण** संभव होगा। PIB के अनुसार AI के माध्यम से आदिवासी भाषाओं और सांस्कृतिक धरोहर के लिए भी नए डिजिटल मंच विकसित किए जा रहे हैं। यह हिंदी के व्यापक भाषायी इकोसिस्टम को भी समृद्ध करेगा, क्योंकि हिंदी का विकास अन्य भाषाओं के साथ संवाद में ही संभव है।

पाँचवाँ, **शोध और नवाचार** के नए क्षेत्र खुलेंगे। हिंदी NLP, sentiment analysis, cross-lingual retrieval, low-resource machine translation, speech analytics, automated editing और educational AI tools जैसे क्षेत्रों में अकादमिक तथा औद्योगिक शोध की व्यापक संभावनाएँ हैं। आने वाले वर्षों में हिंदी AI-स्टार्टअप, विश्वविद्यालय-लैब और सरकारी डिजिटल मिशनों का साझा क्षेत्र बन सकती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI): नीति और संस्थागत दिशा

हिंदी के लिए AI को सफल बनाने हेतु केवल तकनीक नहीं, बल्कि नीति और संस्थागत सहयोग भी आवश्यक है। Bhashini, TDIL, AICTE की Anuvadini, AI4Bharat जैसे प्रयास इस दिशा में महत्वपूर्ण हैं। नीति-निर्माण में डेटा-साझेदारी, मानकीकरण, खुले संसाधन, सार्वजनिक-निजी भागीदारी और स्थानीय समुदायों की भागीदारी को प्राथमिकता देनी होगी।

भविष्य की नीति का केंद्र बिंदु यह होना चाहिए कि AI हिंदी के उपयोगकर्ताओं पर तकनीकी बोझ न डाले, बल्कि तकनीक को उनके जीवन-परिस्थितियों के अनुकूल बनाए। यही “मानव-केंद्रित AI” की दिशा है, जिसकी ओर भारत की हालिया डिजिटल और सांस्कृतिक नीतियाँ संकेत करती हैं। यदि यह दृष्टि अपनाई जाती है, तो हिंदी न केवल डिजिटल रूप से सशक्त होगी, बल्कि ज्ञान, रोजगार और सांस्कृतिक संवाद की भाषा भी बनेगी।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का संबंध भविष्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण दिशा है। AI हिंदी के लिए अवसरों का ऐसा संसार खोल रहा है जिसमें शिक्षा, प्रशासन, संस्कृति, शोध और संचार के नए आयाम जुड़ते हैं। साथ ही, डेटा की कमी, बोली गत विविधता, तकनीकी जटिलता, पक्षपात और डिजिटल विभाजन जैसी चुनौतियाँ भी बनी हुई हैं।

अतः आवश्यक है कि हिंदी के लिए AI का विकास केवल बाजार-केन्द्रित न होकर जन-केन्द्रित, समावेशी और सांस्कृतिक संवेदनशीलता से युक्त हो। यदि शोध, नीति, उद्योग और अकादमिक जगत मिलकर काम करें, तो हिंदी भविष्य में केवल एक क्षेत्रीय या राष्ट्रीय भाषा नहीं रहेगी, बल्कि वैश्विक डिजिटल संवाद में एक प्रभावशाली ज्ञान-भाषा के रूप में स्थापित हो सकती है। यही हिंदी और AI के संयुक्त भविष्य की सबसे बड़ी संभावना है।

संदर्भ :-

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में भाषा शिक्षा सम्बन्धी अवसर एवं चुनौतियाँ. Granthalayah Publication.
2. कांबळे, माधुरी परशुराम. (2026). कृत्रिम बुद्धिमत्ता और हिंदी भाषा: संभावनाएँ, चुनौतियाँ और भविष्य. Zenodo.
<https://zenodo.org/records/19019103>
3. देवी, सुनीता. हिंदी भाषा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन अनुवाद का उपयोग: संभावनाएँ और चुनौतियाँ. Shodh Patrika. <https://doi.org/10.8855/w0yv5n73>
4. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई): हिन्दी भाषा में संभावनाएँ और चुनौतियाँ. Academia.edu.
5. हिंदी भाषा के विकास में AI की भूमिका, अवसर और चुनौतियाँ. Knowledgeable Research.
6. India's national AI platform tackles the country's many tongues. Science.org.
7. Press Information Bureau, Government of India. Artificial Intelligence for Culture and Languages. Press Information Bureau, Government of India.
8. AI4Bharat. Datasets. Official Website. <https://ai4bharat.org/>
9. What is Bhashini Platform? Vajiram & Ravi.
10. Bhashini: Overcoming the language barrier. Microsoft.

अम्बेडकर के महिला संबंधी विचार : एक अध्ययन

डॉ. चन्द्र किशोर कौशल*

swaminathbhaskar40@gmail.com

सारांश

यह शोध पत्र डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर के महिला-संबंधी विचारों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अम्बेडकर का महिला चिंतन उनके व्यापक सामाजिक न्याय के दर्शन का अभिन्न अंग था, जो महिलाओं की शिक्षा, कानूनी समानता, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक सम्मान को केंद्र में रखता था। शोध पत्र यह दर्शाता है कि अम्बेडकर ने महिला मुक्ति को केवल सुधार की दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति के रूप में देखा। उन्होंने हिंदू कोड बिल के माध्यम से विवाह, तलाक, संपत्ति और उत्तराधिकार में महिलाओं के कानूनी अधिकारों को सुरक्षित करने का ऐतिहासिक प्रयास किया। विशेष रूप से दलित महिलाओं के संदर्भ में, अम्बेडकर का चिंतन जाति और लिंग की दोहरी असमानता से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

अम्बेडकर के अनुसार महिला शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की कुंजी है, आर्थिक स्वतंत्रता व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पूर्वशर्त है, और कानूनी समानता लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला है। उनके विचार आज भी भारतीय समाज में लैंगिक न्याय और समानता के संघर्ष के लिए प्रासंगिक और प्रेरणादायक बने हुए हैं।

मुख्य शब्द :

अम्बेडकर, महिला अधिकार, सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, हिंदू कोड बिल, महिला शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, दलित महिलाएँ, कानूनी सुधार, सामाजिक परिवर्तन, महिला सशक्तीकरण, संपत्ति अधिकार, विवाह कानून, समाज सुधार

प्रस्तावना

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर आधुनिक भारत के प्रमुख समाज-सुधारक, विधिवेत्ता और सामाजिक न्याय के चिंतक थे। उनका चिंतन केवल जाति-व्यवस्था और दलित मुक्ति तक सीमित नहीं था, बल्कि महिलाओं की समानता, स्वतंत्रता और सम्मान भी उनके सामाजिक दर्शन का महत्वपूर्ण हिस्सा था। वे मानते थे कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति तभी संभव है, जब समाज के सभी वर्गों के साथ महिलाओं को भी समान अधिकार प्राप्त हों।

अम्बेडकर ने महिलाओं की समस्याओं को सामाजिक, आर्थिक और कानूनी तीनों स्तरों पर समझने का प्रयास किया। उनके लेखन और भाषणों में महिलाओं की शिक्षा, विवाह, संपत्ति, उत्तराधिकार तथा सामाजिक सम्मान जैसे प्रश्न प्रमुखता से दिखाई देते हैं।

उद्देश्य

1. डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर के महिला-संबंधी विचारों का व्यवस्थित विश्लेषण करना।
2. महिला शिक्षा, कानूनी अधिकार, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय में अम्बेडकर के योगदान को रेखांकित करना।
3. हिंदू कोड बिल और कानूनी सुधारों में महिलाओं की भूमिका की व्याख्या करना।

* गांव - जंगीपुर, पोस्ट - सराय गोकुल, जिला - गाजीपुर, उत्तर प्रदेश

शोध प्रश्न:

1. अम्बेडकर के महिला चिंतन के मुख्य आयाम क्या हैं?
2. महिला शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता में अम्बेडकर की दृष्टि कितनी प्रगतिशील थी?
3. दलित महिलाओं के सशक्तीकरण में अम्बेडकर के विचारों की क्या भूमिका है?
4. वर्तमान भारतीय समाज में अम्बेडकर के महिला विचार कितने प्रासंगिक हैं?

शोध प्रविधि

इस शोध पत्र में विश्लेषणात्मक-ऐतिहासिक विधि (Analytical-Historical Method) तथा गुणात्मक शोध (Qualitative Research) पद्धति को अपनाया गया है। डेटा संग्रह के लिए प्राथमिक स्रोतों में डॉ. अम्बेडकर के लेखन, भाषण, निबंध, हिंदू कोड बिल संबंधी दस्तावेज एवं संविधान सभा की कार्यवाहियों के रिकॉर्ड का गहन अध्ययन किया गया है, जबकि द्वितीयक स्रोतों में अम्बेडकर पर विद्वानों की टिप्पणियाँ, महिला अधिकार व सामाजिक न्याय से जुड़े शोध पत्र तथा ऐतिहासिक व समाजशास्त्रीय ग्रंथ सम्मिलित हैं। विषयवस्तु के विश्लेषण हेतु विषयवस्तु विश्लेषण (Content Analysis), तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) एवं समीक्षात्मक विधि (Critical Review) का प्रयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत अम्बेडकर के महिला चिंतन के मुख्य आयामों, महिला शिक्षा व आर्थिक स्वतंत्रता में उनकी दृष्टि, दलित महिलाओं के सशक्तीकरण में उनकी भूमिका तथा वर्तमान भारतीय समाज में उनके विचारों की प्रासंगिकता जैसे शोध प्रश्नों का अध्ययन किया गया है।

साहित्य समीक्षा

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर के महिला संबंधी विचारों पर उपलब्ध साहित्य को तीन प्रमुख स्तरों पर विभाजित करके देखा जा सकता है — अम्बेडकर के मौलिक लेखन, विद्वानों की व्याख्याएँ तथा समकालीन समीक्षात्मक अध्ययन।

अम्बेडकर के प्राथमिक लेखन में महिला शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। उनका मानना था कि शिक्षा केवल एक अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम है, जो व्यक्ति को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाकर रूढ़ियों को चुनौती देने की क्षमता प्रदान करती है (Ambedkar, 1952, Vol. 3)। उन्होंने कहा था कि यदि उनके पास शक्ति होती, तो वे किसी बालिका को शिक्षा से एक दिन भी न रोकते (Ambedkar, 1989, Vol. 1)। शिक्षा के साथ-साथ उन्होंने महिलाओं के कानूनी और आर्थिक अधिकारों पर भी बल दिया। उनका स्पष्ट मत था कि महिला को पिता, पति और पुत्र पर आश्रित नहीं रहना चाहिए, क्योंकि आर्थिक आत्मनिर्भरता के बिना नारी की स्वतंत्रता अधूरी रहती है (Ambedkar, 1951, Vol. 14)। उन्होंने विवाह को एक पवित्र संस्कार के स्थान पर परस्पर समानता पर आधारित अनुबंध माना और तलाक तथा उत्तराधिकार में महिलाओं को समान अधिकार दिए जाने का समर्थन किया (Ambedkar, 1990, Vol. 5)।

अम्बेडकर के महिला चिंतन पर विद्वानों ने विविध दृष्टिकोणों से विचार किया है। कंचन इलैया ने अपने अध्ययन में तर्क दिया है कि अम्बेडकर का महिला विमर्श दलित महिलाओं के लिए बहुआयामी सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है, जो जाति और लिंग की दोहरी असमानता से मुक्ति की दिशा में कार्यरत है (Ilaiyah, 1996)। दलित विमर्श के संदर्भ में ऊषा नायर ने रेखांकित किया है कि 21वीं सदी में भी अम्बेडकर के विचार दलित तथा आदिवासी महिलाओं के लिए निरंतर प्रासंगिक बने हुए हैं (Nayar, 2018)। कानूनी पक्ष पर विचार करते हुए राजेश कुमार ने हिंदू कोड बिल को अम्बेडकर के उस विश्वास का व्यावहारिक प्रतिफल माना है कि कानून के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन संभव है, तथा इसमें महिलाओं को दिए गए अधिकार भारतीय कानूनी इतिहास में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुए (Kumar, 2010)। वासंती महाजन ने अम्बेडकर की लैंगिक समानता की अवधारणा को सामाजिक रूपांतरण से जोड़कर देखा है, जबकि एकनाथ शिवानंद ने हिन्दू महिलाओं के संदर्भ में उनके लैंगिक न्याय के दृष्टिकोण का विश्लेषण किया है (Mahajan, 2008; Shivananda, 2010)।

अम्बेडकर के विचारों की तुलना अन्य समाज-सुधारकों से करने पर उनकी विशिष्टता और स्पष्ट होती है। जहाँ महात्मा गांधी ने महिला शिक्षा और सुधार को पारंपरिक मूल्यों की निरंतरता के संदर्भ में देखा, वहीं अम्बेडकर ने इसे

सामाजिक क्रांति और सत्ता-संबंधों के पुनर्गठन से जोड़ा (Government of India, 1989)। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध ऐतिहासिक संघर्ष किया, परंतु अम्बेडकर ने विवाह, तलाक, संपत्ति तथा उत्तराधिकार जैसे क्षेत्रों में महिलाओं के लिए व्यापक कानूनी ढाँचा प्रस्तावित किया (Khairmode, 2005, Vol. 2)। डॉ. केयर तथा एलेनोर जेलियट जैसे जीवनीकारों ने अम्बेडकर के महिला-संबंधी कार्यों को उनके व्यापक सामाजिक न्याय के कार्यक्रम का अभिन्न अंग माना है (Keer, 2010; Zelliot, 2013)।

समकालीन विमर्श में अम्बेडकर के महिला चिंतन की प्रासंगिकता पर विशेष बल दिया जा रहा है। जी. वर्मा ने इसे महिलाओं की स्वायत्तता और सशक्तीकरण के अम्बेडकरवादी परिप्रेक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया है (Verma, 2009)। हालाँकि यह भी उल्लेखनीय है कि अधिकांश उपलब्ध साहित्य अम्बेडकर के महिला विचारों का विश्लेषण या तो केवल कानूनी पक्ष से करता है अथवा केवल दलित महिला विमर्श के संदर्भ में सीमित रह जाता है। महिला शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, कानूनी समानता तथा सांस्कृतिक पुनर्निर्माण को एकीकृत रूप में जोड़कर अम्बेडकर के व्यापक जीवन-दृष्टि के रूप में अध्ययन करने का अवकाश अभी भी बना हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी रिक्तता को भरने का प्रयास करता है।

महिला शिक्षा का महत्व

अम्बेडकर महिला मुक्ति के लिए शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है तथा सामाजिक रूढ़ियों और असमानताओं को चुनौती देने की क्षमता प्रदान करती है। इसलिए उन्होंने महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने और सामाजिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया।

उनकी दृष्टि में शिक्षित महिला केवल अपने जीवन में परिवर्तन नहीं लाती, बल्कि परिवार और समाज के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

महिला और कानूनी समानता

महिलाओं को समान कानूनी अधिकार दिलाने के लिए अम्बेडकर का सबसे महत्वपूर्ण प्रयास हिन्दू कोड बिल से संबंधित था। स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री के रूप में उन्होंने विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, संपत्ति तथा दत्तक ग्रहण जैसे विषयों में सुधार का प्रयास किया। अम्बेडकर का विचार था कि महिलाओं के आर्थिक अधिकार सुरक्षित किए जाने चाहिए और कानून के सामने महिलाओं के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए। हिन्दू कोड बिल पर उनके विचारों में महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता और समान अधिकारों पर विशेष बल मिलता है।

महिला और संपत्ति का अधिकार

अम्बेडकर महिला की स्वतंत्रता को आर्थिक अधिकारों से भी जोड़कर देखते थे। उनका मानना था कि यदि महिला आर्थिक रूप से पूरी तरह निर्भर रहेगी, तो उसकी सामाजिक स्वतंत्रता भी सीमित रहेगी। इसी कारण उन्होंने महिलाओं के संपत्ति और उत्तराधिकार संबंधी अधिकारों को मजबूत करने का प्रयास किया। उनके अनुसार महिला को परिवार और समाज में सम्मानजनक स्थान देने के लिए उसे संपत्ति तथा आर्थिक निर्णयों में अधिकार मिलना आवश्यक है।

दलित महिलाओं के संदर्भ में अम्बेडकर

अम्बेडकर का महिला चिंतन दलित महिलाओं के लिए विशेष महत्व रखता है। दलित महिलाओं को जातिगत भेदभाव के साथ-साथ लैंगिक असमानता का भी सामना करना पड़ता रहा है। अम्बेडकर का सामाजिक न्याय का विचार इस दोहरी असमानता को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

उन्होंने शिक्षा, संगठन और अधिकारों के माध्यम से वंचित समुदायों को आगे बढ़ने का संदेश दिया। इस दृष्टि से दलित महिलाओं का सशक्तीकरण भी उनके व्यापक सामाजिक परिवर्तन के कार्यक्रम का हिस्सा माना जा सकता है।

विवाह और परिवार संबंधी विचार

अम्बेडकर विवाह संस्था में समानता और न्याय के पक्षधर थे। वे एक ऐसे पारिवारिक ढाँचे की आवश्यकता पर बल देते थे जिसमें महिला को पुरुष के समान सम्मान और अधिकार प्राप्त हों। हिन्दू कोड बिल में विवाह तथा तलाक से संबंधित सुधारों का उद्देश्य भी महिलाओं को अधिक कानूनी सुरक्षा और स्वतंत्रता प्रदान करना था।

इस प्रकार अम्बेडकर के लिए महिला मुक्ति केवल शिक्षा प्राप्त करने तक सीमित नहीं थी, बल्कि परिवार और समाज में समान नागरिक के रूप में उसकी स्थिति स्थापित करना भी आवश्यक था।

वर्तमान समय में प्रासंगिकता

आज महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, राजनीतिक भागीदारी और कानूनी अधिकारों में काफी विस्तार हुआ है, लेकिन लैंगिक असमानता के अनेक रूप अभी भी दिखाई देते हैं। ऐसे समय में अम्बेडकर के समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के विचार महत्वपूर्ण बने हुए हैं। विशेष रूप से दलित और वंचित महिलाओं के संदर्भ में शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और कानूनी जागरूकता को बढ़ावा देना उनके विचारों की समकालीन प्रासंगिकता को दर्शाता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर का महिला संबंधी चिंतन भारतीय सामाजिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण और दूरगामी स्थान रखता है। उन्होंने महिला प्रश्न को केवल कल्याण, दया या सुधार का विषय न मानकर समानता, स्वतंत्रता, सम्मान तथा सामाजिक न्याय का मूलभूत प्रश्न बनाया। उनका यह दृष्टिकोण उनके व्यापक सामाजिक दर्शन का अभिन्न अंग था, जिसमें जाति, वर्ग और लिंग की असमानताओं को एक साथ देखा गया।

अम्बेडकर ने महिला शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन की कुंजी माना, आर्थिक स्वतंत्रता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पूर्वशर्त के रूप में स्वीकार किया तथा कानूनी समानता को लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत किया। हिन्दू कोड बिल के माध्यम से उन्होंने विवाह, तलाक, संपत्ति एवं उत्तराधिकार जैसे क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा का ऐतिहासिक प्रयास किया, जो भारतीय कानूनी इतिहास में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। विशेष रूप से दलित महिलाओं के संदर्भ में उनका चिंतन जाति और लिंग की दोहरी असमानता से मुक्ति की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है। अम्बेडकर का महिला विमर्श केवल अपने समय तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसमें समकालीन और भविष्य की सामाजिक चुनौतियों से मुठभेड़ करने की क्षमता है। आज भी जब महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, राजनीतिक भागीदारी और कानूनी अधिकारों में विस्तार के बावजूद लैंगिक असमानता के अनेक रूप विद्यमान हैं, अम्बेडकर के समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के विचार मार्गदर्शक बने हुए हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ. अम्बेडकर का महिला संबंधी चिंतन आधुनिक भारत में महिला अधिकारों की वैचारिक आधारभूमि को समझने तथा लैंगिक समानता एवं सामाजिक न्याय के संघर्ष को दिशा देने के लिए अत्यंत उपयोगी, प्रासंगिक और प्रेरणादायी है।

संदर्भ-

अम्बेडकर, बी. आर. (1951). हिन्दू कोड बिल. डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर : लेखन और भाषण (खंड 14). सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार.

अम्बेडकर, बी. आर. (1952). जाति का विनाश. सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली.

अम्बेडकर, बी. आर. (1989). शूद्र कौन थे? सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली.

- अम्बेडकर, बी. आर. (1989). बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : लेखन और भाषण (खंड 1). सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार.
- अम्बेडकर, बी. आर. (1990). बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : लेखन और भाषण (खंड 5). सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार.
- भारत सरकार. (1989). डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के लेखन एवं भाषण (खंड 1-14). सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय.
- Ilaiah, K. (1996). *God as Political Philosopher: Buddha's Challenge to Brahminism*. Samyak Prakashan.
- Keer, D. (2010). *Dr. Ambedkar: Life and Mission* (3rd ed.). Popular Prakashan.
- खैरमोडे, चांगदेव भगवानराव. (2005). डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर (विभिन्न खंड). भारत सरकार प्रकाशन.
- Kumar, R. (2010). *Gender Justice and Legal Reform: Ambedkar's Vision for Modern India*. Oxford University Press.
- Mahajan, V. D. (2008). Dr. Ambedkar's concept of gender equality and social transformation. *Indian Journal of Political Science*, 12(2), 145-168.
- Nayar, U. (2018). *Dalit Women and Social Justice: Ambedkar's Legacy in Contemporary India*. Sage Publications.
- Shivananda, A. (2010). Dr. Ambedkar's vision of gender justice and Hindu women. *Journal of Dalit Studies*, 8(1), 56-89.
- Verma, G. (2009). *Women's Autonomy and Empowerment: An Ambedkarite Perspective*. Samyak Prakashan.
- Zelliot, E. (2013). *Ambedkar's World: The Making of Babasaheb and His Legacy* (2nd ed.). Navajivan Publishing House.

हिंदी-अंग्रेजी मशीनी अनुवाद में संदिग्धार्थकता का नियम-आधारित विसंदिग्धीकरण

विजय करन*

kkumar.kumar60@gmail.com

सारांश-

हिंदी से अंग्रेजी मशीनी अनुवाद में संदिग्धार्थक शब्दों का सही अर्थ निर्धारित करना एक महत्वपूर्ण भाषिक समस्या है। हिंदी में अनेक शब्द ऐसे हैं जो विभिन्न वाक्य-संदर्भों में अलग-अलग अर्थों के साथ-साथ अलग व्याकरणिक भूमिकाओं में भी प्रयुक्त होते हैं। ऐसी स्थिति में केवल शब्द-रूप की पहचान के आधार पर उसके अर्थ का निर्धारण करना पर्याप्त नहीं होता। प्रस्तुत शोध में संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण के संदिग्धार्थक शब्दों के संदर्भानुकूल अर्थ-निर्धारण और विसंदिग्धीकरण की समस्या का अध्ययन किया गया है। इसके लिए संदिग्धार्थक शब्दों के रूपात्मक, वाक्यात्मक, व्याकरणिक, अर्थगत, सहप्रयोगात्मक तथा संदर्भगत पक्षों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में शब्द-रूप, प्रत्यय, कारक, परसर्ग, वचन, लिंग, काल, पक्ष, सहायक क्रिया, विशेष्य-विशेषण संबंध, अर्थ-क्षेत्र, अर्थ-संबंध, सहप्रयोग तथा वाक्य-संदर्भ जैसे भाषिक संकेतों को विसंदिग्धीकरण के आधार के रूप में देखा गया है। इस विश्लेषण के आधार पर संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण के संदिग्धार्थक प्रयोगों के लिए नियमों का निर्माण किया गया है। संज्ञा के लिए कारक-चिह्न, परसर्ग, संबंधकारक, वस्तु-पदार्थ तथा भाव-अवस्था संबंधी संकेत क्रिया के लिए क्रिया-रूप, सहायक क्रिया, कर्म-ग्रहण, क्रियामूलक प्रत्यय तथा कार्य एवं परिवर्तन-बोधक संकेत; तथा विशेषण के लिए संज्ञा-विशेषण संबंध, गुण, अवस्था और विशेष्य-निर्धारण जैसे संकेतों को आधार बनाया गया है। इसके साथ निकट संदर्भ, वाक्यगत संदर्भ, व्यापक संदर्भ तथा प्रसंगगत अर्थ के साथ अर्थ-क्षेत्र, अर्थ-संबंध, मुहावरेदार अर्थ, सहप्रयोगगत अर्थ और अर्थ-संगति को भी विसंदिग्धीकरण की प्रक्रिया में सम्मिलित किया गया है। इस आधार पर विकसित नियमों को स्पष्ट, सामान्यीकृत, व्याख्येय तथा संभावित रूप से संगणकीय कार्यान्वयन योग्य रूप में व्यवस्थित किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संदिग्धार्थक शब्दों के विसंदिग्धीकरण के लिए किसी एक भाषिक संकेत पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न रूपात्मक, व्याकरणिक, अर्थगत और संदर्भगत संकेतों का समन्वित उपयोग अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार प्रस्तुत नियम-आधारित अभिगम हिंदी से अंग्रेजी मशीनी अनुवाद में संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण के संदिग्धार्थक शब्दों के संदर्भानुकूल अर्थ-निर्धारण के लिए एक भाषावैज्ञानिक आधार प्रदान करता है तथा इसके भविष्य में संगणकीय कार्यान्वयन और परीक्षण की संभावना है।

मुख्य शब्द :

नियम-आधारित अभिगम, विसंदिग्धीकरण, संदिग्धार्थक शब्द, संज्ञा, क्रिया, विशेषण, संदर्भ, अर्थ-क्षेत्र, मशीनी अनुवाद।

प्रस्तावना-

मशीनी अनुवाद में स्रोत भाषा के शब्दों का सही अर्थ निर्धारित करना लक्ष्य भाषा में उपयुक्त शब्द के चयन के लिए आवश्यक है। हिंदी से अंग्रेजी मशीनी अनुवाद में यह समस्या तब अधिक जटिल हो जाती है, जब एक ही शब्द विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थों के साथ अलग व्याकरणिक भूमिकाओं में प्रयुक्त होता है। मानव भाषिक अनुभव और संदर्भ के आधार पर ऐसे अर्थों को सहज रूप से समझ लेता है, जबकि संगणक के लिए इस प्रकार का अर्थ-निर्धारण स्पष्ट भाषिक संकेतों और व्यवस्थित नियमों के माध्यम से करना आवश्यक होता है। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण के संदिग्धार्थक शब्दों के विसंदिग्धीकरण के लिए नियम-आधारित अभिगम को आधार बनाया गया है।

* पी-एच. डी. शोधार्थी, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वरधा

इस अध्ययन का उद्देश्य केवल संदिग्धार्थक शब्दों के विभिन्न अर्थों को सूचीबद्ध करना नहीं है, बल्कि यह निर्धारित करना है कि किसी विशिष्ट वाक्य-संदर्भ में संबंधित शब्द किस अर्थ में और किस व्याकरणिक कोटि में प्रयुक्त हुआ है। इस उद्देश्य से संदिग्धार्थक शब्दों के वास्तविक भाषा-प्रयोगों का विश्लेषण करते हुए उनके रूपात्मक, वाक्यात्मक, व्याकरणिक, अर्थगत, सहप्रयोगात्मक तथा संदर्भगत संकेतों की पहचान की गई है। इन संकेतों के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण किया गया और संदर्भानुकूल अर्थ तथा व्याकरणिक भूमिका निर्धारित करने वाले नियम विकसित किए गए। इस प्रकार नियमों का निर्माण भाषिक प्रयोगों से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण और सामान्यीकरण पर आधारित है। परिणामस्वरूप भाषिक तथ्य, उनका विश्लेषण, वर्गीकरण और नियम-निर्माण एक क्रमबद्ध प्रक्रिया के रूप में सामने आते हैं, जिसके आधार पर हिंदी से अंग्रेजी मशीनी अनुवाद में संदिग्धार्थक शब्दों के विसंदिग्धीकरण के लिए एक व्याख्येय नियम-आधारित रूपरेखा विकसित होती है।

नियम-आधारित अभिगम : अवधारणा-

नियम-आधारित अभिगम भाषा के भाषावैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित ऐसा अभिगम है जिसमें भाषा की संरचना, व्यवहार और विभिन्न भाषिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करके नियमों का व्यवस्थित समूह बनाया जाता है और उन नियमों को संगणकीय प्रणाली में कार्यान्वित किया जाता है। इस अभिगम में भाषावैज्ञानिक विश्लेषण आधारभूत प्रक्रिया, नियम उसका औपचारिक निरूपण और कंप्यूटर कार्यान्वयन का माध्यम होता है। नियम भाषा में विद्यमान नियमितताओं को औपचारिक रूप देते हैं और शब्दकोश विशिष्ट अथवा अपवादात्मक रूपों की सूचना प्रदान कर सकता है।

प्रस्तुत शोध में नियमों की प्रमुख विशेषता उनकी व्याख्येयता है। यदि किसी शब्द को संज्ञा, क्रिया या विशेषण के रूप में निर्धारित किया जाता है तो उस निर्णय के पीछे प्रयुक्त भाषिक संकेतों को स्पष्ट किया जा सकता है। दूसरी ओर नियम-निर्माण में व्यापक भाषावैज्ञानिक श्रम आवश्यक है। इस शोध ने इसी व्याख्येयता को केंद्र में रखते हुए संदिग्धार्थकता के लिए स्पष्ट, पुनःप्रयोग योग्य और संभावित रूप से संगणकीय नियमों का निर्माण किया है।

3. नियम निर्माण के मूल सिद्धांत-

1. भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरणिक आधार : नियम वास्तविक रूपात्मक, व्याकरणिक और वाक्यगत व्यवहार पर आधारित हों।
2. वाक्यगत एवं संरचनात्मक संदर्भ : शब्द की स्थिति, कर्ता-कर्म संबंध, कारक-चिह्न, परसर्ग, सहायक क्रिया और अन्य शब्दों से संबंध को देखा जाए।
3. सहप्रयोग एवं अर्थगत संदर्भ : संदिग्ध शब्द के साथ आने वाले शब्द और निश्चित सहप्रयोग अर्थ-निर्धारण में महत्वपूर्ण हैं।
4. संदर्भ-प्राथमिकता : अनेक संभावित अर्थों में पूरे संदर्भ के लिए सबसे उपयुक्त अर्थ को प्राथमिकता दी जाए।
5. स्पष्टता, सामान्यीकरण एवं संगणकीय कार्यान्वयन : नियम यदि-तो संरचना में स्पष्ट, पुनःप्रयोग योग्य और मशीन में लागू किए जा सकने वाले हों।

कड़ा के दो प्रयोग- वही कड़ा नीचे रखकर और कड़ा अनुशासन में शब्दरूप समान है, पर पहले में वस्तु का नाम और दूसरे में गुण का बोध है। इसी तरह चीनी के चीनी और रेत तथा चीनी साहित्य प्रयोगों में सहप्रयोग अर्थ को बदल देता है। इसलिए नियमों का आधार केवल शब्दकोशीय प्रविष्टि नहीं, बल्कि शब्द और संदर्भ का संबंध है।

संज्ञा के लिए प्रतिपादित नियम-

संज्ञात्मक प्रयोग की पहचान के लिए पाँच प्रमुख नियम प्रतिपादित किए गए हैं। इनका उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि संदिग्ध शब्द व्यक्ति, वस्तु, स्थान, पदार्थ, भाव, अवस्था या अन्य नामात्मक इकाई का बोध करा रहा है या नहीं।

नियम	शर्त/भाषिक संकेत	निर्णय
कारक-चिह्न एवं परसर्ग	ने, को, से, में, पर, तक, का, के, की आदि के साथ नामात्मक प्रयोग	संज्ञात्मक भूमिका
विशेषण-संज्ञा संबंध	संदिग्ध शब्द स्वयं नामात्मक इकाई के रूप में कार्य करे	संज्ञा
संबंधकारक	का/के/की के साथ व्यक्ति, वस्तु, स्थान आदि का बोध	संज्ञा
वस्तु एवं पदार्थ-बोधक	मूर्त वस्तु, पदार्थ या उपकरण का नाम	संज्ञा
भाव एवं अवस्था-बोधक	अमूर्त भाव, दशा, स्थिति या भावात्मक सत्ता का नाम	संज्ञा

‘आला को निकाल कर खड़ी हुई’ में आला के साथ ‘को’ और निकालना का कर्म-संबंध है; इसलिए संज्ञात्मक निर्णय मिलता है। ‘वही कड़ा नीचे रखकर’ में कड़ा आभूषण का नाम है। ‘गत’ जैसे शब्द भाव या अवस्था के नाम के रूप में संज्ञात्मक हो सकते हैं। इन नियमों में नामात्मक बोध और वाक्यगत संबंध दोनों का संयुक्त उपयोग किया गया है।

क्रिया के लिए प्रतिपादित नियम-

क्रिया के विसंदिग्धीकरण में यह निर्धारित किया जाता है कि संदिग्ध शब्द किसी कार्य, घटना, प्रक्रिया, परिवर्तन अथवा अवस्था का विधान कर रहा है या नहीं। इसके लिए पाँच नियम प्रतिपादित किए गए हैं।

नियम	मुख्य संकेत	उदाहरण/निर्णय
क्रिया-रूप	काल, पक्ष, पुरुष या वचन के अनुसार रूप	आया = क्रिया
सहायक क्रिया	मुख्य क्रिया + सहायक क्रिया	जा रहा है = क्रियात्मक संरचना
कर्म-ग्रहण	कर्म के साथ क्रिया-संबंध	लकड़ी चीर देना में चीर = क्रिया
क्रियामूलक प्रत्यय	क्रियामूल + प्रत्यय/रूपात्मक चिह्न	खा + ना = खाना
कार्य/परिवर्तन-बोधक कार्य,	घटना, परिवर्तन या प्रक्रिया का बोध	चटक गया = घटना/परिवर्तन

‘अदा’ का उदाहरण यह दिखाता है कि कई बार क्रियात्मकता शब्द और सहायक क्रिया के संबंध से निर्मित होती है। एक अदा के साथ में अदा संज्ञा है, जबकि हक अदा करेंगे या रस्में अदा हुईं में अदा करना क्रियात्मक पदबंध है। इस प्रकार नियमों को शब्द-स्तर और पदबंध-स्तर दोनों की भाषिक वास्तविकता को ध्यान में रखना पड़ता है।

विशेषण के लिए प्रतिपादित नियम-

विशेषणात्मक प्रयोगों में संदिग्ध शब्द किसी संज्ञा की विशेषता, गुण, अवस्था, प्रकार या स्थिति को व्यक्त करता है। इसके आधार पर विशेषणात्मक प्रयोगों की पहचान के लिए पाँच प्रमुख नियम निर्धारित किए गए हैं। संज्ञा-विशेषण संबंध नियम के अनुसार यदि संदिग्ध शब्द किसी संज्ञा से जुड़कर उसकी विशेषता या स्थिति को स्पष्ट करता है, तो उसका विशेषणात्मक प्रयोग माना जाता है; जैसे-‘माली हालत’ में ‘माली’ किसी व्यक्ति का नाम न होकर ‘हालत’ की विशेषता बताता है, इसलिए यहाँ यह विशेषण है। गुण-बोधक नियम के अंतर्गत यदि संदिग्ध शब्द किसी व्यक्ति, वस्तु या संज्ञा के गुण को व्यक्त करता है, तो उसे विशेषण माना जाता है; जैसे-‘कड़ा अनुशासन’ में ‘कड़ा’ अनुशासन के गुण को व्यक्त करता है। अवस्था-बोधक नियम के अनुसार यदि संदिग्ध शब्द किसी संज्ञा की अवस्था या स्थिति को व्यक्त करता है, तो उसका विशेषणात्मक प्रयोग माना जाता है; जैसे-‘चौपट घर’ में ‘चौपट’ घर की अवस्था को व्यक्त करता है। विशेष्य-निर्धारण नियम में यदि संदिग्ध शब्द सीधे किसी संज्ञा से जुड़कर उसकी विशेषता, प्रकार या संबंध को निर्धारित करता है, तो उसे विशेषणात्मक माना जाता है; जैसे-‘चीनी साहित्य’ में ‘चीनी’ साहित्य के संबंध या प्रकार को निर्धारित करता है। इसी प्रकार संदर्भ-आधारित विशेषण नियम के अंतर्गत किसी ऐसे शब्द का विशेषणात्मक प्रयोग निर्धारित किया जाता है जो अन्य संदर्भ में संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हो सकता है, लेकिन वर्तमान संदर्भ में किसी संज्ञा की विशेषता व्यक्त कर रहा हो। उदाहरण के लिए, ‘चीनी साहित्य’ में ‘चीनी’ विशेषण है, जबकि ‘चीनी और रेत का मिश्रण’ में ‘चीनी’ पदार्थ के नाम के रूप में संज्ञा है। इस प्रकार संदिग्ध शब्द के विशेषणात्मक प्रयोग का निर्धारण उसके विशेष्य से संबंध, गुण या अवस्था-बोध तथा व्यापक वाक्य-संदर्भ के आधार पर किया जाता है।

‘कड़ा अनुशासन’ में कड़ा अनुशासन की सख्ती बताता है; ‘चौपट घर’ में चौपट घर की अवस्था बताता है; और चीनी साहित्य में चीनी साहित्य के साथ संबंध/विशेषता बताता है। इसके विपरीत चीनी और रेत में चीनी पदार्थ का नाम होने से संज्ञा है। यह विरोधात्मक उदाहरण विशेषण नियम के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ-आधारित नियम-

संदर्भगत विसंदिग्धीकरण के लिए चार नियम प्रतिपादित किए गए हैं। पहला निकट संदर्भ नियम है, जिसमें संदिग्ध शब्द के ठीक पहले और बाद के शब्दों से अर्थ का संकेत लिया जाता है। दूसरा वाक्यगत संदर्भ नियम है, जिसमें पूरे वाक्य की संरचना देखी जाती है। तीसरा व्यापक संदर्भ नियम है, जिसमें पूर्ववर्ती और परवर्ती वाक्यों को भी सम्मिलित किया जाता है। चौथा प्रसंगगत अर्थ नियम है, जिसमें विषय या प्रसंग से संबंधित अर्थ को प्राथमिकता दी जाती है।

मैं आला को निकाल कर खड़ी हुई में को, निकाल कर और पूरी वाक्य-संरचना आला के नामात्मक अर्थ की ओर संकेत करती है। दूसरी ओर आधुनिक चीनी साहित्य में साहित्य और प्रसंग चीनी के चीन-संबंधी अर्थ को सक्रिय करते हैं। इस प्रकार संदर्भ का विस्तार आवश्यकता के अनुसार निकट शब्द से पूरे वाक्य और फिर व्यापक पाठ तक किया जा सकता है।

अर्थगत नियम-

अर्थगत नियमों के अंतर्गत संदिग्धार्थक शब्द के उपयुक्त अर्थ का निर्धारण उसके आसपास उपस्थित अर्थ-संबंधी संकेतों के आधार पर किया जाता है। अर्थ-क्षेत्र नियम के अनुसार यदि संदिग्ध शब्द के आसपास प्रयुक्त शब्द किसी विशिष्ट अर्थ-क्षेत्र की ओर संकेत करते हैं, तो उसी अर्थ-क्षेत्र से संबंधित अर्थ को प्राथमिकता दी जाती है। अर्थ-संबंध नियम में संभावित अर्थों में से उस अर्थ का चयन किया जाता है जिसका वर्तमान वाक्य के अन्य शब्दों के साथ अधिक मजबूत अर्थ-संबंध स्थापित होता हो। मुहावरेदार अर्थ नियम के अनुसार यदि संदिग्ध शब्द किसी स्थिर मुहावरे या निश्चित अभिव्यक्ति का अंग हो, तो उसके स्वतंत्र शब्दार्थ के स्थान पर पूरे मुहावरे से प्राप्त अर्थ को स्वीकार किया जाता है। सहप्रयोगगत अर्थ नियम में संदिग्ध शब्द के साथ प्रचलित रूप से प्रयुक्त होने वाले निश्चित शब्दों या पदबंधों को अर्थ-निर्धारण का आधार बनाया जाता है और उनसे संबंधित अर्थ को प्राथमिकता दी जाती है। इसी प्रकार अर्थ-संगति नियम के अंतर्गत संभावित अर्थों में से उस अर्थ का चयन किया जाता है जो वाक्य के अन्य घटकों तथा संपूर्ण वाक्य के अर्थ के साथ सर्वाधिक संगत हो। इस प्रकार अर्थ-क्षेत्र, अर्थ-संबंध, मुहावरेदार प्रयोग, सहप्रयोग और अर्थ-संगति जैसे संकेतों का समन्वित उपयोग संदिग्धार्थक शब्द के संदर्भानुकूल अर्थ को निर्धारित करने में सहायक होता है।

ढोलक की गमक में संगीत एवं ध्वनि का अर्थ-क्षेत्र सक्रिय होता है। चीनी और रेत का मिश्रण में रेत और मिश्रण पदार्थ-संबंधी अर्थ को मजबूत करते हैं। चूना लगाना जैसे मुहावरेदार प्रयोग में शब्द का स्वतंत्र भौतिक अर्थ नहीं, बल्कि पूरे मुहावरे का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अर्थगत नियम शब्द और उसके अर्थ-संदर्भ के बीच संबंध को औपचारिक रूप देते हैं।

व्याकरणिक नियम-

व्याकरणिक नियमों के अंतर्गत संदिग्धार्थक शब्दों के अर्थ एवं व्याकरणिक व्यवहार को निर्धारित करने के लिए विभिन्न संकेतों का उपयोग किया गया है। कर्ता नियम के अंतर्गत यदि संदिग्ध शब्द वाक्य में कर्ता के रूप में प्रयुक्त होकर किसी व्यक्ति, वस्तु या अन्य नामात्मक इकाई का बोध कराता है, तो उसे संज्ञात्मक प्रयोग माना जाता है; जैसे- 'माली दौड़े' में 'माली' कर्ता और व्यक्ति का नाम बताने वाली संज्ञा है। कर्म नियम के अंतर्गत यदि संदिग्ध शब्द किसी क्रिया के साथ कर्म के रूप में संबंधित हो, तो उसके संज्ञात्मक प्रयोग की पहचान की जाती है; जैसे- 'आला को निकालना' में 'आला' क्रिया 'निकालना' का कर्म है। विधेय नियम के अनुसार यदि संदिग्ध शब्द कर्ता की अवस्था, गुण या स्थिति को व्यक्त करता है, तो उसका विशेषणात्मक प्रयोग माना जाता है; जैसे—'घर चौपट हो गया' में 'चौपट' घर की अवस्था को व्यक्त करता है। कारक-संबंध नियम में कारक-चिह्न या परसर्ग के माध्यम से शब्द के अन्य पदों से संबंध को देखा जाता है; जैसे—'माली का मकान' में 'का' संबंधकारक के माध्यम से 'माली' और 'मकान' के बीच संबंध स्थापित करता है। सहायक क्रिया नियम के अंतर्गत मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया के संयुक्त प्रयोग को देखा जाता है; जैसे- 'जा रहा है' में 'जा' मुख्य क्रिया तथा 'रहा है' सहायक क्रियात्मक संरचना का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार वचन एवं लिंग-संगति नियम में विशेषण और संज्ञा के बीच वचन तथा लिंग की संगति को देखा जाता है; जैसे- 'लाल लड़की' में 'लाल' विशेषण 'लड़की' संज्ञा से संबंधित है। अंततः काल एवं पक्ष नियम में क्रियामूल के साथ काल या पक्ष के संकेत तथा सहायक क्रिया के प्रयोग को ध्यान में रखा जाता है; जैसे- 'जा रहा है' में क्रियामूल 'जा' के साथ 'रहा है' वर्तमान प्रगतिशील पक्ष की सूचना देता है। इस प्रकार ये व्याकरणिक संकेत संदिग्ध शब्द की वाक्यगत भूमिका और उसके उपयुक्त अर्थ के निर्धारण में सहायक होते हैं।

इन नियमों से स्पष्ट होता है कि व्याकरणिक संरचना केवल पद-परिचय के लिए नहीं, बल्कि अर्थ-निर्धारण के लिए भी उपयोगी है। कर्ता और कर्म संबंध संज्ञात्मक प्रयोग की पहचान कर सकते हैं; विधेय संरचना विशेषणात्मक प्रयोग को स्पष्ट कर सकती है; और काल, पक्ष तथा सहायक क्रिया क्रियात्मक संरचना को निर्धारित कर सकते हैं।

प्रस्तावित निर्णय-प्रक्रिया-

प्रस्तावित नियमों को एक क्रमिक निर्णय-प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। पहले संदिग्ध शब्द की पहचान की जाए। इसके बाद उसके आसपास के रूपात्मक और व्याकरणिक संकेतों की जाँच की जाए। यदि नामात्मक संकेत मिलते हैं तो

संज्ञात्मक नियम सक्रिय हों; यदि क्रियामूल, प्रत्यय, काल-पक्ष या सहायक क्रिया जैसे संकेत मिलते हैं तो क्रियात्मक नियम सक्रिय हों; और यदि किसी संज्ञा की विशेषता, गुण या अवस्था व्यक्त हो रही हो तो विशेषणात्मक नियम सक्रिय हों। इसके बाद संदर्भगत और अर्थगत नियम संभावित अर्थों में से सर्वाधिक उपयुक्त अर्थ का चयन करें।

इस प्रक्रिया को शर्त → भाषिक संकेत → निर्णय के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यदि संदिग्ध शब्द किसी संज्ञा की विशेषता निर्धारित करता है, तो विशेषणात्मक निर्णय; यदि वह कारक-चिह्न के साथ नामात्मक इकाई का बोध कराता है, तो संज्ञात्मक निर्णय; और यदि वह क्रियामूल, प्रत्यय तथा सहायक क्रिया के साथ कार्य या घटना का बोध कराता है, तो क्रियात्मक निर्णय। इस संरचना से नियमों के संभावित संगणकीय कार्यान्वयन का मार्ग खुलता है।

नियमों की प्रमुख विशेषता : बहु-संकेतात्मकता-

प्रस्तावित नियमों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि किसी एक संकेत को अंतिम निर्णय का सार्वभौमिक आधार नहीं बनाया गया है। उदाहरण के लिए को कारक-चिह्न संज्ञात्मक प्रयोग का संकेत दे सकता है, पर केवल कारक-चिह्न से अर्थ हमेशा पूर्णतः निर्धारित नहीं होता। इसी प्रकार विशेष्य-संबंध विशेषण की ओर संकेत करता है, किंतु वास्तविक अर्थ सहप्रयोग और संदर्भ से अधिक स्पष्ट हो सकता है। इसलिए नियमों का समूह एक-दूसरे के पूरक रूप में कार्य करता है।

यह बहु-संकेतात्मकता चीनी, कड़ा, आला और माली जैसे शब्दों में स्पष्ट है। माली का मकान में नामात्मक व्यक्ति; माली हालत में विशेषणात्मक संबंध; कड़ा आभूषण के रूप में संज्ञा और अनुशासन के साथ विशेषण; आला को निकालना में वस्तु और आला दर्जे में उच्चता का विशेषणात्मक अर्थ इन सभी में अलग संकेत सक्रिय होते हैं। इस प्रकार नियमों का वास्तविक उद्देश्य केवल पद-निर्धारण नहीं, बल्कि पद-निर्धारण और अर्थ-निर्धारण का संयुक्त समाधान है।

मशीनी अनुवाद में संभावित उपयोग-

मशीनी अनुवाद में स्रोत भाषा के शब्द का सही अर्थ निर्धारित करना लक्ष्य भाषा में सही शब्द चुनने की पूर्वशर्त है। इसलिए प्रस्तुत नियम-आधारित ढाँचे को हिंदी से अंग्रेजी मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया में पूर्व-विश्लेषण या मध्यवर्ती भाषिक विश्लेषण घटक के रूप में देखा जा सकता है। यदि किसी संदिग्ध शब्द की व्याकरणिक कोटि और संदर्भानुकूल अर्थ पहले निर्धारित हो जाए, तो लक्ष्य भाषा में उसके उपयुक्त शब्द-रूप और अर्थ का चयन अधिक सुसंगत ढंग से किया जा सकता है। 'घटना' का उदाहरण इस आवश्यकता को स्पष्ट करता है। पानी घटना खतरे का संकेत है में घटना कम होने के अर्थ में क्रियात्मक प्रयोग करता है, जबकि इस घटना ने सब कुछ बदल दिया में यह घटना के अर्थ वाली संज्ञा है। यदि दोनों वाक्यों में समान शब्दकोशीय विकल्प यांत्रिक रूप से चुना जाए तो अनुवाद त्रुटिपूर्ण हो सकता है। अतः पहले पद-प्रकृति और अर्थ का निर्णय तथा उसके बाद अंग्रेजी शब्द-चयन अधिक उपयुक्त प्रक्रिया है।

निष्कर्ष एवं भविष्य की संभावनाएँ-

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण की संदिग्धार्थकता का समाधान एक सामान्य नियम से संभव नहीं है। संज्ञा के लिए कारक, परसर्ग, नामात्मक बोध और कर्ता-कर्म संबंध; क्रिया के लिए क्रियामूल, प्रत्यय, काल-पक्ष, सहायक क्रिया, कर्म-ग्रहण और कार्य/परिवर्तन; तथा विशेषण के लिए विशेष्य-संबंध, गुण, अवस्था और संदर्भगत विशेषता जैसे अलग संकेत आवश्यक हैं। इनके साथ संदर्भगत, अर्थगत और व्याकरणिक नियमों का समन्वय अधिक विश्वसनीय निर्णय-ढाँचा बनाता है।

इस शोध की प्रमुख उपलब्धि यह है कि नियम भाषावैज्ञानिक विश्लेषण से प्राप्त संकेतों पर आधारित हैं। वे किसी एक शब्द की व्याख्या तक सीमित न रहकर समान संरचना वाले अन्य संदिग्ध प्रयोगों पर भी लागू किए जा सकने की दिशा में सामान्यीकृत किए गए हैं। फिर भी प्रस्तावित नियमों का व्यापक संगणकीय परीक्षण, बड़े पाठ-संग्रह पर शुद्धता परीक्षण तथा स्वतंत्र पाठों पर प्रदर्शन-मूल्यांकन अभी भविष्य के कार्य हैं। आगे अर्थगत, संदर्भगत और अनुवादगत संदिग्धार्थकता, अन्य व्याकरणिक कोटियों, पदबंध एवं वाक्य-स्तरीय संदिग्धार्थकता तथा बड़े पाठ-संग्रह पर नियमों के परीक्षण की पर्याप्त संभावनाएँ हैं।

अतः प्रस्तुत नियम-आधारित ढाँचा हिंदी भाषाविज्ञान और प्राकृतिक भाषा संसाधन के बीच एक सेतु का कार्य करता है। मानव जिस संदर्भ-बोध के आधार पर संदिग्ध शब्द का अर्थ सहजता से निर्धारित करता है, उसी भाषिक क्षमता को

स्पष्ट संकेतों और नियमों के रूप में व्यक्त करने का प्रयास इस अध्ययन में किया गया है। इस दृष्टि से प्रस्तावित नियम भविष्य में हिंदी से अंग्रेजी मशीनी अनुवाद में शब्दार्थ-विसंदिग्धीकरण की अधिक व्यापक और परीक्षणीय प्रणाली के निर्माण के लिए आधारभूत सामग्री प्रदान कर सकते हैं।

संदर्भ :-

- नैविग्ली, रॉबर्टो (2009). *Word Sense Disambiguation: A Survey*. *ACM Computing Surveys*, 41(2), Article 10.
- विक्री, डेविड, ल्यूक बिवालड, मार्क टेसियर एवं डेफने कोलर (2005). *Word Sense Disambiguation for Machine Translation*.
- शर्मा, पूनम एवं नीरज जोशी (2019). *Knowledge-Based Method for Word Sense Disambiguation by Using Hindi WordNet*. *Engineering, Technology & Applied Science Research*, 9(2), 3985–3989.
- सारिका एवं डी. के. शर्मा (2015). *A Comparative Analysis of Hindi Word Sense Disambiguation and Its Approaches*.
- गुज्जर, विनीत, नीरू मैगो, राज कुमारी, श्रीकांत पटेल, नलिनी चिंतलापुडी एवं गोपी बट्टिनेनी (2023). *A Literature Survey on Word Sense Disambiguation for the Hindi Language*.
- झा, एस., दीपक नारायण, प्रभाकर पांडे एवं पुष्पक भट्टाचार्य (2001). *A WordNet for Hindi*. *Proceedings of the First International Conference on Global WordNet, Mysore, India*.
- नारायण, दीपक, देबाश्री चक्रवर्ती, प्रभाकर पांडे एवं पुष्पक भट्टाचार्य (2002). *An Experience in Building the Indo WordNet: A WordNet for Hindi*.
- नारायण, दीपक एवं पुष्पक भट्टाचार्य (2002). *Using Verb–Noun Association for Word Sense Disambiguation*.
- सिन्हा, मनीष, महेश कुमार रेड्डी, प्रभाकर पांडे, लक्ष्मी कश्यप एवं पुष्पक भट्टाचार्य (2004). *Hindi Word Sense Disambiguation*.
- चक्रवर्ती, देबाश्री एवं पुष्पक भट्टाचार्य (2004). *Creation of English and Hindi Verb Hierarchies and their Application to Hindi WordNet Building and English–Hindi Machine Translation*.
- सिन्हा, आर. एम. के. एवं अजय जैन (2003). *AnglaHindi: An English to Hindi Machine-Aided Translation System*.
- भारती, अक्षर, विनीत चैतन्य, अम्बा पी. कुलकर्णी एवं राजीव संगल (2003). *Anusaaraka: Machine Translation in Stages*.
- देसाई, प्रातिक, अमित सांगोदकर एवं ओम पी. दामनी (2014). *निर्भरता विश्लेषण पर आधारित नियम-आधारित अंग्रेजी-हिंदी मशीनी अनुवाद प्रणाली*.
- धरिया, ओंकार, श्रीकांत मालवीय एवं उमा शंकर तिवारी (2017). *A Hybrid Approach for Hindi-English Machine Translation*.
- यूसुफ, मिर्जा, प्रातिभ सुराना एवं चेतन शर्मा (2022). *HindiWSD: A Package for Word Sense Disambiguation in Hinglish & Hindi*.
- बाहरी, हरदेव (2011). *बृहत शिक्षार्थी हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश*. दिल्ली : राजपाल एंड संस.

हिन्दी सन्त काव्य परंपरा : एक अनुशीलन

डॉ. किरण कुमारी*

kirankumari6163@gmail.com

हिन्दी सन्त काव्य परंपरा का उद्भव और विकास भारतीय इतिहास के मध्यकाल में हुआ। इसका मूल बौद्ध-धर्म-साधना में मिलता है। विकास क्रम में बौद्ध-धर्म दो सम्प्रदायों में बँट गया – महायान और हीनयान। महायान से मन्त्रयान और मन्त्रयान से वज्रयान सम्प्रदाय का विकास हुआ। इसी वज्रयान की घोर तांत्रिक प्रक्रिया में नाथ-सम्प्रदाय का उदय हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आज तक के सभी विद्वान इस बात में एक मत हैं कि इसी नाथ सम्प्रदाय से प्रेरणा मूलक तत्त्वों को लेकर संत मत अवतरित हुआ। धर्म से लेकर नाथ-सम्प्रदाय तक इस प्रक्रिया में जो जीवन-तत्त्व उभरे, उन सबका समावेश सन्त मत में हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं – “वज्रयान के अनुयायी अधिकतर नीची जाति के थे अतः जाति पांति की व्यवस्था से उनका असंतोष स्वाभाविक था। नाथ सम्प्रदाय में भी शास्त्रज्ञ विद्वान नहीं आते थे। इस सम्प्रदाय के कनफटे रमते योगी घर के भीतर के चक्रों, सहस्रदल, कमल, इला, पिंगला, नाड़ियों इत्यादि की ओर संकेत करनेवाली रहस्यमयी बानियाँ सुनाकर और करामात दिखाकर अपनी सिद्धाई की धाक सामान्य जनता पर जमाए हुए थे।”¹ अपनी अव्यावहारिकता के कारण जिन दिनों नाथ-पंथ का हास हो रहा था उन्हीं दिनों उत्तर-भारत में सन्त-मत का उदय हुआ। दक्षिण भारत से भक्ति-आंदोलन को उत्तर भारत में लाने वाले स्वामी रामानन्द की शिष्य-परम्परा में सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के भक्त हुए। उनकी भक्ति में ऊँच-नीच, जाति-पाँति और छुआछूत की भावनाएँ नहीं थी। उन्हीं की शिष्य-परम्परा में महात्मा कबीर हुए जिनसे हिन्दी साहित्य में संत-काव्य-परम्परा का प्रवाह चला।

कबीर से पूर्व महाराष्ट्र के कुछ निर्गुण भाव के साधकों का उल्लेख मिलता है। इसमें प्रमुख हैं – महाराज सोमेश्वर, चक्रधर महाराज, नामदेव, ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, संत जयदेव इत्यादि। कुछ विद्वान नामदेव से ही हिन्दी संत-काव्य-परम्परा का विकास मानते हैं। ये पहले सगुणोपासक थे पर बाद में नाथ-पंथी वारकरी सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। ये मराठी के प्रमुख भक्त-कवि माने जाते हैं। इन्होंने हिन्दू और मुसलमानों की मिथ्या-रूढ़ियों का विरोध किया है। ये कहते हैं-

“हिन्दू अन्धा तुरुकौ काना,
दुहौ ते ज्ञानी समाना।
हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीदा
नामा सोई सेविया, जँह देहरा न मसीदा।”²

संत नामदेव का मतव्य है कि हिन्दू मूर्तिपूजा में अंधे होकर और मुसलमान मस्जिद या एक विशेष दिशा में काने होकर दोनों ही परम सत्य, जो कि ईश्वर है, को देखने में असमर्थ हैं। जो इन दोनों सम्प्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर उस निराकार ईश्वर को समझता है वही सच्चा ज्ञानी है। अंत में नामदेव जी कहते हैं कि मैंने तो उस ईश्वर की भक्ति की है जिसका कोई निश्चित मंदिर (देहरा) या मस्जिद (मसीद) नहीं है। वह ईश्वर सर्वव्यापी है। संत नामदेव अपने समय के प्रमुख भक्त कवि माने जाते हैं। कबीर, रैदास, कमाल आदि ने बहुत आदर के साथ इनका स्मरण किया है। यह सब है किन्तु नामदेव और कबीर को जोड़नेवाली कोई परम्परा नहीं मिलती। अतः हिन्दी सन्त मत प्रवर्तन का श्रेय कबीर को ही दिया जाता है। इसप्रकार हिन्दी सन्त काव्य परम्परा के सर्वप्रमुख और सर्वप्रथम भक्त कवि कबीर ही हैं।

कबीर

कबीर का जन्म वृत्त अंधकारमय है। डॉ. श्याम सुंदर दास और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी संवत् 1456, किन्तु डॉ. माता प्रसाद गुप्त के अनुसार 1455 कबीर का जन्म काल तथा 1575 उनका निधन काल निश्चित किया गया है। मगहर में इनका

* वरीय सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, पिन 834008

देहावसान हुआ था। अन्तःसाक्ष के आधार पर यह माना जाता है कि स्वामी रामानन्द कबीर के दीक्षागुरु थे। कबीर के अनुसार— “काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये।”³ भक्तमाल से भी इसकी पुष्टि होती है। उनकी प्रामाणिक रचना ‘बीजक’ है, जिसके तीन भाग हैं – साखी, सबद, रमैनी। कबीर के विषय में शुक्ल जी की स्थापना के कारण वे ज्ञानाश्रयी कवि माने जाते हैं, परन्तु सच्ची बात यह है कि कबीर भक्ति-योग में विश्वास करते हैं। वे ज्ञानाश्रयी नहीं, भक्ताश्रयी कवि हैं। निर्गुण राम की रट लगाने वाले कबीर की भक्ति में प्रेमा-भक्ति का योग है। प्रेम तत्त्व से विरहित होने के कारण गोरखपंथी जोगियों की कबीर ने निन्दा की है। वे उपहास से उन्हें जोगिया कहते हैं। शून्य, निरंजन, अलख, खसम, गगन उन्मनि, सहज, सुरति, निरति, आदि आध्यात्मिक शब्द कबीर ने बौद्ध सिद्धों और नाथ-पंथियों से लिए हैं अवश्य, पर उनमें अपना विशेष अर्थ भर दिया है। कबीर के सिद्धान्त उन सबसे भिन्न हैं। आत्मा और परमात्मा के बीच दाम्पत्य-भाव और गाढ़ प्रेम सम्बन्ध की अभिव्यक्ति कबीर की अपनी विशेषता है। कबीर अपने को भी और अपने साथ सब जीवों को ‘राम की नारी’ मानते हैं और राम को अपना ‘भतार’ –

“एक अंड उंकार ते सब जग भया पसारा।
कहहि कबीर सब नारि राम की अविचल पुरुष भतारा।”⁴

अपने लिए वे कहते हैं –

“हरि मोरा प्रिय मैं हरि की बहुरिया।
राम बड़े मैं तनक लहुरिया।”⁵

कबीर का काव्य आमुष्मिक है, ऐहिक नहीं। वे अध्यात्म के अमर गायक हैं। वे अक्षर-तत्त्व के उपासक हैं, शब्द ब्रह्म के ज्ञाता हैं। परा विद्या के आगे अपरा विद्या का महत्त्व वे नहीं मानते। उनके अनुसार पुस्तकीय ज्ञान के भारवाहक पंडित पथभ्रष्ट हैं। कबीर ने प्रेम के ढाई आखर का ज्ञान पाया था। पोथी की थोथी विद्या अपरा विद्या है। कबीर प्रेम को ही पराविद्या मानते हैं। उनकी वाणी ब्रह्म विचार है इसलिए ‘बानी’ कहलाती है। उनके ‘पद’ गीत नहीं हैं, प्रभु के पद तक ले जानेवाले ‘पद’ हैं। “मसि कागद छुयो नहीं, कलम गह्वे नहिं हाथ”⁶ – यह उनकी निरक्षरता का वाचक नहीं है, निरहंकारिता का वाचक है। जो अक्षर और मात्रा का भेद जानता है, वही ‘पोथी पढ़ि – पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई। ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होया।”⁷ कह सकता है। प्रेम भावना ने कबीर को सहज, सरस और मधुर बना दिया है।

निर्गुण राम और भक्ति तत्त्व कबीर को सिद्धों और नाथों से अलग कर देते हैं। कबीर के राम दशरथ- सुत नहीं हैं, वे “पुहुप बास से पातरा” तत्त्व हैं, निर्गुण अविनाशी परमात्मा हैं। कबीर की साखी देखिये –

“जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूपा।
पुहुप बासतैं पातरा, ऐसा तत्त अनूपा।”⁸

डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – “कबीरदास के पद में निर्गुण ब्रह्म के लिए ‘कृपालु’, ‘भक्त बछ’, ‘भौ – हारी’ आदि पदों का प्रयोग हुआ है। भक्ति का आलंबन बनाने के लिए निर्गुणों में भी कृपालु आदि गुणों को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है।”⁹

परमात्मा की कल्पना पति रूप में और आत्मा की कल्पना पत्नी रूप में करके कबीर ने एक भव्य भारतीय आदर्श निरूपित किया है। कबीर के इस प्रेम को सूफियों से प्रभावित कहना समीचीन नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि उनमें प्रेम की मादकता आंशिक रूप से सूफियों की देन है। इसीप्रकार कबीर में एकेश्वरवाद है पर वह मुस्लिम एकेश्वरवाद से भिन्न है। कबीर ने हठयोग की शब्दावली— अजपा जाप, सुरति, निरति, निरंजन, कुंडलिनी आदि की बातें की हैं अवश्य, परन्तु हठयोग उन्हें पसन्द नहीं था। उन्हें तो सहज योग ही अभीष्ट है। स्यात् यह रामानन्द का प्रभाव है। उनमें वैष्णवों का प्रपत्तिवाद है, जैनों की अहिंसा है, बौद्धों की बुद्धिवादिता है। वे धर्म साधना में फैले आडम्बरों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों का कड़ा विरोध करते हैं। बात यह है कि वे बहुश्रुत और सारग्राही थे। उन्होंने सब ओर से अच्छाइयों को लेकर सहज सरल एक भक्ति मार्ग की प्रतिष्ठा की है जिससे सबका उद्धार हो। वस्तुतः वे साधना क्षेत्र के युग-गुरु हैं।

शुक्ल जी कबीर की रचनाओं को साधनात्मक रहस्यवाद बतलाते हैं, परन्तु डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार कबीर में प्रेममूलक भावना प्रधान रहस्यवाद का अनुभूतिमय प्रकाशन है। कबीर में गंभीर रहस्यमय अनुभूतियों, विरह व्याकुलता, आत्म-समर्पण की उत्कण्ठा, आंतरिक प्रेम की निष्ठा, उत्कट मिलनोत्कण्ठा और विरह-पेशल हृदय की विविध

स्थितियों के बड़े ही हृदयप्लावी चित्र उपलब्ध होते हैं। वह अपने अलौकिक रूप में जितना आह्लादक है, आध्यात्मिक रूप में उतना ही आनन्द दायक है।

कबीर ने माया को आत्मा और परमात्मा के मिलन में अवरोधक माना है और कनक और कामिनी की कड़ी भर्त्सना की है, क्योंकि ये दोनों माया के प्रतीक हैं।

“माया महा ठगिनी हम जानी,
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोले माधुरी बानी।”¹⁰

प्रख्यात पद है कबीर के काव्य में रूपकों और अन्योक्तियों का भण्डार भरा है। वे मूलतः भक्त हैं, परन्तु साथ ही कवि, सुधारक और युग-नेता भी हैं। हंसों को उबारने के लिए वे “समरथ का परवाना “लेकर आए और बड़ी अक्खड़ता से उसे सुनाया, फक्कड़ का जीवन जिया, साधना की और उस तल पर जा पहुँचे कि जो बोल दिया, वह कविता हो गई। कविता उनका उद्देश्य नहीं है, प्रभु का सन्देश सुनाना उनका उद्देश्य है। उनके अभिव्यक्ति पक्ष पर डॉ. श्यामसुन्दर दास का अभिमत है - “कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नहीं लगाया। जो अलंकार मिलते हैं वे उन्होंने खोज-खोज कर नहीं बिठाए।”¹¹ वे अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। उनकी भाषा खिचड़ी भाषा है। उसमें उनके स्वभाव का मौलापन, अक्खड़पन और मौजीपन भरा है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार “भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे।”¹² इनका समस्त काव्य मुक्तक शैली में विरचित है। आचार्य शुक्ल ने स्वीकार किया है - “भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी कबीर की उक्तियों में विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है।”¹³ कबीर गहरे पानी में पैठे और पाया भी। उनकी उपलब्धि महतोपलब्धि है। उन्हीं की उक्ति उन्हीं पर चरितार्थ है -

“जिन ढूँढा तिन पाइया, गहरे पानी पैठि।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि।”¹⁴

रैदास

रैदास रामानन्द की शिष्य परम्परा में थे। संत काव्य परम्परा में ये दूसरे महत्त्वपूर्ण भक्त-कवि हैं। कबीर के समकालीन संतों में इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। मीराबाई ने इन्हें अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है। इनमें सन्तों की सहज सरलता, उदारता, निस्पृहा, संतुष्टि और तितिक्षा आदि गुण थे। भगवत-प्राप्ति के लिए अहंकार की निवृत्ति को ये आवश्यक मानते थे। कबीर के समान इनके ईश्वर भी निराकार थे और इनकी भक्ति प्रेम भाव की है। इनका कहना है कि परमात्मा का आदर्श परिचय केवल सुहागिन प्राप्त कर सकती है, क्योंकि वह अपने को सर्वभाव से समर्पित कर देती है।

गुरु ग्रंथ साहिब तथा कई संग्रहों में इनके पद बिखरे हुए मिलते हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह ‘रैदास की वाणी’ के नाम से प्रकाशित है। इनकी भाषा सरल, सुगम और आडम्बर विहीन है। फारसी के शब्दों की बहुलता है। आचार्य द्विवेदी का अभिमत है- “आडम्बर रहित सहज जीवन शैली और निरीह आत्म-समर्पण के क्षेत्र में रैदास के साथ कम संतों की तुलना की जा सकती है। यदि हार्दिक भावों की प्रेषणीयता काव्य का उत्तम गुण हो, तो निस्सन्देह रैदास के भजन इस गुण से समृद्ध हैं। इनका कहना है-

“तीरथ बरत न करौं अंदेशा, तुम्हारे चरण कमल भरोसा
जहँ तहँ जाओ तुम्हारी पूजा तुम सा देव और नहिं दूजा।”¹⁵

धर्मदास

धर्मदास कबीरदास के शिष्य थे और कबीरदास की गद्दी पर लगभग बीस वर्ष रहे। इनकी शब्दावली का भी सन्तों में बड़ा आदर है इनकी रचना थोड़ी होने पर भी कबीर की अपेक्षा अधिक सरल भाव लिए हुए है। उनमें कठोरता और कर्कशता नहीं है खण्डन-मण्डन इनका विशेष प्रयोजन नहीं था। प्रेम तत्त्व को ही लेकर इन्होंने अपनी वाणी का प्रसार किया है। इनकी अन्योक्तियों के चित्र बड़े मार्मिक हैं सतगुरु की महिमा बताते हुए इन्होंने कहा है -

“खुली केवरिया, मिटि अँधियरिया
धनि सतगुरु जिन दिया लखाया
धरमदास विनवै कर जोरी
सतगुरु चरण में रहत समाया।”¹⁶

गुरु नानक

सिक्ख मत के प्रवर्तक गुरु नानक देव का जन्म सम्वत् 1526 और मृत्यु सम्वत् 1596 है। वे निराकार वादी थे। उन्होंने अवतारवाद, मूर्तिपूजा, ऊँच-नीच, वर्ण-भेद आदि का डटकर विरोध किया है। उनके पदों में भक्ति, सरलता, दीनता और आत्म-समर्पण की भावनाएँ हैं। कबीर का उनपर अत्यधिक प्रभाव है। पुस्तक पढ़ने वाले पंडित की हँसी उड़ाना, भेख-आडम्बर की निन्दा करना और राम नाम के जाप तथा गुरुप्रसाद को महत्त्व देना पदों कबीर की शैली पर उनके पदों में भी उपलब्ध हैं।

दादूदयाल

दादू संत काव्य परम्परा के दूसरे बड़े कवि हैं। इन्हें भी रामानन्द की शिष्य-परम्परा में माना जाता है। इनका साधना क्षेत्र साँभर में था। प्रेम युक्त भक्ति में ये कबीर के समान ही सदा रसमग्न रहते थे। सिद्धान्त में कबीर और दादू एक हैं। इनकी वाणी में मर्मस्पर्शिता अधिक है। कहने का ढंग मन पर सीधी चोट करने वाला है। उनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित पश्चिमी हिन्दी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – “कबीर के समान मस्तमौला न होने के कारण वे प्रेम के संयोग और वियोग के रूपकों में वे वैसी मस्ती न ला सके, पर स्वभावतः सरल और निरीह होने के कारण ज्यादा सहज और पुरअसर बना सके हैं।”¹⁷ उनकी निश्चित धारणा है –

“आपा मेटै हरि भजै तन मन तजै विकार।
निर्वेदी सब जीव सों दादू यहै मत सार।”¹⁸

मीठा स्वभाव होने के कारण दादू को अधिक शिष्य और सम्मानदाता मिले।

सुन्दरदास

सुन्दरदास दादू के शिष्यों में सर्वाधिक शास्त्रीय ज्ञान सम्पन्न महात्मा थे। वे वैश्य थे। छोटे बड़े कुल बयालीस ग्रंथों की इन्होंने रचना की। ये ‘सुन्दर ग्रंथावली’ के नाम से संकलित हैं। ‘सुन्दर विलास’, ‘ज्ञान समुद्र’ और ‘पद’ इनकी रचनाएँ हैं। कबीर और दादू की तन्मयता इनमें नहीं मिलती और अभिव्यक्ति में भी उतनी सरलता और मार्मिकता नहीं है, किन्तु उन्होंने भक्ति-पक्ष के निर्गुण-भाव को बड़े विस्तार से विद्या के पुट से युक्त कर व्यक्त किया है। इनकी कविता सम्बन्धी धारणा है –

“बोलिये तो तब जब बोलिबे की बुद्धि होय।
न तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिये।
जोरिये तो तब जब जोरिबे की रीति जानै,
तुक छन्द अरथ अनूप जामें तहिये।”¹⁹

संत तो ये थे ही पर कवि भी थे। इससे समाज की रीति-नीति और व्यवहार पर भी पूरी दृष्टि रखते थे।

साधू-सन्तों पर व्यंग्य है –

“भूख सही रही रूख तरे पर सुन्दरदास सबै दुख भारी।
डासन छाँडि के कासन ऊपर आसन मारयो पै आस न मारी।”²⁰

मलूकदास

संत मलूकदास इलाहाबाद के खत्री थे। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं – ज्ञान-बोध और रतन खाना। इन्होंने मलूक पंथ के नाम से एक पंथ चलाया। इनके अनुसार आत्म ज्ञान ही मुक्ति है और आत्म-समर्पण ही भक्ति का सार है। निम्नलिखित दोहा जो आलसियों का मूलमंत्र है इन्हीं का कहा जाता है –

“अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम

दास मलूका कह गए सबके दाता रामा”²¹

उनकी भाषा में अरबी फारसी के शब्द अधिक हैं, फिर भी वह काफी सरल और सुव्यवस्थित है। वे कहते हैं -

“माला जपौं न कर जपौं जिभ्या कहौं न राम

सुमिरन मेरा हरि करै मैं पाया बिसरामा”²²

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अक्षर अनन्य का भी उल्लेख इस परम्परा में किया है। वे वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे। योग और वेदान्त पर कई ग्रंथों का उन्होंने हिन्दी पद्यों में अनुवाद किया था। उनके अतिरिक्त शुक्ल जी ने जगजीवन दास, दूलनदास, तुलसी साहब, गोविन्द साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, आदि अनेक सन्तों का भी उल्लेख किया है। इनमें से बहुतों की वाणियाँ प्रयाग के वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित हुई हैं। इधर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने बिहार के संत दरिया साहब को प्रकाश में लाया है। उनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ हैं – ‘दरियासागर’ और ‘ज्ञान दीपक’। दरिया अपने को “कुलवन्ती खसम पियारी”, जाँचत तू लै दीपक बारी”²³ रूप में रखकर पिया के पलंग पर पौढ़ने का वर्णन करते हैं। इस तन में ही उस पिया को जोग जुगुति से पाना है। प्रेम के विषय में दरिया का मत है –

“प्रेम प्रीति करु नाम से भौजल जाय न हारि।

बिना प्रेम नहिं भगति है, कँवल सुखै बिनु वारि।”²⁴

निष्कर्ष :-

इसप्रकार निर्गुण धारा भारतीय भक्ति स्रोत से ही निकली है। इस विशिष्ट आध्यात्मिक भक्ति-भागीरथी के भगीरथ कबीर हैं। इसी भागीरथी का जल अनेक घाटों से बहता हुआ समस्त हिन्दी क्षेत्र को उर्वर करता है। कबीर संत पहले हैं कवि बाद में। कविता उनके लिए साध्य न होकर साधन मात्र थी। परंतु साहित्यिक रूप में या कवि रूप में उनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। कवि रहस्यवाद के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कबीर के रहस्यवाद में दाम्पत्य संबंध के माध्यम से प्रेम की चरम परिणति दिखाई देती है। उनकी रहस्य भावना में अनुभूति की प्रबलता, विरह – व्याकुलता, आत्म समर्पण की उत्कंठा, मिलन की उत्कट अभिलाषा, विरहिणी आत्मा की नाना स्थितियाँ – इन सभी का कलात्मक चित्रण है। कबीर के साधनात्मक रहस्यवाद के भी उदाहरण मिलते हैं परंतु भावना की अनुभूति से युक्त उनके रहस्यवादी पदों में कबीर का कवि रूप अपने उच्च रूप में प्रस्तुत होता है। एक भावुक भक्त की तरह उन्होंने अपने आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीकों, अन्योक्तियों, समासोक्तियों, उपमाओं, रूपकों और उलटबासियों का आश्रय ग्रहण किया है। कबीर के काव्य में एक ओर अनिवर्चनीय आत्मिक रस की अभिव्यक्ति मिलती है दूसरी ओर उसमें लौकिक चमत्कारों के उपादान भी हैं। कबीर के पास उदात्त विचार, पवित्र भावनाएँ एवं गंभीर अनुभूतियाँ हैं और अभिव्यक्ति के उपादान सहज ही उनमें समाविष्ट हो गए हैं।

संदर्भ –

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, चौबीसवाँ संस्करण, संवत् 2048 वि., पृ. 35
2. अंग 875, गुरु ग्रंथ साहिब
3. गुलाबराय बाबू, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, बावनवाँ संस्करण 2008, पृ. 27

4. श्रीवास्तव मुरलीधर, कुमार विनय, मध्यकालीन काव्य, भारती भवन पटना, तृतीय संस्करण 1977, पृ. 21
5. शर्मा रामकिशोर, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 378
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, चौबीसवाँ संस्करण, संवत् 2048 वि. पृ. 35
7. ज्ञानानन्द जी साहवी, टीकाकार, कबीर साखी दर्पण, श्री कबीर प्रकाशन केंद्र, गिरीडीह झारखंड,, संवत् 2069 वि., पृ. 249
8. शर्मा रामकिशोर, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 258
9. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक संस्करण 1993, पृ. 119
10. द्विवेदी हजारीप्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1976, पृ. 312
11. दास श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, आठवाँ संस्करण 2021ई., पृ. 44
12. द्विवेदी हजारीप्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1976, पृ. 221
13. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, चौबीसवाँ संस्करण, संवत् 2048 वि. पृ. 48
14. ज्ञानानन्द जी साहवी, टीकाकार, कबीर साखी दर्पण, श्री कबीर प्रकाशन केंद्र, गिरीडीह झारखंड,, संवत् 2069 वि., पृ. 324
15. शर्मा, डॉ. शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली – 6, बारहवाँ संस्करण 1990, पृ. 146
16. हंस, डॉ. कृष्णलाल, हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, प्रथम संस्करण 1974, पृ. 117
17. शर्मा, डॉ. शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली – 6, बारहवाँ संस्करण 1990, पृ. 148
18. वही, पृ. 148
19. गुलाबराय बाबू, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, बावनवाँ संस्करण 2008, पृ. 31
20. श्रीवास्तव मुरलीधर, कुमार विनय, मध्यकालीन काव्य, भारती भवन पटना, तृतीय संस्करण 1977, पृ. 25
21. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, चौबीसवाँ संस्करण, संवत् 2048 वि. पृ. 50
22. तिवारी सिद्धनाथ, निर्गुण काव्य दर्शन, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 127
23. श्रीवास्तव मुरलीधर, कुमार विनय, मध्यकालीन काव्य, भारती भवन पटना, तृतीय संस्करण 1977, पृ. 35
24. वही, पृ. 32

चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा और भारत की रणनीतिक और विदेश नीति संप्रभुता, सुरक्षा ढांचा और क्षेत्रीय शक्ति संतुलन

प्रो. आशा राणा*
asha.rana1@gmail.com

सत्येंद्र कुमार (शोधार्थी)[†]
ajayaryan2491@gmail.com

सार:

चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC), जिसकी कीमत 62 अरब डॉलर से अधिक है और जो बीजिंग के 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' (BRI) का मुख्य प्रोजेक्ट है, दक्षिण एशियाई भू-राजनीति में एक बुनियादी बदलाव का प्रतीक है। पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर (विशेषकर गिलगित-बाल्टिस्तान) से गुजरते हुए और अरब सागर में ग्वादर के रणनीतिक बंदरगाह पर खत्म होने वाला CPEC, सीधे तौर पर भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा, संप्रभुता और विदेश नीति की मुख्य ज़रूरतों से जुड़ा है। यह शोध पत्र भारत के लिए CPEC के कई स्तरों वाले रणनीतिक प्रभाव का विश्लेषण करता है—जिसमें क्षेत्रीय अखंडता, दो मोर्चों पर सैन्य तालमेल, हिंद महासागर में समुद्री शक्ति का प्रदर्शन और संस्थागत भू-आर्थिक प्रतिस्पर्धा शामिल हैं। इसके अलावा, यह नई दिल्ली द्वारा तैयार किए गए रणनीतिक जवाबी उपायों का मूल्यांकन करता है, जिसमें भारत का बदलता कूटनीतिक रुख, कनेक्टिविटी के प्रतिउत्तर में शुरू की गई पहल, समुद्री रक्षा के लिए थिएटर-आधारित रणनीति और इंडो-पैसिफिक गठबंधन के ढांचे शामिल हैं।

मुख्य शब्द :

भारत, चीन, पाकिस्तान, आर्थिक गलियारा, विदेश नीति, संप्रभुता, सुरक्षा ढांचा, क्षेत्रीय शक्ति संतुलन, सियाचिन, लद्दाख, ग्वादर पोर्ट, हिंद महासागर, ग्वादर पोर्ट

1. CPEC का परिचय और भू-आर्थिक ढांचा

अप्रैल 2015 में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग की इस्लामाबाद यात्रा के दौरान औपचारिक रूप से शुरू किया गया 'चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा' (CPEC), 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' (BRI) के तहत सबसे महत्वपूर्ण स्थल और समुद्री रास्ते के रूप में काम करता है। चीन के पश्चिमी शिनजियांग उइगुर स्वायत्त क्षेत्र के ऐतिहासिक व्यापारिक शहर काशगर से शुरू होकर, यह गलियारा काराकोरम पर्वतमाला से गुजरता है, गिलगित-बाल्टिस्तान और उत्तरी पाकिस्तान के ऊबड़-खाबड़ इलाकों से होकर जाता है, खैबर पख्तूनख्वा, पंजाब और बलूचिस्तान के मध्य और पश्चिमी प्रांतों में फैलता है, और अंत में अरब सागर के उत्तरी किनारे पर स्थित गहरे पानी वाले ग्वादर बंदरगाह तक पहुँचता है। इसमें लगभग 3,000 किलोमीटर के नियोजित और निर्मित परिवहन लिंक, ऊर्जा पाइपलाइन, फाइबर-ऑप्टिक लाइनें और औद्योगिक केंद्र शामिल हैं। CPEC के लिए शुरू में 46 अरब डॉलर के निवेश का अनुमान लगाया गया था एक ऐसी राशि जिसे बाद में विभिन्न संयुक्त सहयोग मंचों पर बढ़ाकर 62 अरब डॉलर से अधिक कर दिया गया।

बीजिंग के लिए, CPEC केवल व्यापारिक आवाजाही का रास्ता नहीं है; यह लंबे समय से चली आ रही ज़मीनी और समुद्री कमज़ोरियों का एक महत्वपूर्ण समाधान है। इनमें सबसे प्रमुख है 'मलक्का दुविधा', एक ऐसी कमज़ोरी जिसे

* सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रुद्रपुर, उत्तराखंड

[†] Assistant professor, Department of Political Science, Bareilly College, Bareilly, U.P.

सबसे पहले 2003 में पूर्व राष्ट्रपति हू जिंताओ ने स्पष्ट रूप से बताया था। वर्तमान में, चीन का 75 से 80 प्रतिशत समुद्री कच्चा तेल और लिक्विफाइड नेचुरल गैस (LNG) का आयात दक्षिण चीन सागर से गुजरने से पहले मलक्का, सुंडा या लोम्बोक जलडमरूमध्य (straits) के संकरे रास्तों से होकर गुजरता है। यदि क्षेत्र में कोई बड़ा संघर्ष होता है या अमेरिकी नौसेना और उसके सहयोगी समुद्री साझेदार नाकेबंदी करते हैं, तो यह समुद्री बाधा अचानक चीन की औद्योगिक अर्थव्यवस्था को ठप कर सकती है। अरब सागर से पश्चिमी चीन तक सीधे स्थलीय परिवहन गलियारे का निर्माण करके, CPEC फारस की खाड़ी से आने वाले तेल के परिवहन की दूरी को लगभग 12,000 समुद्री किलोमीटर से घटाकर 3,000 किलोमीटर से कम स्थलीय पाइपलाइन और सड़क नेटवर्क में बदल देता है, जो सीधे चीन के पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्रों में परिपूर्ण होता है।

साथ ही, CPEC पश्चिमी चीन के भीतर महत्वपूर्ण घरेलू सुरक्षा और विकास के लक्ष्यों को भी पूरा करता है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (CCP) शिनजियांग के विकास और काशगर को दुनिया के मुख्य व्यापारिक रास्तों से लगातार आर्थिक रूप से जोड़ने को, देश में शांति बनाए रखने, सामाजिक नियंत्रण और लंबे समय तक राजनीतिक स्थिरता के लिए एक आवश्यक माध्यम मानती है। इसके अलावा, CPEC देश में मौजूद अधिशेष औद्योगिक क्षमता के लिए एक बाहरी रास्ते का काम करता है। इससे सिविल इंजीनियरिंग, स्टील बनाने, सीमेंट बनाने और भारी उपकरण बनाने वाली चीन की सरकारी कंपनियों (SOEs) को सरकार की सब्सिडी वाली विदेशी पूंजी के कॉन्ट्रैक्ट मिल पाते हैं।

पाकिस्तान के राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखें तो CPEC ऐसे समय में आया जब देश गंभीर आर्थिक संकट और आंतरिक सुरक्षा को लेकर अनिश्चितता से जूझ रहा था। बिजली की भारी कमी, भुगतान संतुलन का संकट, घटते विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) और वाशिंगटन के साथ तनावपूर्ण राजनयिक संबंधों के कारण पस्त हो चुके इस्लामाबाद ने CPEC को आर्थिक बचाव के रास्ते के तौर पर उत्साह के साथ अपनाया। देश के भीतर इसे 'गेम-चेंजर' के तौर पर पेश किया गया। इस कॉरिडोर को पाकिस्तान के जर्जर राष्ट्रीय लॉजिस्टिक्स नेटवर्क को आधुनिक बनाने, शुरुआती दौर के थर्मल और कोयले से चलने वाले प्लांट द्वारा बिजली की पुरानी कटौती की समस्या को हल करने और विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) के जरिए औद्योगीकरण को फिर से मजबूत करने के लिए एक उत्प्रेरक के तौर पर देखा गया। रणनीतिक तौर पर, इसने एक उभरती हुई वैश्विक महाशक्ति के साथ मजबूत वित्तीय और तकनीकी जुड़ाव का वादा किया, जिससे दक्षिण एशिया में पाकिस्तान की रक्षात्मक और राजनयिक स्थिति और सुदृढ़ होने संभावना जताई जा रही है।

2. संप्रभुता का विवाद: गिलगित-बाल्टिस्तान और क्षेत्रीय अखंडता

CPEC के प्रति भारत के सैद्धांतिक विरोध के मूल में संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता की दृढ़ रक्षा की भावना है। इस गलियारे का मुख्य स्थलीय मार्ग, जो काराकोरम हाईवे (KKH) से, अर्थात् गिलगित-बाल्टिस्तान से होकर जाता है। यह क्षेत्र 26 अक्टूबर 1947 को जम्मू-कश्मीर रियासत का हिस्सा था, जब महाराजा हरि सिंह ने भारत संघ में विलय के दस्तावेज़ (इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन) पर हस्ताक्षर किए थे। नतीजतन, अंतरराष्ट्रीय कानून और भारतीय संविधान के तहत, गिलगित-बाल्टिस्तान का पूरा भाग भारत की संप्रभुता के अधीन है, जो अभी पाकिस्तान के अवैध कब्जे में है। जबकि इस संप्रभु दर्जे की पुष्टि 22 फरवरी 1994 को भारतीय संसद के दोनों सदनों ने सर्वसम्मति से की थी। इसमें घोषित किया गया था कि जम्मू-कश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग रहा है, है और रहेगा। नई दिल्ली से बिना किसी स्वीकृति के, इस विवादित क्षेत्र में बड़े पैमाने पर स्थायी बुनियादी ढाँचे की योजना बनाकर, उसे फ़ंड देकर और उसका निर्माण करके, बीजिंग और इस्लामाबाद ने जानबूझकर भारत की संप्रभु सीमाओं का उल्लंघन किया है।

भारत का तर्क है कि अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक पहलों को अंतरराष्ट्रीय कानून के बुनियादी सिद्धांतों से अलग नहीं किया जा सकता। गिलगित-बाल्टिस्तान में चीन का निवेश, जिसमें काराकोरम हाईवे का विस्तार और 4,500 मेगावाट के डायमर-भाषा बांध और कोहाला जलविद्युत परियोजना जैसे बड़े जलविद्युत बांधों का निर्माण शामिल है पाकिस्तान के वास्तविक प्रशासनिक नियंत्रण को संस्थागत रूप देता है। ये परियोजनाएँ व्यावहारिक वास्तविकता को बदल देती हैं और उपमहाद्वीप के दो पड़ोसियों के बीच लंबे समय से लंबित विवाद का पहले से ही एकतरफ़ा फैसला सुना देती हैं।

इसके अलावा, भारत गिलगित-बाल्टिस्तान से होकर गुजरने वाले CPEC के रास्ते को ऐतिहासिक कानूनी सीमाओं का लगातार उल्लंघन मानता है। 1963 में, पाकिस्तान और चीन के बीच सीमा को लेकर एक द्विपक्षीय समझौता हुआ,

जिसके तहत इस्लामाबाद ने ट्रांस-काराकोरम क्षेत्र (शक्सगाम घाटी) में भारत के 5,180 वर्ग किलोमीटर के इलाके को गैर-कानूनी तरीके से बीजिंग को सौंप दिया। हालांकि 1963 के समझौते की धारा 6 में यह तय किया गया था कि यह सीमा अस्थायी है और कश्मीर विवाद के अंतिम समाधान के बाद इस पर फिर से बातचीत हो सकती है, लेकिन चीन द्वारा अरबों डॉलर के स्थायी इंफ्रास्ट्रक्चर निवेश ने इस अस्थायी स्थिति को स्थायी और वास्तविक रूप दे दिया है, जिससे भारत की उत्तरी सीमा की सुरक्षा सीधे तौर पर खतरे में पड़ गई है।

3. रणनीतिक कमज़ोरियाँ: दो मोर्चों पर सैन्य एकजुटता

कानूनी और संप्रभुता से जुड़े विवादों के अलावा, CPEC दक्षिण एशिया के सैन्य और सुरक्षा परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल देता है। यह भारत के लिए 'दो मोर्चों' वाली सैन्य दुविधा को एक वास्तविक, समन्वित ऑपरेशनल क्षेत्र में बदल देता है। इस गलियारे का संरक्षण भारत की उत्तरी और पश्चिमी सीमाओं पर पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (PLA) और पाकिस्तान सशस्त्र बलों के लॉजिस्टिकल, ऑपरेशनल और इलेक्ट्रॉनिक कमांड नेटवर्क को प्रभावी ढंग से जोड़ता है।

पहला, काराकोरम हाईवे का उन्नयन, अधिक ऊंचाई वाले पहाड़ी सुरंग, भारी भार उठाने वाले पुल और हर मौसम में काम करने वाले फाइबर-ऑप्टिक लिंक सैन्य और नागरिक दोनों तरह से बहुत उपयोगी हैं। ये आधुनिक कॉरिडोर चीन के वेस्टर्न थिएटर कमांड को सशस्त्र संघर्ष की स्थिति में पाकिस्तान के उत्तरी सैन्य ऑपरेशनल क्षेत्रों में तेज़ी से लॉजिस्टिक्स, सामान और सैनिकों की मदद पहुँचाने की सुविधा देते हैं। तिब्बती पठार और पंजाब व सिंध के मैदानी इलाकों के बीच मशीनीकृत इन्फेंट्री, विशेष आर्म्स और सटीक हथियारों का तेज़ी से आवागमन लॉजिस्टिक्स के नज़रिए से संभव हो जाता है, जिससे भारतीय रक्षा योजनाकारों के पास प्रतिक्रिया देने का समय बहुत कम हो पाता है।

दूसरा, यह सियाचिन और लद्दाख के महत्वपूर्ण सेक्टरों पर तुरंत रणनीतिक दबाव डालता है। गिलगित-बाल्टिस्तान की सीमा सीधे सियाचिन ग्लेशियर, साल्टोरो रिज और पूर्वी लद्दाख में दौलत बेग ओल्डी (DBO) के पास रणनीतिक रूप से संवेदनशील सब-सेक्टर नॉर्थ (SSN) से लगती है। इस पूरे सेक्टर में चीनी बुनियादी ढांचे के विस्तार से एक साथ दो तरफ से हमले की संभावना बढ़ जाती है: लाइन ऑफ़ एक्चुअल कंट्रोल पर तैनात भारतीय सेना को एक ही समय में लाइन ऑफ़ कंट्रोल के साथ पाकिस्तान के नियंत्रण वाले इलाके से रुकावट या किनारे से हमले का दबाव झेलना पड़ सकता है।

तीसरा, रावलपिंडी-काशगर फाइबर-ऑप्टिक केबल, साथ ही अधिक ऊंचाई पर इलेक्ट्रॉनिक युद्ध के उपकरण और गिलगित-बाल्टिस्तान के पहाड़ों में लगे रडार ट्रैकिंग सिस्टम, दोनों सेनाओं को इंटीग्रेटेड सिग्नल इंटेलिजेंस (SIGINT) और इलेक्ट्रॉनिक क्षेत्र में दबदबा प्रदान करते हैं। यह इंटीग्रेटेड सिस्टम जम्मू, कश्मीर, लद्दाख, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में भारतीय सेना के संचार, परीक्षण रेंज, रडार उत्सर्जन और हवाई गतिविधियों पर लगातार नज़र रखने में मदद करता है।

4. समुद्री आयाम : ग्वादर पोर्ट और हिंद महासागर में दबदबा

CPEC का समुद्री केंद्र पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में मकरान तट पर स्थित ग्वादर का गहरे पानी और गर्म पानी वाला बंदरगाह है। इसे 'चाइना ओवरसीज पोर्ट होल्डिंग कंपनी' (COPHC) 43 साल के एक बड़े समझौते के तहत 2059 तक चलाएगी। ग्वादर रणनीतिक रूप से अहम 'होर्मुज जलडमरूमध्य' (Strait of Hormuz) से सिर्फ 120 नॉटिकल मील पूर्व में है, यह वह मुख्य रास्ता है जिससे हर दिन लगभग 21 मिलियन बैरल कच्चा तेल गुजरता है।

हालांकि इसे आधिकारिक तौर पर क्षेत्रीय स्तर पर बड़े पैमाने पर सामान लाने-ले जाने के लिए एक कमर्शियल टर्मिनल के तौर पर पेश किया जाता है, लेकिन ग्वादर में एक फर्स्ट-क्लास नेवल बेस (नौसैनिक अड्डे) के लिए ज़रूरी सभी ढांचागत, गहराई संबंधी और भौगोलिक खूबियाँ मौजूद हैं। 14 मीटर से ज़्यादा गहरे पानी की सुविधा, बड़े पैमाने पर कंटेनर संभालने की क्षमता, योजनाबद्ध ड्राई डॉक और एक खास इंटरनेशनल एयरपोर्ट के साथ, ग्वादर को 'पीपुल्स लिबरेशन आर्मी नेवी' (PLAN) के बड़े युद्धपोतों, सप्लाय करने वाले जहाजों और हमलावर पनडुब्बियों को सपोर्ट करने के लिए बेहतरीन ढंग से बनाया गया है।

भारतीय नौसेना, जिसका उत्तरी अरब सागर में ऐतिहासिक रूप से रणनीतिक और ऑपरेशनल दबदबा रहा है, के लिए ग्वादर का 'दोहरे इस्तेमाल' वाले या ऑपरेशनल PLAN बेस में बदलना बड़ी रणनीतिक चुनौतियाँ पेश करता है:

6. भारत की विदेश नीति और रणनीतिक जवाबी उपाय

CPEC से जुड़ी व्यापक भू-राजनीतिक, क्षेत्रीय और नौसैनिक चुनौतियों का सामना करते हुए, भारत ने एक बहुआयामी रणनीतिक, कूटनीतिक और सैन्य प्रतिक्रिया तैयार की है। नई दिल्ली ने अपनी पुरानी हिचकिचाहट को छोड़ दिया है और एक मुखर रुख अपनाया है, जिसमें सिद्धांतों पर आधारित कूटनीतिक विरोध, सक्रिय जवाबी-कनेक्टिविटी इंफ्रास्ट्रक्चर, रक्षात्मक समुद्री पुनर्गठन और गहरे अंतरराष्ट्रीय गठबंधन बनाना शामिल है।

6.1. सिद्धांतों पर आधारित कूटनीतिक विरोध और वैश्विक नियम तय करना

भारत अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में पहली बड़ी शक्ति बना जिसने नियमों और संप्रभुता के आधार पर 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' (BRI) का स्पष्ट विरोध किया। 2017, 2019 और 2023 में बीजिंग में आयोजित हाई-प्रोफाइल 'बेल्ट एंड रोड फोरम' का औपचारिक रूप से बहिष्कार करके, भारत ने स्पष्ट कूटनीतिक सीमाएँ तय कीं। भारत के विदेश मंत्रालय ने क्षेत्रीय कनेक्टिविटी के लिए एक सुसंगत नीतिगत सिद्धांत तैयार किया, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि सभी अंतरराष्ट्रीय पहलों को सर्वमान्य अंतरराष्ट्रीय सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए: राष्ट्रीय संप्रभुता का सम्मान, पारदर्शिता, वित्तीय व्यवहार्यता, संतुलित पर्यावरणीय मूल्यांकन और सभी हितधारकों की समान भागीदारी इत्यादि।

6.2. चाबहार, INSTC और IMEC

यह समझते हुए कि केवल कूटनीतिक आपत्तियों से CPEC की व्यावहारिक सच्चाई को नहीं बदला जा सकता, भारत ने वैकल्पिक कनेक्टिविटी कॉरिडोर विकसित करने में भारी निवेश किया है। इनका उद्देश्य पाकिस्तान से होकर न गुजरना और यूरेशिया, मध्य पूर्व और यूरोप तक भारत की सीधी व्यावसायिक पहुँच सुनिश्चित करना है:

- चाबहार पोर्ट (ईरान) का विकास: दक्षिण-पूर्वी ईरान में ओमान की खाड़ी के किनारे स्थित ग्वादर से केवल 72 किलोमीटर पश्चिम में—चाबहार पोर्ट भारत की प्रमुख जवाबी-कनेक्टिविटी परियोजना है। मई 2016 में, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की तेहरान यात्रा के दौरान, भारत, ईरान और अफगानिस्तान ने ऐतिहासिक त्रिपक्षीय पारगमन समझौते पर हस्ताक्षर किए। मई 2024 में, भारत ने 'इंडिया पोर्ट्स ग्लोबल लिमिटेड' (IPGL) के ज़रिए चाबहार में 'शहीद बेहेशती टर्मिनल' को विकसित करने और चलाने के लिए 10 साल का लंबा कॉन्ट्रैक्ट किया। यह गहरे पानी वाला हब भारतीय एक्सपोर्ट्स को अफगानिस्तान और मध्य एशियाई देशों तक बिना किसी रुकावट के समुद्री रास्ते से सामान भेजने की सुविधा देता है, जिससे पाकिस्तान से गुजरने पर लगी रोक से बचा जा सकता है।

- इंटरनेशनल नॉर्थ-साउथ ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर (INSTC): चाबहार 7,200 किलोमीटर लंबे मल्टी-मॉडल INSTC नेटवर्क से आसानी से जुड़ जाता है, जो मुंबई को जहाज, रेल और सड़क मार्ग से बंदर अब्बास, चाबहार, बाकू, अस्ख़ान और मॉस्को से जोड़ता है। इस यूरेशियन ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर के चालू होने से, पारंपरिक स्वेज नहर मार्ग की तुलना में यूरोप और रूस तक माल भेजने में लगने वाले समय में भारत लगभग 40 प्रतिशत की कमी लाता है, जिससे मध्य एशिया में भारत की सीधी आर्थिक मौजूदगी बनती है।

- इंडिया-मिडिल ईस्ट-यूरोप इकोनॉमिक कॉरिडोर (IMEC): सितंबर 2023 में G20 नई दिल्ली लीडर्स समिट के दौरान शुरू किया गया IMEC, भारत, अमेरिका, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, फ्रांस, जर्मनी, इटली और यूरोपीय संघ के समर्थन वाला एक क्रांतिकारी, मल्टी-मॉडल और वैकल्पिक कनेक्टिविटी नेटवर्क है। इसमें एक पूर्वी कॉरिडोर है जो भारत के पश्चिमी तट के बंदरगाहों (मुंद्रा, कांडला, JNPT) को अरब खाड़ी के हब से जोड़ता है, और एक उत्तरी कॉरिडोर है जो सऊदी अरब, जॉर्डन और इज़राइल के रेल नेटवर्क को यूरोपीय बंदरगाहों से जोड़ता है। IMEC 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' का एक मज़बूत, पारदर्शी और नियमों पर आधारित विकल्प पेश करता है।

6.3. समुद्री सेना का पुनर्गठन करना

हिंद महासागर में अपनी नौसैनिक श्रेष्ठता बनाए रखने और चीन द्वारा संचालित ग्वादर बंदरगाह से पैदा होने वाले फॉरवर्ड डिप्लॉयमेंट (अग्रिम तैनाती) के खतरों को बेअसर करने के लिए, भारतीय नौसेना ने अपने ऑपरेशनल और रणनीतिक फोकस

को नए सिरे से तय किया है जिसमें प्रमुख है, अंडमान और निकोबार कमांड (ANC) को मजबूत करना, कारवार में प्रोजेक्ट सीबर्ड और नेवल हार्डनिंग

6.4. बाहरी संतुलन: क्वाड और बुनियादी रणनीतिक समझौते

भारत की व्यापक विदेश नीति 'गुटनिरपेक्षता' से आगे बढ़कर 'सक्रिय, रणनीतिक बहु-गठबंधन' की ओर विकसित हुई है। यह समझते हुए कि चीन और पाकिस्तान के संयुक्त संसाधनों का मुकाबला करने के लिए गहरे बाहरी सहयोग की आवश्यकता है, नई दिल्ली ने समुद्री लोकतंत्रों के साथ अपनी रणनीतिक साझेदारी को व्यवस्थित रूप से बढ़ाया है:

(क्वाड): भारत ने अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया के साथ मिलकर क्वाड को इंडो-पैसिफिक सुरक्षा का मुख्य आधार बनाया है। क्वाड की पहल का फोकस एक स्वतंत्र, खुले, समावेशी और नियमों पर आधारित समुद्री व्यवस्था बनाए रखने; बुनियादी ढांचे के लिए वैकल्पिक वित्तपोषण उपलब्ध कराने; रियल-टाइम सैटेलाइट-आधारित समुद्री क्षेत्र की जानकारी (IPMDA - इंडो-पैसिफिक पार्टनरशिप फॉर मैरीटाइम डोमेन अवेयरनेस के माध्यम से) प्रदान करने; और आर्थिक दबाव के खिलाफ महत्वपूर्ण सप्लाय चैन को सुरक्षित करने पर है।

भारत-अमेरिका बुनियादी रक्षा समझौते: भारत ने अमेरिका के साथ चार महत्वपूर्ण बुनियादी रक्षा समझौते किए हैं, जिससे अभूतपूर्व परिचालन, लॉजिस्टिकल और तकनीकी तालमेल (interoperability) संभव हुआ है, LEMOA (लॉजिस्टिक्स एक्सचेंज मेमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट, 2016), COMCASA (कम्युनिकेशंस कम्पैटिबिलिटी एंड सिन्क्रोरिटी एग्रीमेंट, 2018), BECA (बेसिक एक्सचेंज एंड कोऑपरेशन एग्रीमेंट, 2020), MLSA ('म्यूचुअल लॉजिस्टिक्स सपोर्ट एग्रीमेंट्स') किए हैं।

7. दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय स्थिरता के लिए रणनीतिक प्रभाव

CPEC के संस्थागतकरण से दक्षिण एशियाई रणनीतिक स्थिरता कई अहम पहलुओं पर संरचनात्मक रूप से बदल जाती है:

1. द्विपक्षीय विवाद सुलझाने के तंत्र का कमजोर होना: पांच दशकों से ज्यादा समय से, उपमहाद्वीप की कूटनीति 1972 के शिमला समझौते पर टिकी थी, जिसमें यह अनिवार्य था कि सभी द्विपक्षीय मतभेद, खासकर जम्मू-कश्मीर के मुद्दे, बिना किसी तीसरे पक्ष के दखल के केवल शांतिपूर्ण द्विपक्षीय बातचीत से सुलझाए जाएं। विवादित गिलगित-बाल्टिस्तान में अरबों डॉलर की चीनी सरकारी पूंजी, चीनी निर्माण कर्मियों और सुरक्षा टुकड़ियों को स्थापित करके, CPEC ने कश्मीर विवाद का अंतर्राष्ट्रीयकरण कर दिया है और उपमहाद्वीप के क्षेत्रीय समीकरण में क्षेत्र के बाहर की एक परमाणु महाशक्ति को मजबूती से शामिल कर दिया है।

2. पारंपरिक और परमाणु प्रतिरोध की सीमा का कम होना: संयुक्त सैन्य प्लेटफॉर्म, साझा टैक्टिकल डेटा-लिंक और समन्वित रडार नेटवर्क के संयुक्त विकास से सैन्य चेतावनी का समय काफी कम हो जाता है। भविष्य में उपमहाद्वीप में किसी भी संघर्ष की स्थिति में, पाकिस्तानी 'रियर ऑपरेटिंग एरिया' (पीछे के परिचालन क्षेत्रों) में चीनी इंजीनियरों, सरकारी संपत्तियों और सैन्य कर्मियों की मौजूदगी नियंत्रण रेखा के साथ भारत के पारंपरिक परिचालन विकल्पों को गंभीर रूप से सीमित कर देती है, जिससे तनाव बढ़ने की सीमा और आपसी प्रतिरोध को लेकर जटिल सवाल खड़े होते हैं।

3. भू-आर्थिक ध्रुवीकरण का बढ़ना: श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल और मालदीव सहित दक्षिण एशिया के छोटे देश तेजी से तीव्र भू-आर्थिक दबावों के बीच आ रहे हैं। जहां बीजिंग BRI के तहत बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए अपने विशाल पूंजी भंडार का लाभ उठाता है, वहीं भारत ने अपनी 'नेबरहुड फर्स्ट' (पड़ोसी पहले) नीति का विस्तार किया है। इसके तहत भारत रियायती क्रेडिट लाइन, बिजली ग्रिड लिंकेज, हाई-स्पीड पेट्रोलियम पाइपलाइन और आपातकालीन भुगतान संतुलन सहायता (जैसा कि श्रीलंका के 2022 के व्यापक आर्थिक संकट के दौरान देखा गया) प्रदान करता है ताकि पड़ोसी देशों को रणनीतिक कर्ज की निर्भरता में फंसने से बचाया जा सके।

निष्कर्ष

चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) केवल एक स्थलीय पारगमन मार्ग से कहीं अधिक है; यह एक संरचनात्मक भू-राजनीतिक पुनर्गठन का भौतिक रूप है जो चीनी मुख्य भूमि को सीधे अरब सागर के गर्म पानी से जोड़ता है। पाकिस्तान-

प्रशासित कश्मीर में विवादित संप्रभु क्षेत्र से गुजरकर, CPEC सीधे तौर पर भारत की क्षेत्रीय अखंडता का उल्लंघन करता है। साथ ही, ग्वादर में एक परिचालन नौसैनिक अड्डा स्थापित करके और बीजिंग व इस्लामाबाद के लॉजिस्टिक्स और रक्षा सिद्धांतों को समन्वित करके, यह गलियारा भारत के दो-मोर्चे वाले सैन्य संकट को और बढ़ाता है और हिंद महासागर क्षेत्र में भारत के ऐतिहासिक दबदबे को चुनौती देता है। इसके जवाब में, भारत की विदेश और रणनीतिक नीति में एक स्थायी और कई स्तरों वाला परिवर्तन आया है। पारंपरिक राजनयिक विरोध से आगे बढ़कर, नई दिल्ली ने चार स्तंभों पर आधारित एक सक्रिय 'काउंटर-बैलेंसिंग' (संतुलन बनाने वाली) रणनीति तैयार की है, दृढ़ संप्रभुता संबंधी सीमाएं, मल्टी-मॉडल काउंटर-कनेक्टिविटी, सशक्त रक्षा व्यवस्था, रणनीतिक बहुपक्षीय तालमेल। जैसे-जैसे CPEC अपने दूसरे दशक में प्रवेश कर रहा है और बलूचिस्तान में आंतरिक सुरक्षा चुनौतियों, बढ़ते संप्रभु कर्ज के संकट और बदलती भू-राजनीतिक प्राथमिकताओं से जूझ रहा है भारत की विदेश नीति का लक्ष्य स्पष्ट है, नई दिल्ली को घरेलू आर्थिक विकास की तेज गति बनाए रखनी होगी, अपने स्वदेशी रक्षा-औद्योगिक आधार को आधुनिक बनाना होगा, क्षेत्रीय कनेक्टिविटी कॉरिडोर के काम में तेजी लानी होगी, और मजबूत समुद्री गठबंधन बनाए रखने होंगे। ऐसा इसलिए ताकि दक्षिण एशिया और व्यापक इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में शक्ति का संतुलन बहुध्रुवीय, स्वतंत्र और नियमों पर आधारित बना रहे।

References

- Garlick, J. (2018). Deconstructing the China–Pakistan Economic Corridor: Pipe Dreams versus Geopolitical Realities. *Journal of Contemporary China*, 27(112), 519–533.
- Joshi, M. (2021). The China-Pakistan Economic Corridor: Strategic Implications for India. *Observer Research Foundation (ORF) Special Report No. 138*.
- Kardon, I. B. (2017). China's Maritime Silk Road Initiative and the South Asian Sea Lanes. *Naval War College Review*, 70(2), 53–69.
- Malik, A. R. (2022). The Geopolitical Landscape of CPEC: Realities, Perceptions, and Alternatives. *South Asian Studies Quarterly*, 37(1), 45–62.
- Ministry of External Affairs, Government of India. (2017). *Official Statement on the Official Launch of the Belt and Road Forum*. MEA Media Center, New Delhi.
- Pant, H. V., & Joshi, P. (2017). The China-Pakistan Economic Corridor: Security Implications for India and the Region. *ORF Strategic Studies*, 12(3), 1–28.
- Rahman, Z. U., Khan, A., Lifang, W., & Hussain, I. (2021). The Geopolitics of the CPEC and Indian Ocean: Security Implications for India. *Australian Journal of Maritime & Ocean Affairs*, 13(2), 122–138.
- Scobell, A., et al. (2020). China's Grand Strategy: Trends, Trajectories, and Long-Term Competition. RAND Corporation.
- Sidhu, W. P. S., & Mehta, P. B. (Eds.). (2019). *Shaping the Emerging World: India and the Multilateral Order*. Brookings Institution Press.
- Small, A. (2015). *The China-Pakistan Axis: Asia's New Geopolitics*. Oxford University Press, New York.
- Wolf, S. O. (2020). *The China-Pakistan Economic Corridor of the Belt and Road Initiative: Concept, Context and Assessment*. Springer International Publishing, Cham.

मिथिलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

अल्मा ग्रेस तिरके*

almatirkey1977@gmail.com

डॉ. देशबन्धु तिवारी†

dr.d.b.tiwari@gmail.com

सारांश

हिंदी कथा साहित्य पर दृष्टि दौड़ाते हैं, तब हम यह पाते हैं कि नारी विमर्श पर अनेक रचनाकारों ने अपनी लेखनी चलाई। उन सबमें मिथिलेश्वर की रचनाएँ नारी के प्रति सामाजिक सोच को नज़दीक से अवलोकन करती हैं। उसका प्रमुख कारण मिथिलेश्वर का संपूर्ण जीवन ग्रामीण परिवेश में व्यतीत हुआ है। वे भारतीय समाज के जीवन संघर्ष को करीब से देखते और जीते हैं। आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव, स्त्री-पुरुष के संबंध तथा ग्रामीण जीवन के संघर्ष की अनुभूति रोज़ की दिनचर्या की समकालीन समाज में नारी केवल करुणा या सहानुभूति का प्रतिरूप नहीं थी बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था से संघर्ष करती नज़र आती है।

सांकेतिक शब्द: स्त्री, ग्रामीण, संघर्ष, भागीदारी एवं अधिकार, कथा साहित्य, अस्मिता

परिचय

मिथिलेश्वर की कथाओं में नारी विमर्श का मतलब आधुनिक अर्थों में नारी स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं है, अपितु नारी की स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज में उसकी स्थिति, उसकी आर्थिक समृद्धि, घरेलू हिंसा, पितृसत्तात्मक समाज में उसकी स्थिति, विवाह, गरीबी, दहेज का आतंक, पुरुष की नारी के प्रति मानसिकता आदि पर चर्चा करना मुनासिब समझा है। उन्होंने यह अभिव्यक्ति किया है कि शिक्षा के अभाव में एवं आर्थिक तंगी में नारी जीवन अपनी परतंत्रता स्वीकारने में कितना विवश होती है। नारी विमर्श का अर्थ है कि स्त्री के जीवन में उसके अधिकारों, स्वतंत्रता, उसकी अस्मिता और समाज में उसका स्थान सुनिश्चित करना। उनसे जुड़े तमाम वह सवाल जो उन्हें कमजोर करती हैं पर चर्चा करते हुए अपने जीवन के तमाम निर्णयों के लिए उन्हें स्वतंत्रता प्रदान करना है।

समीक्षात्मक विश्लेषण

पुरुष सत्तात्मक इस समाज में उसकी भी भागीदारी सुनिश्चित करना नारी विमर्श का मूल उद्देश्य है। मिथिलेश्वर ने अपने कथा साहित्य में नारी विमर्श के माध्यम से जमीनी हकीकत को मुखरित किया है। उनकी कहानियों में उच्च मध्यम वर्गीय नारी समस्याओं की तुलना में ग्रामीण और निचला मध्यम वर्गीय नारी का जीवन संघर्ष बहुतायत रूप में चित्रित है। यही कारण है उनका नारी विमर्श ग्रामीण जीवन एवं ग्रामीण समाज का वास्तविक आईना बना है, जहाँ सब कुछ यथार्थ रूप परिलक्षित होता है। मिथिलेश्वर ने अपने कथा साहित्य में ग्रामीण प्राकृतिक सुंदरता, खेत-खलिहान एवं उनके सरल व्यक्तित्व की चर्चा नहीं की है, अपितु उन पर किए जाने वाले अत्याचार, शोषण एवं समाज में व्याप्त असमानता का वर्णन किया है। गाँव में छोटे किसान, खेतिहर मजदूर, आर्थिक अभाव से जूझते लोग एवं समाज द्वारा तिरस्कृत लोगों की चर्चा करते हुए नारी जीवन को अभिव्यक्ति दी है। ग्रामीण समाज में नारी की अनेक समस्याएँ जैसे घर की ज़िम्मेदारी, बच्चों का लालन-पालन, सामाजिक परंपराओं में पति और परिवार की अपेक्षाओं की पूर्ति आदि। इन सब को पूरा करने में जीवन संघर्ष की कहानी बन

* शोधार्थी, आंजनेय विश्वविद्यालय, रायपुर, छ.ग.- 493111

† शोध निर्देशक एवं प्रोफेसर, आंजनेय विश्वविद्यालय, रायपुर, छ.ग.- 493111

जाती है। उन्हें ढाँडस बंधाने वाला भी कोई नहीं होता है। उनके इन्हीं संवेदनाओं को कथाकार ने नारी विमर्श के रूप में अभिव्यक्त किया है।

कथाकार ने ग्रामीण नारियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों का वर्णन कर यह बताया है कि इनके कार्यों का न ही इन्हें कोई पारिश्रमिक मिलता है न ही परिवार द्वारा सम्मान फिर भी वे अपने दायित्व निर्वाहन में कोई कसर नहीं छोड़ती हैं। नारी घर के काम के साथ बाहर काम पर भी जाती हैं किंतु उनके द्वारा अर्जित आर्थिक सहयोग को कोई स्वतंत्र पहचान नहीं दी जाती है। पुरुषप्रधान समाज में पुरुषों की कमाई को ही सहारा माना जाता है। मिथिलेश्वर ने अपनी रचनाओं में इन्हीं अदृश्य सहयोग एवं श्रम को समाज के सामने रखा है। वे परिवार को संभालते हुए अपनी शिष्टता का परिचय देते हुए परिवार को चलाने में अहम भूमिका अदा करती हैं।

लड़कियों के जन्म से ही समाज उन्हें तिरस्कृत करते नजर आता है। उसकी शिक्षा, उसके लालन पालन में कमी सब स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पुत्री के जन्म की तत्कालीन समाज की स्थितियाँ चित्रित हैं। पहली संतान के रूप में सुधाकर पांडे को पुत्री हुई। पुत्र जन्म की तरह अलहादित तो नहीं हुए, फिर भी उन्हें सुरी हुई। निरंबसिया का नाम तो छूटा, जिस खान से कोयला आता है, उसी में हीरा भी पैदा होता है।

पुरुष प्रधान समाज में परिवार के सभी निर्णय लेने का अधिकार पुरुष के पास शोषित होता है। नारी केवल उनके निर्णयों को मानने के लिए बाध्य होती है। ऐसी स्थिति में नारियों को केवल परंपरा में चली आती नियमों को मानना होता है। उन्हें विवाह, शिक्षा, रोजगार और पारिवारिक निर्णयों को सहज स्वीकार करना पड़ता है। उनके विचार गौढ़ होते हैं। कथाकार ने नारी को इस उपेक्षा भरी जिंदगी का वर्णन कर सामाजिक व्यवस्था का विरोध किया है। सामाजिक समानता का अधिकार स्त्रियों के लिए अलग क्यों रखा जाता है

यही प्रश्न समाज को सोचने पर मजबूर करता है। समाज में नारी आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं है। वह पराश्रित रहकर जीवन यापन करती है। इसी में वह किसी भी अनैतिक कार्यों का विरोध करने में असमर्थ होती है। पैसे के अभाव में ही उनमें चारित्रिक पतन भी देखा जाता है। मिथिलेश्वर जी ने न चाहते हुए भी कहानी में परिवार को आर्थिक मदद करने, मदारी की औरतें वैश्या वृत्ति जैसे घृणित कार्यों को करती हैं। उदाहरण दृश्यित है। मदारी वाले मदारी दिखाने लगते हैं और उनकी औरतें भीख मांगने। हालांकि सभी मदारी वाले जानते हैं भीख मांगना उनकी औरतों का बहाना भर है। वो गाँव में मुल्ले फसाने जाया करती हैं। गाँव के खंडहरों में, ईख के खेतों में, अगल-बगल के बगीचों में या फिर कहीं भी चंद पैसों पर बिक जाती हैं।

इतना करने के बाद भी उनके आर्थिक सहयोग को सामाजिक सम्मान नहीं मिलता है। इस प्रकार आर्थिक शोषण होते हुए भी मौन रहती हैं। भारतीय समाज में स्त्री के विवाह को आवश्यक माना गया है। विवाह के पश्चात उनका जीवन पारिवारिक अपेक्षाओं का शिकार होती हैं। पति, ससुराल एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए अपनी जिम्मेदारी निभाने अनेक संघर्ष करना पड़ता है। इतना ही नहीं विवाह में असमान उम्र में विवाह की भी विवरता उन्हें भूलना पड़ता है। परिवार में आर्थिक तंगी या देहेज न दे पाने की स्थिति में अधिक उम्र के पुरुष से विवाह कर दी जाती है। कम उम्र में पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन स्त्री के जीवन को अभिशापित करता है। वह कमजोर और परिपक्वता के अभाव में काम के बोझ तले दबकर यह मर जाती हैं। पति के मृत्यु के पश्चात परिवार के जिम्मेदारी निभाना भी उसके विवशता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को वैधव्य जीवन की बाध्यता होती है। वह दूसरी शादी नहीं कर सकती, जबकि पुरुषों को यह अधिकार होता है कि वह दूसरी शादी कर पुनः जीवन शुरू करें। इस लैंगिक असमानता का मिथिलेश्वर ने विरोध किया है। इतना ही नहीं स्त्री को दूसरी शादी करने पर डराया धमकाया जाता है। उन्हें अनेक भय दिखाया जाता है। महिलाओं की दूसरी शादी पर घर देवता, पितर के नाराज होने जैसी रूढ़ि परक बातें की जाती हैं। दृश्यता है, मरे हुए पति की आत्मा पत्नी के इर्द-गिर्द भटकती रहती है। इसी विधवाओं को सादगी के साथ रहना पड़ता है। इसी से उसके मरे पति की आत्मा को भी शांति मिलती है। जिस दिन विधवा शादी कर लेती है, जिस दिन विधवा शादी कर लेती है, उस दिन उसके मरे हुए पति की आत्मा प्रेत यौनी में बदलकर उसके घर में मंडराने लगती है और घर में भूत-प्रेत का निवास हो जाता है।

स्त्री की अस्मिता नारी विमर्श का सबसे अहम पक्ष है। मृदेश्वर की कथा में नारी पात्र केवल माँ, बहन, बेटी की भूमिका में नहीं व्यक्त हुई है, वरन वे अपने सुख-दुख के लिए स्वतंत्र अस्तित्व की खोज में व्याकुल और समाज में संघर्षरत हैं।

वह अपने साहस, विषम परिस्थितियों में भी अपना साहस बनाए रखती हैं। वे गरीबी और पुरुषवादी मानसिकता का विरोध कर परिवार संभालती हैं। इससे यह साबित होता है कि नारी कभी शक्तिहीन नहीं है। वह काल एवं समय के अनुसार अपने आप को ढालने में समर्थ होती है। अपनी सजगता और चेतन प्रवृत्ति को सदैव बनाए रखते हुए अपनी सक्रिय भूमिका अदा करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में नारियों का दायित्व श्रम की प्राधान्यता से शुरू होकर परिवार को शिक्षित बनाने तक कृत संकल्प जान पड़ती हैं। मिथिलेश्वर ने अपनी कथाओं में श्रमशील नारियों को समाज में स्थान दिलाने से लेकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने तक का चित्रण किया है। यह सत्य है कि समाज में नारी केवल पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं निभाती, वह सामाजिक और आर्थिक सहयोग परिवार को सन्मार्ग पर ले जाती है। मिथिलेश्वर जी ने अपनी रचनाओं में नारी शोषण के अनेकानेक रूप चित्रित किए हैं, पुरुषवादी मानसिकता से लेकर पारिवारिक सामाजिक भेदभाव का भी शिकार व्यक्त करते हैं। शिक्षा का अभाव या लड़कियों के पढ़ाने में पाबंदी जन मानस की ओछी विचारधारा को प्रदर्शित करता है। निर्णय लेने की स्वतंत्रता का अभाव जहाँ परिवार को एक कुशल और ज्ञानवर्धक सोच से वंचित करता है। रूढ़ियों के चलते सामाजिक दबाव स्वाभाविक रूप से लक्षित होता है। विवाह संबंधी असमानता समाज के लिए अभिशापित है।

उपसंहार

मिथिलेश्वर का कथा संसार निम्न-मध्यम वर्गीय नारियों के आसपास ही घूमता है क्योंकि संपन्न और गरीब नारियों की समस्याओं में अंतर होता है। वह व्यक्त करते हैं कि सामाजिक रूढ़ियाँ नारी के लिए ही क्यों बनी होती हैं। मिथिलेश्वर मातृत्व के उस रूप को भी व्यक्त किया है जहाँ त्याग और बलिदान का मिसाल कायम करते हुए नारी अपना जीवन जीती है परंतु वहीं बच्चे बड़े होकर विवाह पश्चात बीवी की बात मानकर बुढ़ापे में उन्हें साथ रखने से मना कर देते हैं। कथाकार ने धारी रमश पर नारी की पीड़ा को मूलतः मानवीय दृष्टिकोण से देखा है। उनकी रचनाओं में नारी के प्रति संवेदना का भाव यथार्थ रूप से विश्लेषित है। निष्कर्ष स्वरूप यह कहना लाज़मी होगा कि मिथिलेश्वर का कथा साहित्य में नारी की पीड़ा के साथ उनके सामाजिक सम्मान की पैरवी करता है।

संदर्भ

- मिथिलेश्वर. (1980). दूसरा नरक. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (1994). कथा समय. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (1996). कथा समय: स्त्री विमर्श विशेषांक. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (1998). कथा समय: ग्रामीण स्त्री जीवन. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2000). समय और समाज. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2002). कथा समय: स्त्री संघर्ष. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2004). कथा समय: स्त्री चेतना. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2006). कथा समय: स्त्री जीवन की कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2008). समय का दर्द. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2010). कथा समय: स्त्री विमर्श और समाज. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2012). समय और स्त्री. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2014). कथा समय: स्त्री जीवन की चुनौतियाँ. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2016). समय और स्त्री संघर्ष. राजकमल प्रकाशन.
- मिथिलेश्वर. (2018). कथा समय: स्त्री विमर्श विशेषांक. राजकमल प्रकाशन.

सामाजिक न्याय, शिक्षा और स्वतंत्रता संग्राम में ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस की भूमिका: बिहार के विशेष संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन (1920ई.-1947ई.)

मो. शमीम (Md. Shamim)*

msalamcpr@gmail.com

शोध सार (Abstract)

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास-लेखन में औपनिवेशिक मुस्लिम राजनीति को बहुधा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अलगाववादी विमर्श अथवा सर सैयद की अलीगढ़ परंपरा तक सीमित करके देखा गया है। इस वर्चस्ववादी इतिहास-दृष्टि के कारण उन करोड़ों श्रमजीवी, दस्तकार और सामाजिक रूप से उपेक्षित पसमांदा मुसलमानों की ऐतिहासिक भूमिका हाशिए पर चली गई, जिन्होंने दोहरे मोर्चे पर संघर्ष किया—एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता के विरुद्ध और दूसरी ओर मुस्लिम समाज की आंतरिक अशराफियत (सामंती-अभिजात्यवाद) के विरुद्ध।

प्रस्तुत शोध पत्र 20वीं सदी के पूर्वार्ध (1920–1947) में बिहार के सामाजिक-राजनीतिक धरातल पर उभरी ‘ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस’ तथा इसके शीर्ष रणनीतिकार अब्दुल कय्यूम अंसारी (1905–1973) के योगदान का एक गहन, विश्लेषणात्मक एवं दस्तावेजी अध्ययन है। यह अध्ययन पड़ताल करता है कि कैसे बिहार के हथकरघा बुनकरों (अंसारियों) ने संगठित होकर अपनी सामाजिक पहचान और आत्मसम्मान को पुनः प्राप्त किया, आधुनिक व तकनीकी शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता का साधन बनाया, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ साझा राष्ट्रीयता की धारा को मजबूत किया और 1940 के दशक में मोहम्मद अली जिन्ना के ‘द्वि-राष्ट्र सिद्धांत’ के विरुद्ध ऐतिहासिक प्रतिरोध दर्ज कराया।

बीज शब्द (Keywords):

ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस, अब्दुल कय्यूम अंसारी, सामाजिक न्याय, पसमांदा चेतना, अशराफ बनाम अजलफ, हथकरघा संकट, आधुनिक शिक्षा, साझा राष्ट्रीयता (मुत्ताहिदा कौमियत), द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का प्रतिरोध।

प्रस्तावना:

भारतीय उपमहाद्वीप के आधुनिक इतिहास का अध्ययन करते समय औपनिवेशिक मुस्लिम समाज को अक्सर एक समरूप (Homogeneous) इकाई मान लेने की गंभीर भूल की जाती रही है। ब्रिटिश प्रशासकों और साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने अपनी ‘बांटो और राज करो’ की नीति के तहत मुसलमानों को एक अखंड राजनीतिक समुदाय के रूप में चित्रित किया। इसके समानांतर, राष्ट्रीय आंदोलन के पारंपरिक इतिहास-लेखन में भी मुस्लिम विमर्श को केवल जमींदारों, नवाबों और अंग्रेजीदां संभ्रांत वर्ग (Elite class) तक सीमित रखा गया। किंतु ऐतिहासिक वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न थी। भारतीय मुसलमानों का एक बहुत बड़ा हिस्सा—जो कुल मुस्लिम आबादी का 80 से 85 प्रतिशत था—श्रमजीवी, किसान और दस्तकार (पसमांदा/अजलफ) से बना था। बिहार के संदर्भ में, यह वर्ग सदियों से हथकरघा बुनाई, कताई, रंगाई और कृषि कार्यों से जुड़ा था। 20वीं सदी के आरंभ में जब देश में स्वतंत्रता की चेतना उभर रही थी, तब बिहार के इन कामगारों ने अनुभव किया कि उनकी लड़ाई केवल गोरों की हुकूमत से नहीं है, बल्कि अपनी ही कौम के भीतर बैठे उन सामंती तत्वों से भी है जो धर्म के नाम पर उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण कर रहे थे। इसी दोहरी मुक्ति की आकांक्षा से ‘मोमिन आंदोलन’ का बीजारोपण हुआ।

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

औपनिवेशिक बिहार में हथकरघा उद्योग का विध्वंस एवं अशराफियत का दोहरा दबाव-

औपनिवेशिक काल में बिहार के सामाजिक-आर्थिक इतिहास का सर्वाधिक त्रासद अध्याय पारंपरिक कपड़ा उद्योग का विनाश था। 18वीं सदी के अंत तक बिहार सूती और रेशमी वस्त्रों का एक अंतरराष्ट्रीय केंद्र था। शाहाबाद (सासाराम, आरा, डुमरांव, बक्सर), पटना प्रमंडल (बिहारशरीफ, फतुहा), गया (मानपुर), भागलपुर और मुंगेर में लाखों हाथ करघे दिन-रात चलते थे।

ब्रिटिश मुक्त-व्यापार नीति और आर्थिक विखंडन :

19वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश क्राउन की व्यापारिक नीतियों ने भारतीय बाजार को मैनचेस्टर और लंकाशायर के मिल-निर्मित सूती कपड़ों से पाट दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारतीय कच्चे माल (कपास) के निर्यात पर छूट और तैयार विदेशी कपड़े पर आयात शुल्क समाप्त करने से स्थानीय हथकरघा उद्योग पूरी तरह ध्वस्त हो गया। स्थानीय सूत कटाई का काम ठप होने से बुनकर पूरी तरह महाजनों और मिल-सूत के आयातकों पर निर्भर हो गए। महाजनी व्यवस्था (दादनी प्रथा) ने बुनकरों को भयानक ऋण-जाल में फंसा दिया। वे जो कपड़ा बुनते, उसका मूल्य महाजन तय करता था। परिणामतः लाखों कारीगर भूमिहीन कृषि मजदूरों में तब्दील हो गए या उन्हें कलकत्ता, असम के चाय बागानों और बर्मा में कुली के रूप में प्रवास करने पर विवश होना पड़ा।¹

सामाजिक स्तरीकरण: अशराफ बनाम अजलफ और अरजाल - आर्थिक तबाही के साथ-साथ पसमांदा समाज एक गहरी सामाजिक प्रताड़ना का भी शिकार था। मुस्लिम समाज का आंतरिक ढांचा तीन स्तरों में विभाजित था।

अशराफ (कुलीन) - खुद को विदेशी मूल (अरब, फारस, तुर्क, अफगान) से जोड़ने वाले सैयद, शेख, मुगल और पठान, जो प्रायः जमींदार, ताल्लुकेदार या उच्च पदों पर आसीन थे।

अजलफ (व्यवसायिक/पसमांदा) - स्थानीय धर्मांतरित श्रमजीवी जातियां—जैसे मोमिन/अंसारी (बुनकर), मंसूरी (धुनिया), राईन (कुंजड़ा), इदरीसी (दर्जी), कुरैशी (कसाई), सैफी (लोहार/बढ़ई) आदि।

अरजाल (अति-दलित): हलालखोर (सफाईकर्मी), भंगी, धोबी और नट समुदाय, जो अस्पृश्यता जैसी सामाजिक वर्जनाओं के शिकार थे।

सामंती संस्कृति में 'जुलाहा' शब्द को केवल पेशे का सूचक नहीं, बल्कि मूर्खता, फूहड़ता और सामाजिक हीनता का मुहावरा बना दिया गया था। अशराफ तबका इन कारीगरों के साथ सामाजिक और वैवाहिक दूरी बनाए रखता था और मस्जिदों तथा कब्रिस्तानों तक में भेदभाव के उदाहरण मिलते थे।²

संभ्रांत राजनीति का एकाधिकार -

1906 में गठित अखिल भारतीय मुस्लिम लीग आरंभिक तीन दशकों तक पूरी तरह से सामंतों, नवाबों और खान बहादुरों का जमावड़ा थी। उनके राजनीतिक प्रस्ताव केवल सरकारी नौकरियों में कोटा, जमींदारी अधिकारों की सुरक्षा और पृथक निर्वाचन मंडल (Separate Electorate) तक सीमित थे। 80% से अधिक दस्तकारों की भुखमरी, शिक्षा और नागरिक अधिकारों पर इन संभ्रांत नेताओं ने चुप्पी साध रखी थी।³

मोमिन आंदोलन का संगठनात्मक ढांचा: 'जुलाहे' से 'मोमिन' बनने की यात्रा

1920 के दशक में बिहार के प्रबुद्ध बुनकर नौजवानों के भीतर यह आत्म-चेतना जागी कि जब तक वे संगठित होकर स्वयं अपनी आवाज नहीं उठाएंगे, तब तक उनकी सामाजिक व आर्थिक मुक्ति संभव नहीं है। आंदोलन का पहला चरण मनोवैज्ञानिक गुलामी और हीनता-बोध का उन्मूलन था। औपनिवेशिक दस्तावेजों और सामंती समाज द्वारा थोपे गए अपमानजनक शब्द 'जुलाहा' को आधिकारिक तौर पर अस्वीकार किया गया। इसके स्थान पर पवित्र कुरानिक शब्द 'मोमिन' (जिसका अर्थ 'सच्चा विश्वासी' या 'श्रमसाधक' है) और ऐतिहासिक संज्ञा 'अंसारी' (पैगंबर मुहम्मद के मदीना के मददगार साथी) को अपनाया गया। इस नामकरण ने दस्तकारों को अपने श्रम पर गर्व करने का आधार दिया। यह संदेश दिया गया कि कपड़ा बुनकर समाज का तन ढंकने वाला कारीगर किसी जमींदार या नवाब से सामाजिक या आध्यात्मिक दृष्टि से कमतर नहीं है।⁴

1920 के दशक के मध्य में कोलकाता में 'जमीयत-उल-मोमिनीन' और बाद में 'ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस' का गठन हुआ। किंतु इस आंदोलन का वास्तविक राजनीतिक और वैचारिक केंद्र बिहार बना।

अब्दुल कय्यूम अंसारी (1905–1973): शाहाबाद (देहरी-ऑन-सोन) के एक प्रबुद्ध, समर्पित और राष्ट्रवादी नौजवान अब्दुल कय्यूम अंसारी इस आंदोलन के निर्विवाद नेता बनकर उभरे। उन्होंने युवावस्था में ही असहयोग आंदोलन में भाग लिया था और वे मौलाना आज़ाद तथा महात्मा गांधी के राष्ट्रीय विचारों से गहरे प्रभावित थे।

प्रमुख सहयोगी: मौलाना लतीफुर रहमान (गया), मौलाना असीम बिहारी (बिहारशरीफ), जाहिद हुसैन और मौलाना उस्मान गनी जैसे नेताओं ने बिहार के गांवों, कस्बों और मोहल्लों में घूम-घूमकर शाखाएं स्थापित कीं। शाहाबाद, पटना, गया, भागलपुर, मुंगेर, दरभंगा और पूर्णिया में मोमिन पंचायतों को आधुनिक संगठनात्मक रूप दिया गया।⁵

आंतरिक समाज-सुधार अभियान। मोमिन कॉन्फ्रेंस ने केवल बाहर अधिकार नहीं मांगे, बल्कि आंतरिक समाज-सुधार पर भी कड़ा रुख अपनाया। शादियों में भारी मेहर, फिजूलखर्ची और कर्ज लेकर दिए जाने वाले भोजों (दवात) पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की आचार संहिता लागू की गई। नशाखोरी, जुआ और अंधविश्वासों के उन्मूलन के लिए विशेष निगरानी समितियां बनाई गईं। दस्तकारों को यह सिखाया गया कि बचत कैसे की जाए ताकि वे महाजनों के ब्याज के कुचक्र से मुक्त हो सकें।⁶

शैक्षणिक पुनर्जागरण: आधुनिक ज्ञान, तकनीकी कौशल और मदरसा सुधार-

मोमिन नेतृत्व की यह स्पष्ट मान्यता थी कि अशिक्षा ही पसमांदा समाज के सामाजिक पिछड़ेपन और आर्थिक शोषण की मूल जड़ है। अशराफ तबके ने जहां अलीगढ़ और पश्चिमी विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर आधुनिक प्रशासन में स्थान बना लिया था, वहीं मोमिन समुदाय पूरी तरह निरक्षर था।

मोमिन कॉन्फ्रेंस ने पारंपरिक मदरसों के स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन की मांग उठाई। उन्होंने प्रस्ताव पारित कर कहा कि मदरसों में केवल धार्मिक ग्रंथों की रटत विद्या पर्याप्त नहीं है। वहां व्यावहारिक गणित, सामान्य विज्ञान, इतिहास, भूगोल और अंग्रेजी भाषा का शिक्षण अनिवार्य किया जाए। उनका तर्क था कि आधुनिक शिक्षा के बिना पसमांदा नौजवान सरकारी नौकरियों और व्यापारिक जगत में अपनी जगह नहीं बना सकते।⁷

अब्दुल कय्यूम अंसारी ने तत्कालीन ब्रिटिश बिहार सरकार के समक्ष यह तर्क रखा कि बुनकरों को केवल पारंपरिक ज्ञान के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। उन्होंने आधुनिक डाइंग (रंगाई), उन्नत कताई, जैक्वार्ड लूम और नए डिजाइनों के प्रशिक्षण के लिए प्रांतीय स्तर पर 'बुनकर तकनीकी संस्थान' (Weaving Schools & Institutes) खोलने की मांग की। सरकार से यह भी मांग की गई कि हथकरघा उद्योग को आधुनिक बिजली-चालित लूम (Powerlooms) में बदलने के लिए आसान किस्तों पर ऋण और तकनीकी मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जाए।⁸

जो बच्चे और युवा दिनभर करघों पर काम करते थे, उनके लिए बिहार के विभिन्न कस्बों में शाम की पाठशालाएं (Night Schools) चलाई गईं। 'मोमिन वेलफेयर फंड' और 'बैतुल माल' की तर्ज पर स्थानीय कोष स्थापित किए गए, जिनसे मेधावी किंतु निर्धन छात्रों की स्कूल फीस, किताबें और रहने-खाने का प्रबंध किया जाता था। इस शैक्षणिक प्रयास ने पसमांदा समाज में पहली बार एक नई पढ़ी-लिखी मध्यवर्गीय पीढ़ी को जन्म दिया।⁹

स्वाधीनता संग्राम में सहभागिता:

मोमिन आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसने अपने सामाजिक उत्थान के संघर्ष को कभी भी भारत की स्वाधीनता की मुख्यधारा से अलग नहीं माना। उन्होंने यह माना कि विदेशी हुकूमत की समाप्ति के बिना देश के दस्तकारों को वास्तविक आर्थिक न्याय नहीं मिल सकता।

असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन:

1920 के असहयोग आंदोलन में जब महात्मा गांधी ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और चरखा-खादी के प्रचार का बिगुल फूका, तो बिहार के मोमिन बुनकरों ने इसे एक राष्ट्रीय और आर्थिक वरदान के रूप में देखा। उनके लिए विदेशी कपड़े का जलना केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध नहीं, बल्कि अपने करघों को नया जीवन देना था। 1930 के नमक सत्याग्रह

और सविनय अवज्ञा आंदोलन में अब्दुल कय्यूम अंसारी और मौलाना लतीफुर रहमान के आह्वान पर शाहाबाद, पटना और गया के सैकड़ों मोमिन सत्याग्रहियों ने विदेशी कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग की, लाठियां खाईं और जेल गए।

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन:

8 अगस्त 1942 को जब मुंबई में 'करो या मरो' का नारा गूंजा और कांग्रेस के शीर्ष नेताओं को जेल में डाल दिया गया, तब मोमिन कॉन्फ्रेंस की बिहार प्रांतीय समिति ने तत्काल बैठक कर आधिकारिक तौर पर आंदोलन को पूर्ण समर्थन दिया। बिहार के ग्रामीण अंचलों में मोमिन नौजवानों ने संचार व्यवस्था को ठप करने, रेल पटरियां उखाड़ने और सरकारी थानों पर तिरंगा फहराने में अग्रणी भूमिका निभाई। शाहाबाद और मुंगेर के क्षेत्रों में ब्रिटिश सेना और पुलिस के दमन का शिकार होकर कई मोमिन स्वतंत्रता सेनानी शहीद हुए और दर्जनों की संपत्तियां कुर्क कर ली गईं। औपनिवेशिक पुलिस रिपोर्टों में मोमिन कार्यकर्ताओं की इस उग्र राष्ट्रवादी सक्रियता का विस्तृत विवरण दर्ज है।¹¹

द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के विरुद्ध वैचारिक, संगठनात्मक प्रतिरोध

23 मार्च 1940 को जब मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने लाहौर में 'पाकिस्तान प्रस्ताव' पारित किया, तब पूरे भारत में इसके विरुद्ध सबसे प्रखर, तार्किक और जन-आधारित प्रतिरोध बिहार के मोमिन आंदोलन ने ही दर्ज किया।

दिल्ली की आज़ाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस और लाहौर प्रस्ताव का खंडन (अप्रैल 1940):

लाहौर प्रस्ताव के ठीक एक माह बाद (27-30 अप्रैल 1940) दिल्ली के क्वीन पार्क में राष्ट्रवादी मुसलमानों का महासम्मेलन हुआ, जिसे 'ऑल इंडिया आज़ाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस' कहा गया। इसमें मोमिन कॉन्फ्रेंस, जमीयत उलेमा-ए-हिंद, मजलिस-ए-अहरार और खुदाई खिदमतगार शामिल हुए। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में मोमिन कॉन्फ्रेंस के प्रतिनिधि के रूप में अब्दुल कय्यूम अंसारी ने देश के लगभग 75,000 प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए कहा:

“भारत हमारा वतन है और हम इसी मिट्टी की पैदाइश हैं। जिन्ना साहब जिन मुसलमानों के नाम पर मुल्क के बंटवारे का सौदा कर रहे हैं, उन आठ करोड़ मेहनतकश, बुनकर और दस्तकार मुसलमानों ने उन्हें कभी अपना वकील (प्रतिनिधि) नहीं चुना। धर्म बदलने से किसी का भूगोल, नस्ल और मातृभूमि नहीं बदल जाती।”¹²

सम्मेलन में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर घोषित किया गया कि भारत का विभाजन देश के संपूर्ण जनमानस, विशेषकर मुसलमानों के भविष्य के लिए आत्मघाती होगा।

जिन्ना के 'सोल स्पोक्समैन' (Sole Spokesman) के दावे की सांख्यिकीय पोल (1940-1944):

जब ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज सम्मेलनों और युद्ध वार्ताओं में केवल मुस्लिम लीग को ही भारतीय मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि मानना शुरू किया, तब मोमिन कॉन्फ्रेंस ने वायसराय को सिलसिलेवार ज्ञापन (Memoranda) भेजे। अब्दुल कय्यूम अंसारी साहब ने सांख्यिकीय आंकड़ों के साथ सिद्ध किया कि भारत के कुल 9 करोड़ मुसलमानों में से अकेले 4.5 करोड़ मोमिन (बुनकर) हैं, और अन्य दस्तकार बिरादरियों (धुनिया, राईन, हज्जाम, कुरैशी) को मिलाकर पसमांदा मुसलमानों की संख्या कुल आबादी का 80% से अधिक है। उन्होंने लिखा कि मुस्लिम लीग नवाबों, सरमाएदारों (पूंजीपतियों) और खान बहादुरों का संगठन है, जो कभी भी एक गरीब बुनकर या किसान का प्रतिनिधि नहीं हो सकता। सितंबर 1944 में जिन्ना-गांधी वार्ता के समय भी अंसारी साहब ने महात्मा गांधी को पत्र लिखकर आगाह किया कि लीग की संप्रदायवादी मांगों को समूचे मुस्लिम समुदाय की आवाज न समझा जाए।¹³

शिमला सम्मेलन (1945) में लीग के वीटो का विरोध:

1945 के शिमला सम्मेलन में जब लॉर्ड वेवेल ने वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में सभी मुस्लिम सदस्यों को लीग द्वारा मनोनीत करने की जिन्ना की मांग पर विचार किया, तब मोमिन कॉन्फ्रेंस ने पटना में आपात अधिवेशन बुलाया। अधिवेशन में कड़े शब्दों में निंदा प्रस्ताव पारित किया गया कि ब्रिटिश सरकार की यह नीति 'बांटो और राज करो' का विस्तार है और श्रमजीवी मुसलमानों के स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व को नजरअंदाज करने वाली किसी भी अंतरिम परिषद को स्वीकार नहीं किया जाएगा।¹⁴

1946 का प्रांतीय चुनाव और 'सीमित मताधिकार' (Limited Franchise) का सच:

साम्राज्यवादी इतिहासकार यह कहकर पेश करते हैं कि अधिकांश मुसलमानों ने पाकिस्तान के पक्ष में वोट दिया था। किंतु मोमिन कॉन्फ्रेंस के दस्तावेजों ने इस दावे के पीछे की संरचनात्मक धांधली को उजागर किया।

सीमित मताधिकार (1935 एक्ट): भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत वोट देने का अधिकार केवल उन्हीं को था जो जमीन के मालिक थे, भारी टैक्स देते थे या जिनके पास उच्च शैक्षणिक उपाधि थी। 90% कामगारों का वोट से वंचित होना: इस औपनिवेशिक कानून के कारण पूरे देश में केवल 10 से 12 प्रतिशत संभ्रांत लोग ही वोटर थे। बिहार के 90% गरीब मोमिन, किसान और दस्तकार मतदाता सूची में शामिल ही नहीं थे।¹⁵

चुनावी जीत: इसके बावजूद, सीमित संसाधनों और लीग के भीषण सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के बीच मोमिन कॉन्फ्रेंस ने कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ा। अब्दुल कय्यूम अंसारी और मौलाना लतीफुर रहमान सहित मोमिन नेताओं ने मुस्लिम लीग के प्रत्याशियों को हराकर बिहार विधानसभा में जीत दर्ज की। इन परिणामों ने साबित किया कि जहां भी आम जनता को वोट का थोड़ा अवसर मिला, वहां उन्होंने द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को नकार दिया।¹⁶

1946 के सांप्रदायिक दंगे और 'हिजरत' (पलायन) का पूर्ण बहिष्कार:

अक्टूबर-नवंबर 1946 में बिहार (पटना, मुंगेर, छपरा, भागलपुर) में भड़के भीषण दंगों के समय मुस्लिम लीग ने इसे राजनीतिक हथियार बनाकर मुसलमानों को पाकिस्तान जाने (हिजरत करने) के लिए भड़काया। अब्दुल कय्यूम अंसारी ने अपनी जान जोखिम में डालकर दंगाग्रस्त इलाकों का दौरा किया, राहत शिविर लगाए और गांधीजी के साथ मिलकर हिंदू-मुस्लिम शांति कमेटियां बनाईं।¹⁷ मोमिन कॉन्फ्रेंस ने गांव-गांव में अपील जारी की- “यह वतन हमारा है। हमारे पूर्वजों की कब्रें यहीं हैं और हमारे करघे इसी मिट्टी से जुड़े हैं। हम अपने ही मुल्क में शरणार्थी बनने के बजाय यहीं रहकर अपने लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए लड़ेंगे।” यही ऐतिहासिक कारण था कि विभाजन के समय बिहार का बहुसंख्यक पसमांदा और बुनकर समाज अपनी मिट्टी पर अडिग खड़ा रहा और उसने पाकिस्तान जाने से साफ इनकार कर दिया।¹⁸

बिहार की अंतरिम सरकार (1946) और नीतिगत हस्तक्षेप:

1946 में जब डॉ. श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में बिहार में अंतरिम सरकार बनी, तो अब्दुल कय्यूम अंसारी को कैबिनेट मंत्री बनाया गया। सत्ता में आकर उन्होंने दंगा पीड़ितों के पुनर्वास के लिए युद्धस्तर पर कार्य किया। हथकरघा बुनकरों के लिए सूत नियंत्रण प्रणाली को समाप्त कर सीधे बुनकरों को सूत उपलब्ध कराने की व्यवस्था की। बुनकर सहकारी समितियों का जाल बिछाया, जिससे स्वतंत्रता के बाद बिहार में हथकरघा क्रांति की नींव पड़ी।

निष्कर्ष :

मोमिन कॉन्फ्रेंस और अब्दुल कय्यूम अंसारी के ऐतिहासिक योगदान का समग्र मूल्यांकन यह सिद्ध करता है कि स्वाधीनता संग्राम में बिहार के मुसलमानों की भूमिका केवल भावनात्मक या प्रतिक्रियावादी नहीं थी, बल्कि वह गहरे सामाजिक-आर्थिक और लोकतांत्रिक दर्शन पर आधारित था। मोमिन आंदोलन ने ऐतिहासिक रूप से यह साबित किया कि धार्मिक आस्था और भारतीय राष्ट्रवाद परस्पर विरोधी नहीं हैं। बिहार के दस्तकार मुसलमानों ने अपनी पहचान को देश की साझी संस्कृति (गंगा-जमुनी तहजीब) और अखंड भारत के संकल्प के साथ मजबूती से जोड़े रखा।

इस आंदोलन ने यह दृष्टि दी कि आजादी का अर्थ केवल अंग्रेजों का जाना नहीं है; जब तक समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े कामगार, बुनकर और किसान को सामाजिक समानता, शिक्षा और आर्थिक सुरक्षा नहीं मिलती, तब तक स्वाधीनता अधूरी है। समकालीन भारत में सामाजिक न्याय, पिछड़े मुसलमानों (ओबीसी) के संवैधानिक अधिकारों और लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की जो धारा आज मुखर है, उसकी वैचारिक एवं आंदोलनात्मक नींव 1920 से 1947 के बीच बिहार की इसी धरती पर अब्दुल कय्यूम अंसारी और ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस द्वारा रखी गई थी।

संदर्भ :

1. दत्ता, काली किंकर. हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, खंड 1, बिहार सरकार मुद्रणालय, पटना, 1957, पृ. 89-90.
2. अहमद, इम्तियाज. कास्ट एंड सोशल स्ट्रेटिफिकेशन अमंग मुस्लिम्स इन इंडिया, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1973, पृ. 114.
3. कबीर, हुमायूं. मुस्लिम पॉलिटिक्स इन बंगाल एंड बिहार (1937-1947), फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कोलकाता, 1969, पृ. 67.
4. बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना: पॉलिटिकल (स्पेशल) डिपार्टमेंट फाइल्स, 1928, फाइल संख्या 19/1928.
5. अंसारी, हसन निशात. “द मोमिन-कांग्रेस रिलेशन्स (1937-1947): ए सोशियो-हिस्टोरिकल एनालिसिस”. जर्नल ऑफ द बिहार रिसर्च सोसाइटी (JBRS), पटना, 1989, पृ. 153-156.
6. अनवर, अली. मसावात की जंग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 65.
7. ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस, प्रोसीडिंग्स ऑफ बिहार प्रांतीय सम्मेलन, 1938, पटना अभिलेखागार अभिलेख, पृ. 12-14.
8. बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना: एजुकेशन डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स, फाइल संख्या 4बी/1939.
9. अंसारी, हसन निशात, पूर्वोक्त, पृ. 61-62.
10. दत्ता, काली किंकर, पूर्वोक्त, खंड 2, पृ. 148.
11. बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना: पॉलिटिकल (स्पेशल) डिपार्टमेंट फाइल्स, 1942, फाइल संख्या 81/1942.
12. “दिल्ली आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस की विशेष रिपोर्ट”, द सर्चलाइट, पटना, 30 अप्रैल 1940.
13. जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैन: जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ. 107.
14. ऑल इंडिया मोमिन कॉन्फ्रेंस, प्रोसीडिंग्स ऑफ पटना स्पेशल सेशन, 1945, बिहार राज्य अभिलेखागार, पृ. 22-26.
15. भारत शासन अधिनियम 1935, फ्रेंचाइज कमेटी रिपोर्ट एवं बिहार इलेक्टोरल रोल्स 1946, ब्रिटिश पार्लियामेंट्री पेपर्स.
16. अंसारी, हसन निशात, पूर्वोक्त, पृ. 82-83.
17. दत्ता, काली किंकर, पूर्वोक्त, खंड 3, पृ. 325.
18. अनवर, अली. पूर्वोक्त, पृ. 76.

शमशेर बहादुर सिंह के गद्य का स्वरूप और वैशिष्ट्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन

भानप्रताप साहू*

bhanpratapsahu1981@gmail.com

डॉ. देशबन्धु तिवारी†

dr.d.b.tiwari@gmail.com

सारांश

शमशेर बहादुर सिंह हिंदी साहित्य में मुख्यतः कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं, किंतु उनका गद्य भी उनकी रचनात्मक प्रतिभा, वैचारिक गहराई और संवेदनशील व्यक्तित्व को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके गद्य में कविता जैसी भावात्मकता, कलात्मकता और बिंबात्मकता के साथ-साथ गंभीर चिंतन, तार्किकता और सामाजिक सरोकार दिखाई देते हैं। उन्होंने आलोचना, संस्मरण, डायरी, रेखाचित्र और अन्य गद्य-विधाओं के माध्यम से साहित्य, कला, समाज तथा अपने समकालीन रचनाकारों पर विचार किया है। उनका गद्य उनकी आत्माभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। वे किसी रचना या रचनाकार का मूल्यांकन केवल बाहरी दृष्टि से नहीं करते, बल्कि उसकी संवेदना, रचनात्मक प्रक्रिया और अंतर्वस्तु के भीतर प्रवेश करके उसे समझने का प्रयास करते हैं। उनके आलोचनात्मक लेखन में गहन अध्ययन, सूक्ष्म विश्लेषण और स्वतंत्र चिंतन का समन्वय मिलता है। प्रकृति, मनुष्य, वातावरण और अनुभूतियों को वे अत्यंत सजीव तथा कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनकी डायरियों और रेखाचित्रों में भी कवि की दृष्टि सक्रिय रहती है, जिसके कारण उनका गद्य कई बार कविता के निकट दिखाई देता है। भाषा में सहजता, आत्मीयता और स्वाभाविकता के साथ-साथ विचारों की गंभीरता भी बनी रहती है। उन्होंने अपने समकालीन तथा प्रिय कवियों पर लिखते हुए तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। गालिब, निराला, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और पाब्लो नेरूदा जैसे रचनाकारों के संदर्भ उनके व्यापक साहित्यिक अध्ययन और विश्वदृष्टि को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार उनका गद्य हिंदी साहित्य की परंपरा, आधुनिकता, कला, विचार और सामाजिक यथार्थ के बीच संवाद स्थापित करता है।

समग्रतः शमशेर बहादुर सिंह का गद्य उनकी कवि-चेतना और विचारशील व्यक्तित्व का विस्तार है। उसमें संवेदना और विचार, कला और यथार्थ, आत्मानुभूति और सामाजिक अनुभूति का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। उनका गद्य हिंदी साहित्य में इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह पाठक को केवल किसी विषय की जानकारी नहीं देता, बल्कि उसे गहरे अनुभव और चिंतन की प्रक्रिया से भी जोड़ता है।

सांकेतिक शब्द :

संवेदना, काव्यात्मकता, चिंतन, यथार्थ, चेतना, बिंबात्मकता, आत्माभिव्यक्ति, विश्लेषण, आलोचना, अनुभव, मानवीयता, सौंदर्यबोध, आधुनिकता, कला-दृष्टि, आत्मीयता, भाषा-संवेदना, दृष्टि, विचारशीलता, सामाजिक सरोकार और संवाद।

प्रस्तावना

हिन्दी गद्य की परंपरा में ऐसे अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने कविता के साथ-साथ सशक्त और कलात्मक गद्य भी लिखा। शमशेर बहादुर सिंह इसी परंपरा के विशिष्ट रचनाकार हैं। कवि होने के साथ-साथ समर्थ गद्यकार भी हैं। उनके गद्य में उनकी काव्यात्मक संवेदना, वैचारिक सजगता और जीवनानुभव का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने आलोचना,

* शोधार्थी, आंजनेय विश्वविद्यालय, रायपुर, छ.ग.- 493111

† शोध निर्देशक एवं प्रोफेसर, आंजनेय विश्वविद्यालय, रायपुर, छ.ग.- 493111

संस्मरण, डायरी, रेखाचित्र और अन्य गद्य-विधाओं के माध्यम से अपने समय, समाज, साहित्य और मनुष्य के विविध पक्षों को अभिव्यक्ति दी। उनका गद्य केवल विचारों की प्रस्तुति नहीं, बल्कि अनुभूति और चिंतन का सृजनात्मक रूप है। भाषा की सहजता, बिंबात्मकता, सूक्ष्म संवेदना तथा कलात्मक अभिव्यक्ति उनके गद्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। वे साहित्य को जीवन और समाज से जोड़कर देखते हैं। इस दृष्टि से शमशेर का गद्य साहित्य उनके बहुआयामी रचनाकार व्यक्तित्व को समझने के साथ-साथ उनके समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना को समझने में भी विशेष महत्त्व रखता है। यद्यपि उनका गद्य-साहित्य मात्रा की दृष्टि से बहुत विस्तृत नहीं है, लेकिन विषय और विधा की दृष्टि से उसमें पर्याप्त विविधता दिखाई देती है।

शोध विस्तार

शमशेर बहादुर सिंह की प्रमुख गद्य-कृति 'दो आब' (1948) निबंध-संग्रह है। जिसमें हिन्दी-उर्दू साहित्य, छायावादी कवियों तथा आधुनिक चेतना से जुड़े रचनाकारों पर विचार किया गया है। उनके गद्य की भाषा परिष्कृत, सघन और कलात्मक है। उसमें कवि की संवेदनशील दृष्टि के साथ गहरी चिंतनशीलता और जीवन-अनुभवों की प्रामाणिकता दिखाई देती है। शमशेर के गद्य में हिन्दी और उर्दू की साझा सांस्कृतिक विरासत भी सहज रूप से अभिव्यक्त हुई है।

उनका गद्य केवल विचारों की प्रस्तुति नहीं, बल्कि अनुभव, संवेदना और सौंदर्य-बोध का समन्वय है। उसमें सूक्ष्म निरीक्षण, स्वतंत्र चिंतन और स्पष्ट निर्णय-क्षमता दिखाई देती है। उनकी भाषा में निरंतर परिवर्तन और गतिशीलता बनी रहती है, जिसके कारण पाठक को उनके विचारों के साथ ठहरकर चलना पड़ता है। जिस तरह उनकी कविता को गहराई से समझने के लिए धैर्य और संवेदनशीलता आवश्यक है, उसी प्रकार उनके गद्य का आस्वाद भी गंभीर और सजग पाठ की अपेक्षा करता है। रामविलास शर्मा 'दो आब' की भूमिका में लिखते हैं - "शमशेर के लिए साहित्य का अध्ययन एक सजीव अनुभूति है और उस अनुभूति का प्रतिबिम्ब वह पाठक के मन में गद्य के द्वारा वैसे ही उतारना चाहते हैं जैसे अपनी किसी प्रेम या सौन्दर्य की अनुभूति का प्रतिबिम्ब गद्य के द्वारा कविता में"। इस दृष्टि से शमशेर का गद्य हिन्दी साहित्य में उनकी बहुआयामी रचनात्मक प्रतिभा का महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

शमशेर बहादुर सिंह का एक कहानी-संग्रह 'प्लाट का मोर्चा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। बाद के समय में उनके लगभग समस्त गद्य को मलयज और रचना अग्रगण्य के संपादन में 'शमशेर बहादुर सिंह की कुछ गद्य रचनाएँ' तथा 'कुछ और गद्य रचनाएँ' नामक संग्रहों में प्रकाशित किया गया। शमशेर की कहानियों में उनके व्यक्तित्व के कवि, चित्रकार और गद्यकार तीनों रूपों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उनके कथा-गद्य को पढ़ते हुए बार-बार यह अनुभूति होती है मानो कोई चित्रकार अपनी कूची के स्थान पर कलम को माध्यम बनाकर जीवन के विविध अनुभवों, दृश्यों और संवेदनाओं को शब्दों के रंगों से उकेर रहा हो। उनकी भाषा में चित्रात्मकता, संवेदनशीलता और सूक्ष्म निरीक्षण की ऐसी क्षमता है, जो साधारण-सी स्थितियों को भी कलात्मक अर्थवत्ता प्रदान कर देती है। यही विशेषता उनके गद्य को विशिष्ट रचनात्मक सौंदर्य से संपन्न करती है। उनकी कहानियों में घटनाएँ केवल घटित नहीं होतीं, बल्कि दृश्य और बिम्ब बनकर पाठक के सामने साकार होती हैं। पात्रों की मनःस्थितियाँ, परिवेश की बारीकियाँ और जीवन की छोटी-बड़ी अनुभूतियाँ जिस सघनता से अभिव्यक्त होती हैं, उससे पाठक कथा के बाहरी संसार के साथ-साथ उसके आंतरिक यथार्थ से भी जुड़ने लगता है। इस प्रकार शमशेर के कहानी का गद्य कविता की संवेदना, चित्रकला की दृश्यात्मकता और गद्य की अभिव्यक्ति-शक्ति को एक साथ साधते हुए जीवन तथा यथार्थ को एक विशिष्ट कलात्मक रूप प्रदान करता है। उदाहरण के तौर पर 'यात्रा' कहानी का यह अंश देखिए - "स्टेशन से उतरकर, दो चार अंधेरे गड्ढों-खाइयों को पार करता, लांघता, उस बहुत गंदे अपने बिरादरियों के एक बहुत गरीब गाँव के बीच से गुज़रा। कैसी है जीवन मृत सी घृणित गाँव के बाशिंदों की शक्लें। वे सभी एक से जो लगते हैं-किसी रंग के हो, मगर मैले होकर समान रंग की दिखने वाले उनके मोटे-मोटे भारी-भारी लहंगे, अधिकांश फटे हुये वैसी ही मात्र काम चलाऊ भट्ठी के रंग से भी काली, उनकी मैली खद्दर की चादरें, उनके धूल और चीकर भरे बालों के जूड़े और रूपों अठन्नियों के हवले या तबीज के मैले पुराने डोरों और तागों से उलझे हुए उनके गले और उसके नीचे का भाग, उनका वह कलात्मक मान जो एक भारी भट्ठी अकेली चाभी को उनके वक्ष पर अलंकार बना देता है।"²

शमशेर का गद्य अपनी कलात्मकता के साथ-साथ गहन वैचारिकता और चिंतनशीलता के लिए भी उल्लेखनीय है। उनकी गद्य-रचनाओं में जीवन, समाज और मनुष्य से जुड़े विविध प्रश्नों पर गंभीर दृष्टि दिखाई देती है। यही वैचारिक सजगता

उनके व्यापक सामाजिक सरोकारों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। 'सामाजिक सत्य और रचना का माध्यम' निबंध इसका उदाहरण है – “हर देश और क्षेत्र की एक सांस्कृतिक परंपरा होती है। उसकी भावनाएँ, शब्दावली, रचना के रूप, प्रतीक आदि होते हैं। उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता।”³ लेकिन कवि के पास यदि सही दृष्टि और सही विचारधारा है तो वह उस परंपरा को अपनाकर भी उसमें नया कुछ जोड़ सकता है। शमशेर के कुछ और निबंध 'काल और सृजन', 'कविकर्म: प्रतिभा और अभिव्यक्ति' भी हैं जो उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और वैचारिकता की पहचान कराती हैं और उनकी यह दृष्टि ही उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलग भी।

शमशेर ने अपने आलोचनात्मक गद्य में कवि और कविता के अंतर्मन तक पहुँचकर उसका सूक्ष्म विवेचन किया है। उन्होंने रचना को गहराई से आत्मसात करते हुए उन भावों, अनुभवों और परिस्थितियों की पड़ताल की है, जिनके बीच वह रचना आकार ग्रहण करती है। उन्होंने 'मुक्तछंद' की प्रेरक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए यूरोपीय और अमरीकी कवियों की मनोदशा का विश्लेषण इस प्रकार किया है – “अत्यधिक भावुक अथवा भावुकता के खोजी बल्कि 'श्रमिक' होकर इन कलाकारों ने अपने ही व्यक्तित्व का मंचन इस बेरहमी से किया अपने ही मन के स्तरों में इस भीषण गंभीरता से डूबे कि उनके भावलोक उनका भाषा-संगठन उनकी शब्द-व्यंजन, उनके संकेत व्यापार, स्वरोहो के अर्थ अद्भुत, चमत्कारपूर्ण कभी-कभी तो दिव्य भी, मगर हमेशा विशृंखल, असंबद्ध, अगम्य और रहस्यमय और अनेकार्थ युक्त हो गए।”⁴ यह कथन उनके गहन विवेचन और सूक्ष्म विश्लेषण की क्षमता को स्पष्ट करता है। उनका गद्य अत्यंत धैर्य और क्रमिकता के साथ विवेच्य विषय के कलात्मक आयामों को सामने लाता है। वे रचना की आंतरिक संरचना और उसके सौंदर्य-बोध की परतों को धीरे-धीरे उद्घाटित करते हैं। कई स्थानों पर उनकी काव्यात्मक संवेदना और भावावेग उनके गद्य में भी सहज रूप से अभिव्यक्त होता दिखाई देता है, विशेषतः तब, जब वे अपने प्रिय कवियों और उनकी रचनाओं पर विचार कर रहे होते हैं। नागार्जुन के बारे में लिखते हैं – “उनके शब्द बड़ी-बड़ी अंगलियों से हमारी चेतना को पकड़ते हैं। उसके भाव हमारी आँखों में आँखें डालकर हमसे बातें करते हैं। यह सुन्दर कवि अक्सर मुझे सबसे बड़ा, सुलझा हुआ, सबसे आधुनिक, सबसे जागरूक कवि लगता है।”⁵ केदारनाथ अग्रवाल के बारे में लिखते हैं – “मैं उसकी कविताओं में उसका दिल जैसे आरपार देखता हूँ और वह दिल कितना हर तरह के हम्बर्ग और स्नॉवरी से पाक है।”⁶ मुक्तिबोध के विषय में लिखते हैं – “किसी ने मुक्तिबोध की तुलना बरगद से की है। बरगद अवश्य ही उनका प्रिय इमेज है। मगर मुक्तिबोध बरगद नहीं, चट्टान था, एक ऊँची-सीधी चट्टान..... जैसे शिलाओं पर शिलाएँ झरने कहीं विरले हो। केवल गहरी बावलियाँ, सूखे कुएँ, झाड़ झंखाड़, ऊँची-नीची, अनंत पगडंडियाँ.... जैसे मालवा का पठार और मध्यप्रदेश की उबड़-खाबड़ धरती और धरती के आतंकमय, रहस्यमय इतिहास और उनके बीच लहू-लुहान मानवा।”⁷ शमशेर का गहरा जुड़ाव उर्दू काव्य और साहित्य से रहा। यही कारण है कि उन्होंने उर्दू के साहित्यकारों और उनकी रचनात्मकता पर अत्यंत अधिकार एवं गहनता के साथ विचार किया। हिंदी, उर्दू, अरबी और फारसी जैसी भाषाओं के शब्दों और अभिव्यक्ति शैलियों को अपनाकर उन्होंने अपने गद्य को अधिक समृद्ध और प्रभावशाली बनाया। प्रेमचंद की तरह वे भी भाषाई विभाजन को कम करते हुए हिंदी-उर्दू के बीच एक साझा सांस्कृतिक और साहित्यिक धरातल निर्मित करने के पक्षधर रहे।

शमशेर को बिम्बों का कवि कहा जाता है। उनकी यह काव्यात्मक विशेषता उनके गद्य में भी सहज रूप से दिखाई देती है, जहाँ अनेक सुंदर और प्रभावशाली बिम्ब उभरते हैं। उनके भीतर का कवि गद्य-लेखन में भी निरंतर सक्रिय रहता है। इसी कारण उनकी कहानियों की गति और संवेदना में कविता जैसी लयात्मकता तथा काव्यात्मक अनुभूति दिखाई देती है। 'प्लॉट का मोर्चा' में वे लिखते हैं – “चाँद जो अंधेरे झुरमुट से निकल रहा है बहुत मटमैला है। बहुत सुन्दर, बहुत क्षणिक, यह शिथिल सरलता है। तारों की एक झिलमिलाहट सा। पर क्या है इस क्षण का आधार ? हमारे अन्दर भी वह कहीं से उठकर स्पष्ट नहीं हो सकता ? उसकी शक्ति हमारे युद्ध को इस भीषणता को ? अः कितना करुण इस पृथ्वी का जीवन हो उठा है.. आँसुओं का देश सूख गया है।”⁸ इतना करुण बिम्ब शमशेर जैसा संवेदनशील कवि ही अपने गद्य में रच सकता है।

शमशेर ने डायरियाँ भी लिखी हैं, जिनके माध्यम से उनके व्यक्तित्व और काव्य-दृष्टि को गहराई से समझा जा सकता है। इस दृष्टि से उनकी डायरियों का विशेष महत्व है। उन्हें पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है, मानो गद्य के रूप में लिखी गई कोई कविता हमारे सामने खुल रही हो। जुलाई के शाम का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं – “.....शाम सेंदुर या गेरू या टेसू के रंग से गहरी धुली हुई शाम यानि शाम के बादल। बादलों का एक लम्बा ढाला हल्की ढलुवा हंसती हुई पहाड़ियाँ और हंसता हुआ खुश-खुश कुछ गहरा-सा ऊदा नीला आसमान.....।”⁹ एक डायरी है – “6 मई 1940 सुबह 10 बजे 'बिम्बहीन दर्पण' सा कुछ

मैला-नीला आकाश।”¹⁰ मई 1940 के एक दिन के डायरी का अंश – “फिर जहाँ ले जाएँ ये मुद्राएँ नम्र एक धनुष मैं। किन्तु अभी टंकारहीन। स्थिर मात्र। स्थिरतम शेष।”¹¹

शमशेर की डायरियों के सभी अंश अपने शिल्प और संवेदना के स्तर पर कविता जैसे प्रतीत होते हैं। वे स्केच लिखते समय भी मानो चित्र अंकित कर रहे होते हैं। उनकी अनुभूतियाँ शब्दों के रंगों में इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि प्रकृति, परिस्थितियाँ, वातावरण और रचनाकार एक-दूसरे में समाहित होकर एकाकार हो जाते हैं। शमशेर अपने गद्य में कहीं छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं तो कहीं लम्बी वाक्य-रचना अपनाते हैं। इसी प्रकार उनकी शब्दावली में भी विविधता दिखाई देती है। वे प्रसंगानुसार तत्सम, हिंदी, उर्दू, अरबी और फारसी शब्दों का सहज प्रयोग करते हैं। भाषा और वाक्य-विन्यास में इन विविधताओं के बावजूद उनके भाव और विचार गद्य में पूरी स्वाभाविकता तथा प्रभावशीलता के साथ अभिव्यक्त होते हैं।

हिन्दी गद्य की परंपरा में शमशेर का गद्य अपनी विशिष्ट संवेदना और कलात्मकता के कारण अलग पहचान रखता है। उसे पढ़ना मानो एक जीवंत और सुखद अनुभूति से गुजरना है। यह ऐसे कवि का गद्य है, जिसमें कला के प्रति गहरी प्रतिबद्धता, भाव और विचार के प्रति सत्यनिष्ठा तथा अभिव्यक्ति की सहजता स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी संवेदना भाषा को स्वर प्रदान करते हुए अनेक रूपों में विकसित होती है और इस प्रकार हिन्दी साहित्य को समृद्ध करती है। शमशेर का गद्य परंपरा और प्रयोग के बीच निर्मित ऐसा सेतु है, जो सौंदर्य, प्रेम, जीवन, जगत और मनुष्यता की प्रतिष्ठा से जुड़े व्यापक सरोकारों को सामने लाता है। शिल्प की निरंतर बदलती नवीनता और सशक्त बिम्बों की रचनात्मकता उनके गद्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उनके लेखन की अपनी विशिष्ट शैली, लय और स्वाद है। उन्होंने गद्य को एक निजी रंग और स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने का प्रयत्न किया है, जिसमें एक ओर निजता का भाव है तो दूसरी ओर सामाजिक चेतना का गहरा स्वर भी उभरता है। शमशेर का मानना है कि केवल भावुक कल्पना के सहारे मनुष्य को समाज के मानवीय मूल्यों से नहीं जोड़ा जा सकता। इसके लिए समाज की समस्याओं को बाहरी विषय न मानकर उन्हें अपनी समस्या के रूप में आत्मसात करना और भीतर से अनुभव करना आवश्यक है। वे साहित्य को व्यापक सामाजिक जीवन से जोड़कर देखते हैं। यही कारण है कि उनके गद्य में सामाजिक चिंतन अनेक रूपों में निरंतर अभिव्यक्त होता दिखाई देता है।

शमशेर का गद्य वास्तविक अर्थों में उनकी आत्माभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। उनका मानना है कि रचना की मूल कसौटी शैली या विषय नहीं, बल्कि कलात्मक अनुभूति की प्रामाणिकता है। संवेदना और विचार का यही आधुनिक एवं प्रगतिशील आधार है, जहाँ वे अपनी विवेकशीलता और तार्किक दृष्टि के साथ निजी अनुभूति को सामाजिक अनुभूति में रूपांतरित करते हुए अभिव्यक्त करते हैं। उनके प्रभावशाली बिम्ब उनकी गहन अनुभूति की सघनता से प्रस्फुटित हुए हैं, जो स्वाभाविक रूप से अपने शब्द, वर्ण, रूप-रंग, आकार और ध्वनि को सौंदर्य प्रदान करते जाते हैं। उन्होंने अपने गद्य में काव्यात्मकता को कभी अनावश्यक रूप से हावी नहीं होने दिया, बल्कि शब्दों की अंतर्निहित शक्ति के माध्यम से उसे अर्थगर्भित और व्यंजनापूर्ण स्वरूप प्रदान किया है।

निष्कर्ष

शमशेर के गद्य में समुद्र जैसी गहराई और व्यापकता दिखाई देती है, जो उनकी अध्ययनशीलता, चिंतनशीलता और वैचारिक समृद्धि को स्पष्ट करती है। यही कारण है कि उनके गद्य के अध्ययन में गालिब, निराला, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और पाब्लो नेरूदा जैसे रचनाकारों की उपस्थिति सहज रूप से महसूस की जा सकती है। उन्होंने अपने अनेक समकालीन साहित्यकारों पर विस्तार से लिखा और तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति को नई व्यापकता तथा विविध आयाम प्रदान किए। शमशेर का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों, चुनौतियों और निरंतर कलात्मक प्रयोगों की प्रयोगशाला रहा है। इसी अनुभव-संपन्नता के कारण अन्य कवियों की अपेक्षा उनका गद्य अधिक रचनात्मक, कलात्मक और सृजनात्मक दिखाई देता है।

संदर्भ -

01. शमशेर बहादुर सिंह. दो आब. इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, प्रथम संस्करण, 1948. पृ. 10.
02. सं. रंजना अरगड़े. कुछ और गद्य रचनाएं. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1992. पृ. 200.

03. सं. रंजना अगडे. कुछ और गद्य रचनाएं. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1992. पृ. 15.
04. शमशेर बहादुर सिंह. दो आब. इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, प्रथम संस्करण, 1948. पृ. 59.
05. सं. रंजना अगडे. कुछ और गद्य रचनाएं. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1992. पृ. 18.
06. सं. रंजना अगडे. कुछ और गद्य रचनाएं. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1992. पृ. 19.
07. सं. रंजना अगडे. कुछ और गद्य रचनाएं. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1992. पृ. 42.
08. सं. मलयज. कुछ गद्य रचनाएं. हापुड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1989. पृ. 168.
09. सं. मलयज. कुछ गद्य रचनाएं. हापुड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1989. पृ. 282.
10. सं. मलयज. कुछ गद्य रचनाएं. हापुड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1989. पृ. 286.
11. सं. मलयज. कुछ गद्य रचनाएं. हापुड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1989. पृ. 289.

अकादमिक सामंतवाद और हाशिए का समाज: 'निष्कासन' उपन्यास में निहित सत्ता संरचना का आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. शशिकान्त यादव*

yshashikant15@gmail.com

भूमिका

साहित्य का जब सृजन किया जाता है तब उसमें सुंदर दृश्यों के साथ उन बदसूरत और स्याह पक्षों को भी रचनाकार उजागर करता है जिन्हें समाज भी अनेक बार अनदेखा कर देना चाहता है। हिंदी कथा-साहित्य के प्रखर हस्ताक्षर दूधनाथ सिंह रचित 'निष्कासन' उपन्यास एक ऐसा ही उपन्यास है जिसमें समाज की कठोर सच्चाई को बड़ी बेबाकी से प्रकट करता है। यह उपन्यास हमारे उस समाज का चित्रण करता है जो आज भी जातिवाद, छुआछूत और लैंगिक शोषण की अमानवीय बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। अकादमिक और उच्च शिक्षण संस्थानों को हम अक्सर चेतना, सुधार और आधुनिक मानसिकता का केंद्र मानते हैं। साथ ही उम्मीद करते हैं कि यहाँ पहुँचकर मनुष्य अपनी संकीर्णताओं से मुक्त होगा। लेकिन 'निष्कासन' इस भ्रम को पूरी निर्ममता से तोड़ता है। लेखक इसमें दिखाते हैं कि किस तरह शिक्षा संस्थानों के भीतर भी जातिगत विद्वेष और दलित अस्मिता के संहार का काम किया जाता है। उपन्यास में एक दलित छात्रा अनेक सुनहरे सपने लेकर विश्वविद्यालय में आती है। उसे वहाँ की सवर्णवादी मानसिकता प्रताड़ित, बहिष्कृत करते हुए अंत में मृत्यु के मुँह में धकेल देती है। यह उपन्यास केवल एक लड़की की व्यक्तिगत त्रासदी नहीं है। यह उन लाखों वंचितों और शोषितों का प्रतीक बन जाता है जो रोज़ इंसान होने की बुनियादी गरिमा से 'निष्कासित' किए जा रहे हैं। दूधनाथ सिंह ने इस उपन्यास में व्यवस्था के दोगलेपन से सीधी चोट की है। प्रस्तुत शोध आलेख 'निष्कासन' उपन्यास कठोर यथार्थ, सामाजिक विसंगतियों और व्यवस्थागत क्रूरता को केंद्र में रखकर उसकी तह तक पहुँचने का एक विनम्र प्रयास है। यह आलेख इस बात की पड़ताल करता है कि पाठक के अंतर्मन को यह कहानी कितना झकझोरती है। लेखक का मानना है कि जब तक रूढ़ मानसिकता का 'निष्कासन' नहीं करेंगे एक स्वस्थ और समतामूलक समाज का निर्माण महज एक दिवास्वप्न ही बना रहेगा।

मुख्य शब्द- अकादमिक सामंतवाद, हाशिए का समाज, सत्ता संरचना, दूधनाथ सिंह, निष्कासन, संस्थागत हत्या, दलित स्त्री अस्मिता, आलोचनात्मक यथार्थवाद।

मुख्य आलेख

दूधनाथ सिंह रचित 'निष्कासन' (2002 में प्रकाशित) एक महत्वपूर्ण उपन्यास के रूप में आज भी हिंदी साहित्य जगत में प्रसिद्धि प्राप्त है। इस उपन्यास की प्रासंगिकता इस दौर में और भी बढ़ जाती है जब छुआछूत का दंश समाज में द्रुतगति से फैल रहा है। दलित जीवन के यथार्थ को समाज के सामने लाने का प्रयत्न किया है। यह प्रयास इसलिए भी देखने योग्य है कि अकादमिक जगत में लगातार दलित शोषण के आंकड़े बढ़ते जा रहे हैं। इस क्षेत्र में बढ़ते मामले नितांत ही चिंताजनक हैं। अकादमिक क्षेत्र व्यक्ति के बौद्धिक परिशोधन का केंद्र होता है और यदि इस केंद्र में ही अस्पृश्यता के घुन लग गए तो समाज की धुरी का क्या होगा? 'निष्कासन' उपन्यास का प्रारंभ ही इस समस्या को स्वीकारने के साथ होता है। उपन्यास की प्रारंभिक पंक्ति में ही लेखक लिखते हैं कि - "उस लड़की से क्षमा-याचना सहित - जिसकी यह कहानी है।"¹ कवि की ये क्षमा याचना सदियों पुराने शोषण की चक्की में पिस रही लाखों शोषित लड़कियों के प्रति भी है। यह चेतना ही उपन्यास का बीज बिंदु भी है। उन्होंने इस विचार को व्यक्त करते हुए लिखा भी है कि - "...जो कुछ असुंदर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए (साहित्यकार के लिए) असह्य हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है।... जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है - चाहे वह व्यक्ति हो या समूह - उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फ़र्ज है।"² विचारों की स्वीकारोक्ति के साथ लेखक ने समस्या की गहन पहचान कराई है। वास्तव में समस्या को पहचानना ही समस्या के निराकरण

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मुंशी सिंह महाविद्यालय, मोतिहारी, पूर्वी चंपारण, बिहार
(बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर की अंगीभूत इकाई)

के लिए आवश्यक होता है। सामाज में व्याप्त भेदभाव की सामान्य घटनाओं से तो पाठक भलीभांति परिचित हैं। शैक्षणिक संस्थानों, विशेषकर उच्च शिक्षण संस्थानों में व्याप्त जातिवाद और उसके दंश से लगभग बहुसंख्यक समाज अपरिचित है। यही कारण है कि आत्महत्याओं के दुष्चक्र में हजारों विद्यार्थियों ने अपना जीवन खो दिया है। 'निष्कासन' इसी विडम्बना की वेदना का परिचायक उपन्यास है।

उपन्यास के आरंभिक पृष्ठों में ही उच्च शिक्षण संस्थानों में व्याप्त दलित शोषण के घृणित पक्ष को उकेरने का काम लेखक ने किया है। विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने वाली एक दलित छात्रा का शारीरिक शोषण करवाने के लिए छात्रावास की संचालिका महिष्मती सिंह उसे अपने बंगले पर बुलाती है। अपने वस्त्र एवं सौंदर्य प्रसाधन से तैयार करवाकर मेहमान की सेवा में प्रस्तुत करने के लिए आतुर होती है। लड़की सभी बातों से अनजान डरी-सहमी खड़ी है। उपन्यास में इस स्थिति का इस प्रकार वर्णन मिलता है, "लड़की सिटपिटाई हुई खड़ी है। उसने बहुत हल्की, चिकनी शिफॉन की साड़ी और रंग मिला कर ब्लाउज पहना हुआ है, जो आज के पहले उसने कभी नहीं पहना। उसका चेहरा बड़े सलीके से रंगा-चुना है, बालों को खींच कर चिपका कर एक मोटी-लांबी चोटी की गयी है जो कमर के नीचे तक लटक रही है। लड़की के चेहरे और बालों में अजब-सा खिंचाव महसूस हो रहा है। खड़े-खड़े अचानक उसे लगता है कि अभी कोई उसकी चुटिया पकड़ कर खींच रहा है और नीचे गिरा देगा। वह अपने गालों या ललाट या चेहरे पर कहीं भी हाथ नहीं फेर सकती। आँखों के कोयों को छूना या खुजलाना मना है क्योंकि दोनों ओर तीर की तरह काजल की रेख खिंची है। जबड़े फैलाना, ऐंठना-मैठना या उबासी लेना मना है। इससे चेहरे की लीपापोती चिर सकती है। अभी हल्का, खुशनुमा जाड़ा शुरू हुआ है। मैम इस खुशगवार मौसम के संयोग पर खुश हैं क्योंकि लड़की को पुलोवर नहीं पहनना पड़ेगा और उसका तन अपने पूरे मौसम के साथ मेहमान के सामने खुलेगा।"³ तमाम आर्थिक अभावों से त्रस्त होने के बावजूद भी लड़की अपनी आबरू बेचने को तैयार नहीं होती। महिष्मती सिंह बार-बार प्रयास करती हैं और अपने अतिथि के सम्मुख बिछने के लिए लड़की के साथ जबरदस्ती भी करती हैं। डांटने और घसीटने से भी जब वो अपने मंतव्य में सफल नहीं होती तो - "अचानक मैम का चटकना उसके गाल पर झन्नाता हुआ पड़ा। लड़की की गर्दन जरा-सा हिली। मैम ने दुबारा वैसे ही हाथ उठाया तो लड़की ने उनकी कलाई पकड़ ली। 'बस'। लड़की के मुँह से एक ऐंठा हुआ शब्द निकला।"⁴ महिष्मती सिंह को लड़की के इस विरोध का अंदाजा नहीं था। उनके अहम को करारी चोट पहुंचती है। उन्होंने उस लड़की को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया। पहले तो उन्होंने उसे वही पर निर्वस्त्र करने का प्रयास किया और जब इस प्रयास में सफल नहीं हो पाई तो अपनी दोनों मुट्ठियां बंद करके बेतहाशा लड़की को मुक्के मारने लगीं। लड़की ने डर के मारे एक हाथ अपने कपड़े और दूसरे हाथ से अपने आपको मार से बचाने में लगी थी। महिष्मती सिंह जब शारीरिक हिंसा में सफल नहीं हो सकी तो गालियाँ देने लगती है। वो लड़की को पीटने के साथ-साथ कहती हैं कि - "खटकिन साली... खौरही कुतिया, हरामजादी ... तुझे जवानी चढ़ी है? मैं तुझे देखती हूँ।"⁵ यह दृश्य उस मानसिकता का परिचायक है जो शताब्दियों से दलित वर्ग को हेय एवं अस्पृश्य मानकर अमानवीय व्यवहार करता आया है।

लेखक इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि सभ्य समाज में दलित वर्ग की स्थिति काफी शोचनीय है। सामान्यतः उच्च वर्ग उन्हें समाज में अपने बराबरी का स्थान नहीं देना चाहता है। इसके लिए सबसे ज्यादा जरूरी होता है उन्हें शिक्षित होने से रोका जाए। इस कुत्सित मानसिकता का उल्लेख करते हुए दलित चिंतक और साहित्यकार 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' लिखते हैं कि - "दलित पढ़ लिखकर समाज की मुख्यधारा से जुड़ना चाहते हैं, लेकिन सवर्ण (?) उन्हें इस धारा से रोकता है। उनसे भेदभाव करता है। अपने से हीन मानता है। उसकी बुद्धिमत्ता, योग्यता, कार्यकुशलता पर संदेह व्यक्त किया जाता है। प्रताड़ित करने के तमाम हथकंडे अपनाए जाते हैं। इस पीड़ा को वही जानता है जिसने इसकी विभीषिका के नश्वर अपनी त्वचा पर सहे हैं। जिसने जिस्म को सिर्फ बाहर से ही घायल नहीं किया है अंदर से भी छिन्न भिन्न कर दिया है।"⁶ उपन्यास की लड़की भी ऐसी ही प्रताड़ना का शिकार होती है। महिष्मती सिंह के द्वारा चलाए जाने वाले देह व्यापार के रैकेट में जब वह दलित लड़की शामिल नहीं होती। प्रत्यक्ष प्रतिरोध के साथ उसका विरोध कर अपने छात्रावास भाग आती है। महिष्मती सिंह उसके प्रतिरोध से नाराज होती है। वे उस लड़की को इसका दंड छात्रावास से बेदखल करके देना चाहती हैं। संचालिका का मानना था कि आर्थिक अभाव से ग्रस्त छात्रा को देह व्यापार में शामिल करवाना सरल कार्य होगा। दलित छात्रा के प्रतिरोध से उसके अहम को चोट पहुँची। साथ ही उनकी दशकों से चली आ रही जिस्मफरोशी के धंधे पर करारी चोट लग जाती है। वे इस रुकावट को दूर करने के लिए अपने पति यानी 'शार्दूल विक्रम सिंह' से उस दलित लड़की को छात्रावास से बाहर निकालने के लिए कहती हैं। उनके कहने पर 'शार्दूल विक्रम सिंह' उस दलित अतिथि छात्रा को वॉर्डन रूम में जबरदस्ती बुलवाते हैं और छात्रावास छोड़ने के लिए कहते हैं। लड़की कहती है कि उसका एम. ए. में प्रवेश हो चुका है और शीघ्र ही छात्रावास प्रवेश सूची भी आ

जाएगी। उसने अतिथि छात्रा का अवैधानिक शुल्क भी जमा किया हुआ है। किंतु 'शार्दूल विक्रम सिंह' ने सभी पक्षों को खारिज करते हुए लड़की से कहा - "दस हजार रुपया कल सुबह तक जमा कर दो, या कल शाम तक कमरा खाली कर दो।"'रुपया तो नहीं दे सकती सर।' लड़की ने लगभग धिधिया कर कहा। 'रुपया नहीं दे सकती तो कुछ और दो।' लड़की को लगा, उसके पेट में हूल उठ रही है, उसके गले में कुछ अँटक रहा है। उसकी धड़कन धड़धड़ा कर एकाएक बढ़ गयी। लड़की जाने को मुड़ी।...'और सुनो।'...'मेरे प्रस्ताव पर विचार करो।' ⁷ ऐसे अमर्यादित प्रस्ताव पर लड़की और उसकी बहन ने विरोध जताती है। वहाँ से वो डीन, छात्र कल्याण से छात्रावास में रहने की अनुमति करवाकर अधीक्षिका के क्लर्क पति 'शार्दूल विक्रम सिंह' को सौंप देती है। इस कार्यवाही से महिष्मती सिंह फिर आगबबूला हो उठती है। अपनी खीझ प्रकट करते हुए डीन छात्र कल्याण को फोन मिलाया और फोन पर लड़की के लिए बला - बुरा कहने लगती है - "वह लड़की ठीक नहीं है। बदतमीज है, राजनीति करती है, जातिवाद चलाती है।" ⁸ इतना ही नहीं लड़की को चरित्रहीन भी घोषित कर देती है।

उपन्यास में बाद में लड़की और उसकी बड़ी बहन को धमकाया गया। रुपये न जमा करने पर सामान के साथ छात्रावास से बाहर फेंकने की बात कही गई। जब लड़की ने हार नहीं मानी तो छात्रावास में उसका सामाजिक बहिष्कार घोषित कर दिया। सामाजिक बहिष्कार का मतलब लेखक ने महिष्मती सिंह की सेक्रेटरी 'मैत्रेयी' के शब्दों में स्पष्ट किया कि - "आज से किसी भी लड़की का तीस नम्बर से बोलना बन्दा। चोरी छुपे आधी रात को तीस नम्बर में झाँकना, खटखटाना बन्दा। यूनिवर्सिटी में, क्लास में, क्लास के बाहर, लव-लेन में, विभागों के पिछवारे या कहीं भी, कोई लेन-देन, इशारेबाजी, फुसफुस, बन्दा। लेवेटरी के लिए तीस नम्बर का लाइन में लगना बन्दा। या तो वह सबसे पहले, सबके जागने के पहले या सबके बाद जाया। बाजें पर तीस नम्बर के कपड़े सूखने बन्दा। ब्लॉक सर्वेण्ट का तीस नम्बर में झाड़ू-पोंछा बन्दा। ज़ोर से ट्रांजिस्टर सुनना बन्दा। मेस में सबके साथ खाना-नाश्ता बन्द। हॉस्टल के फ़ोन से फ़ोन कॉल बन्दा। बाहर से फ़ोन आये तो सूचना देना बन्दा। लड़कियों के साथ लॉन में टहलना या धूप लेना बन्दा। बाहर से आये गेस्ट से मिलना बन्दा। दाइयों से सामान मंगवाना बन्दा। 'आंटी की शॉप' से खरीद-फरोख्त बन्दा। उधारी बन्दा। आंटी न माने तो 'आंटी की शॉप' हमेशा के लिए बन्दा। - सुन लो, किसी ने गलती से भी इन हिदायतों का उल्लंघन किया तो उसका भी दाना-पानी बन्दा।" ⁹ दरअसल, जब सामने वाला दलित वर्ग से संबंधित होता है तब सामाजिक बहिष्कार या चरित्र पर लांछन लगाकर अपने गलत कार्यों पर पर्दा डालने की रीति बहुत पुरानी है।

गलत आरोपों से परेशान लड़की और उसकी बड़ी बहन ने महामहिम राज्यपाल और कुलाधिपति के साथ अन्य उच्च अधिकारियों को अपना प्रतिवेदन न्याय की गुहार के साथ प्रेषित कर दिया। उनके प्रार्थना पत्र पर महामहिम राज्यपाल की प्रतिक्रिया अवश्य आती है। व्यवहारिक रूप से उस दलित लड़की की समस्या का समाधान नहीं हो पाता। वे अपने प्रमुख सचिव से कहते हैं कि - "मुख्यमंत्री जी ने कल की प्रेस-वार्ता में कहा कि कुछ नहीं हो रहा। मान लीजिये आपकी बेटी है तब ? मुफ्ती की बेटी थी तब? तब तो सारा प्रशासन सिर के बल खड़ा हो गया था। अपहरण और आपूर्ति में ज्यादा फर्क नहीं है पंडित जी! दोनों में अनिच्छित शोषण है। दोनों में हिंसा है। जबर्दस्त शारीरिक और मानसिक अपमान है। दोनों में बल-प्रयोग है, सिर्फ उसके तरीके में अन्तर है। दोनों में फिरौती है। एक में प्रत्यक्ष, दूसरे में परोक्ष। आप क्या समझाते हैं, जो देवी जी वहाँ प्रतिष्ठित पद पर आसीन हैं और इस कुकर्म में लिप्त हैं, उनका कोई निहित स्वार्थ नहीं होगा? सिर्फ एक घिनौने मजे के लिए वे वैसा करती होंगी?... लेकिन नहीं, किसी खटिक की बेटी होने का क्या मतलब? उसे नरक में डालो और हँसो। या उसे आपकी तरह 'अन्य मामलों' के धूरे पर डाल कर रफा-दफ़ा कर दो।' महामहिम खाँसने लगे।" ¹⁰ वास्तविकता को जानते हुए भी महामहिम राज्यपाल महोदय ने मामले के स्पष्टीकरण और जांच रिपोर्ट की फैक्स कुलपति को प्रेषित करवा दी। कुलपति के द्वारा मामले को रफा-दफा करने के उद्देश्य से एक जांच कमेटी का गठन किया गया। जिसने पूरी शिद्दत से मामले को रफ़ा-दफा कर दिया। पीड़ित लड़की की व्यथा और गवाही को अनसुना करते हुए दोनों समितियों ने अपना निर्णय दे दिया कि - "दोनों समितियों का निष्कर्ष है कि आप धौंस और धमकी के बल पर दलितवाद का नारा देकर मृदुला साराभाई छात्रावास में अवैध रहना चाहती हैं।...आपने अधीक्षिका और उनके पति डॉ० शार्दूल विक्रम सिंह पर अत्यन्त गलीज और बेबुनियाद आरोप लगाकर गम्भीर अनुशासनहीनता की है...समितियों की रिपोर्ट के आधार पर आपको निम्नलिखित आदेश दिये जाते हैं :- प्रथम-आप दिनांक... सन् २००० ई० तक मृदुला साराभाई छात्रावास का कमरा नं० ३० खाली कर देंगी। द्वितीय-कमरा खाली करने के एक दिन पहले आपको अपना लिखित स्पष्टीकरण मुख्य कुलानुशासक को देना पड़ेगा कि मृदुला साराभाई छात्रावास की अधीक्षिका एवं उनके पति के प्रति गम्भीर, असत्य एवं अत्यन्त तकलीफदेह आरोप लगाने के लिए आपके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों न की जाय?" ¹¹ इस प्रकार पूरी व्यवस्था के साथ उस लड़की की आवाज को दबा जाता है। वो लड़की जो शोषण चक्र की चक्की में पिसने को तैयार नहीं थी और अपने अन्याय के साथ शोषण चक्र को चुनौती दे रही थी।

यह कार्यवाही बताती है कि दलितों के लिए न्याय तक पहुंच पाना किसी दिवास्वप्न के समान है। लड़की न्याय के लिए महामहिम राज्यपाल से लेकर मुख्यमंत्री, अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग के चेयरमैन, मंत्री, पार्टी सचिव, स्थानीय सांसद आदि सभी से अपनी पीड़ा का बयान करती है। न्याय के लिए गुहार लगाती है। सब जगह भटक लेने के बाद अंततः उसे छात्रावास से निष्कासित कर ही दिया जाता है।

निष्कासन से उत्पन्न पीड़ा को लिए वो अंततः न्यायालय की शरण भी लेती है। उच्च न्यायालय में कुलपति की कार्यवाही के खिलाफ याचिका दायर की। वहां भी उसके पक्ष को अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग के चेयरमैन, मंत्री, पार्टी सचिव, स्थानीय सांसद आदि सभी से अपनी पीड़ा का बयान करती है। न्याय के लिए गुहार लगाती है। सब जगह भटक लेने के बाद अंततः उसे छात्रावास से निष्कासित कर ही दिया जाता है।

स्वयं दलितों के मसीहा कहलाने वाले दलित राजनेताओं के लिए भी वो वोटबैंक के आंकड़े बनकर रह गए हैं। इसलिए उन्हें दलितों के शोषण और दलन से कोई वास्ता नहीं रह गया है। उपन्यास में भी ऐसा ही एक दलित नेता 'नन्हें लाल खटिक' मौजूद है। जो दलित लड़की के शोषण को समझते हुए भी अपने स्वार्थहित हेतु उसका सहयोग नहीं करता है। वह स्पष्ट रूप से अपनी असमर्थता जाहिर करते हुए कहता है कि - "तो तुम चाहती हो कि हॉस्टल में जो फल और सब्जी का ठेका है मेरा, उसे एक छोकरी के लिए छोड़ दूँ मैं? मेरा बचा-खुचा धन्धा-पानी बन्द हो जाय... क्यों? और किसलिए? मेरा क्या फ़ायदा होगा? आदमी कोई चीज़ तब गँवाता है, जब उससे बड़ी चीज़ हासिल हो। और इनकी पार्टी में रह कर मैं जातिवादी राजनीति करूँ? कर सकता हूँ क्या?"¹³ स्वार्थ केंद्रित राजनीति या गठजोड़ में सिवाय अपने और किसी का हित देखा ही कहाँ जाता है। जैसे ही किसी का स्वार्थ बाधित होता है वो रोषपूर्वक गठबंधन तोड़ने को आतुर हो जाता है। इस आतुरता में ही महिष्मती सिंह की सेक्रेटरी 'मैत्रेयी' उसे लताड़ लगाती हुई उसके व्यभिचार और दलाल पक्ष को उद्घाटित कर देती है। वह रोषपूर्वक मैम से कहती है कि - "तुमसे कहा था मैंने, अपना धन्धा जरा आस्ते-आस्ते। धंधे की वजह से हुआ यह। आसान समझे बैठें थीं उस लड़की को? खटकिन है तो साग-भाजी की तरह बिक जायेगी? नहीं बिकी तो बधोगी? चाहूँ तो तुम्हारा नक्शा उलट दूँ- अभी, इसी वक्त।"¹⁴ किंतु सवर्णवादी मानसिकता से ग्रस्त मैत्रेयी गठजोड़ को बनाए रखती है और लड़की के उत्पीड़न में भागीदार बनी रहती है। इस प्रकार संकीर्ण मानसिकता और सत्ता के गठजोड़ ने सवर्ण समाज को अनायास ही यह अधिकार दे दिया है कि वे दलितों का मनचाहा शोषण करें और उनके प्रतिरोध को किसी भी हद में जाकर दबा दें। इस वीभत्स मानसिकता का पुरजोर विरोध करते हुए ही उपन्यासकार ने अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग के अध्यक्ष के मुँह से कहलवाया है कि - "दलित लड़की हो तो धन्धा करवाने की कोशिश करेंगे, घूस माँगेंगे और न हो पैसा तो कहेंगे, 'उसके बदले कुछ और दो'। आप सवर्ण लोग हैं, बुद्धिजीवी हैं- आप लोगों के पास सब कुछ है, फिर भी 'कुछ और दो' की आदत नहीं गयी? पहले निश्चिंत ज़बर्दस्ती थी, अब वही काम उत्पीड़न और धमकी के साथ?"¹⁵ यह चेतना ही दलित जनजीवन को मानवीय धरातल पर स्थापित करने का कार्य करेगी। इसकी प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि उनमें उनकी रुढ़ ऐतिहासिक और सामाजिक एवं अमानवीय छवि के तिलस्म को तोड़ने वाली चेतना का निर्माण किया जाय। इस दलित चेतना के संबंध में 'रमणिका गुप्ता' लिखती है कि - "दलित चेतना की सबसे पहली शर्त है उसका विरोध का स्वर, पीड़ा की छटपटाहट, आक्रोश का तेवर और उसके साथ ही कहीं उगता हुआ परिवर्तन के लिए एक संकल्प।"¹⁶ इस संकल्प के - "केंद्र में वे सारे सवाल हैं, जिनका संबंध भेदभाव से है, चाहे ये भेदभाव जाति के आधार पर हों, रंग के आधार पर हों, नस्ल के आधार पर हों, लिंग के आधार पर हों या फिर धर्म के आधार पर ही क्यों न हों?"¹⁷ बिना इन प्रश्नों से परिचित हुए शोषणमूलक व्यवस्था का विरोध और अंत संभव नहीं है। दूधनाथ सिंह इस संकल्प निर्माण हेतु प्रतिबद्ध कथाकार हैं। प्रबुद्ध चिंतक 'तेजिंदर' के शब्दों में कहें तो - "दूधनाथ सिंह ने अपने समय की तमाम विसंगतियों, तमाम अंतर्विरोधों और तमाम संकटों का सामना सीधे-सीधे किया। उनमें कहीं भी भटकाव नहीं था। अपने लेखन में हर तरह के दोगलेपन से वे सीधी मुठभेड़ करते थे।"¹⁸ इस मुठभेड़ से अत्याचार और शोषण की बेड़ियाँ पिघलती हैं और स्वस्थ समाज के निर्माण का पथ प्रशस्त होता है। इस परिप्रेक्ष्य में ही 'निष्कासन' उपन्यास

सृजित होता है। उपन्यास में सृजित संवेदना और चेतना सामाजिक परिवर्तन की वाहक बनती है। क्योंकि – “उपन्यास अनुभव की अभिव्यक्ति करता है। अनुभव की अभिव्यक्ति के कारण ही वह दूसरों को अनुभव करने की क्षमता प्रदान करता है।”¹⁹ ‘निष्कासन’ महज उपन्यास नहीं बल्कि प्रत्यक्ष घटनाओं और पीड़ादायी अनुभवों से उपजी कराह है, जहाँ लेखक ही नहीं समय-समाज भी उपस्थित है- यातनामय भयावहता के साथ। उपन्यास के भीतर समय और समाज का वीथत्स सच पूरी मार्मिकता के साथ दर्ज है।

निष्कर्ष रूप से देखे तो दूधनाथ सिंह के उपन्यास ‘निष्कासन’ में निहित सत्ता संरचना का यह आलोचनात्मक अध्ययन इस हकीकत को बेनकाब करता है कि जिसे हम ‘आधुनिक अकादमिक जगत’ कहते हैं, वह वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्यों से संचालित कोई समतामूलक स्थान नहीं है, वह ‘अकादमिक सामंतवाद’ का एक क्रूर और अदृश्य कसाईघर है। इस शोधपत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि विश्वविद्यालय जैसी संस्थाएं, जो हाशिए के समाज के लिए मुख्यधारा में आने और गरिमापूर्ण जीवन जीने का एकमात्र माध्यम होनी चाहिए थीं, वे स्वयं सवर्णवादी मानसिकता, प्रशासनिक गठजोड़ और राजनैतिक स्वार्थों का एक ऐसा अभेद्य चक्रव्यूह बन चुकी हैं। जहाँ पहुँचकर दलित अस्मिता के सुनहरे सपने दम तोड़ देते हैं। उपन्यास की नायिका की त्रासदी केवल एक व्यक्तिगत हताशा या आत्महत्या नहीं है, बल्कि वह इस सामंती तंत्र द्वारा ठंडे दिमाग से की गई एक ‘संस्थागत हत्या’ है। जहाँ कुलपति से लेकर क्लर्क तक और वामपंथी प्रगतिशीलता का चोगा ओढ़े बुद्धजीवियों से लेकर स्वार्थी दलित राजनेताओं तक, हर कोई इस दलन-चक्र का मूक गवाह या सक्रिय भागीदार बना हुआ है। कमरा नंबर तीस (30) से बरामद वह कागज़ का छोटा सा टुकड़ा—जिस पर लिखा था कि ‘मेरी मृत्यु के लिए कोई जिम्मेदार नहीं है’—अकादमिक जगत के इसी भयावह सन्नाटे और हाशिए के समाज की मर्यान्तक बेबसी का एक जीवंत दस्तावेज़ है। यह उपन्यास हमें इस असहज कर देने वाले आत्म-मूल्यांकन की ओर ले जाता है कि हम इंसानों को डिग्रियों और पदों से तो ऊँचा उठा रहे हैं, लेकिन हमारे भीतर बैठी अमानवीय संकीर्णता आज भी उतनी ही आदिम और हिंसक है। दूधनाथ सिंह ‘निष्कासन’ के माध्यम से सामाजिक विडम्बना का आख्यान तो रचते हैं। वे अपने शिक्षण संस्थानों, अपनी न्याय प्रणाली और अपने खुद के अंतर्मन से इस कुत्सित सामंती मानसिकता का वास्तविक ‘निष्कासन’ नहीं करेंगे, तब तक समतामूलक समाज, न्याय और लोकतंत्र की हर बात सिर्फ एक बेजान और कोरा कागज़ी दावा ही बनी रहेगी। यह उपन्यास आज के दौर में भी हमारे समाज के आत्म-सुधार के लिए एक अनिवार्य और तीखा हस्तक्षेप है।

संदर्भ : -

- ¹ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 11
- ² सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 05
- ³ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 11-12
- ⁴ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 47
- ⁵ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 47
- ⁶ वाल्मीकि, ओमप्रकाश (2020). *जूठन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 155
- ⁷ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 62
- ⁸ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 63
- ⁹ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 88
- ¹⁰ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 71-72
- ¹¹ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 115
- ¹² सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 143
- ¹³ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 86
- ¹⁴ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 79
- ¹⁵ सिंह, दूधनाथ (2022). *निष्कासन*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 111
- ¹⁶ गुप्ता, रमणिका (संपादक). (2012). *दलित चेतना साहित्य*. नवचेतन प्रकाशन दिल्ली. पृ. 82
- ¹⁷ डॉ. अमरनाथ. (2016). *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. पृ. 172
- ¹⁸ अग्रवाल, डॉ. विजय. (संपा.). (2018, जून). *साहित्य विकल्प*. तेजिंदर. राजनैतिक चेतना के प्रखर लेखक. अंक 6. वर्ष 4. साहित्य भंडार प्रकाशन. इलाहाबाद. पृ. 71
- ¹⁹ सिंह, ओमप्रकाश शीतांशु (संपा.). (2018). *उपन्यास का वर्तमान*. नयी दिल्ली : प्रकाशन संस्थान. पृ. 49

पंचायती राज से संसद तक महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व का विस्तार: नारी शक्ति वंदन अधिनियम के संदर्भ में सशक्तिकरण, प्रतिनिधित्व और लोकतांत्रिक समावेशन का विश्लेषण

दिलीप कुमार / Dilip Kumar*
uppsc.dilipkumar@gmail.com

सारांश

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और समान नागरिकता है, किंतु प्रतिनिधित्व की दृष्टि से महिलाएँ लंबे समय तक संसद और विधानसभाओं में अल्पसंख्यक बनी रहीं। पंचायती राज संस्थाओं में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों द्वारा महिलाओं को आरक्षण देकर भारत ने जमीनी लोकतंत्र में महिला नेतृत्व का अभूतपूर्व प्रयोग किया। इस प्रयोग ने लाखों महिलाओं को ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद और नगर निकायों के माध्यम से प्रशासनिक एवं राजनीतिक प्रक्रिया में प्रवेश दिया। वर्तमान में भारत में पंचायती राज संस्थाओं में लगभग 14.5 लाख निर्वाचित महिला प्रतिनिधि हैं, जो कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों का लगभग 46 प्रतिशत हैं। यह अनुभव सिद्ध करता है कि संवैधानिक आरक्षण केवल सांकेतिक प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और नेतृत्व-निर्माण का प्रभावी साधन हो सकता है। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में संविधान (एक सौ छठा संशोधन) अधिनियम, 2023, जिसे लोकप्रिय रूप से **नारी शक्ति वंदन अधिनियम** कहा जाता है, भारतीय लोकतंत्र में महिला राजनीतिक सशक्तिकरण का नया अध्याय प्रस्तुत करता है। यह अधिनियम लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और दिल्ली विधानसभा में महिलाओं के लिए यथासंभव एक-तिहाई सीटों के आरक्षण का संवैधानिक प्रावधान करता है। अधिनियम को 28 सितंबर 2023 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली और केंद्र सरकार ने 16 अप्रैल 2026 से इसके प्रावधानों को प्रभावी किया; फिर भी वास्तविक आरक्षण जनगणना और उसके बाद परिसीमन की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है।

प्रमुख शब्द:

नारी शक्ति वंदन अधिनियम, महिला आरक्षण, पंचायती राज, राजनीतिक सशक्तिकरण, लोकसभा, राज्य विधानसभा

प्रस्तावना

भारतीय संविधान ने स्वतंत्रता के साथ ही महिलाओं को मतदान का समान अधिकार प्रदान किया। यह विश्व इतिहास की दृष्टि से अत्यंत प्रगतिशील कदम था, क्योंकि अनेक विकसित देशों में महिलाओं को मताधिकार लंबे संघर्षों के बाद प्राप्त हुआ। भारत में महिला नागरिकता को आरंभ से ही विधिक समानता मिली, लेकिन राजनीतिक प्रतिनिधित्व के स्तर पर यह समानता व्यवहार में पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सकी। संसद, विधानसभाओं और राजनीतिक दलों की निर्णय-प्रक्रिया में महिलाओं की संख्या उनकी जनसंख्या के अनुपात में अत्यंत कम रही।

भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं की भागीदारी को समझने के लिए दो स्तरों पर विचार करना आवश्यक है। पहला स्तर मतदाता के रूप में महिला की उपस्थिति है, जहाँ महिलाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ी है। दूसरा स्तर प्रतिनिधि और नीति-निर्माता के रूप में महिला की उपस्थिति है, जहाँ स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर रही है। निर्वाचन आयोग के आँकड़ों और चुनावी अध्ययनों से स्पष्ट है कि महिलाओं ने मतदान में सक्रिय भागीदारी दिखाई है, किंतु राजनीतिक दलों ने उन्हें उम्मीदवार

*शोधार्थी, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, गनपत सहाय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुल्तानपुर (उ.प्र.)

सम्बद्ध : डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22813264>

बनाने में अपेक्षित गंभीरता नहीं दिखाई। 18वीं लोकसभा में 543 सांसदों में 74 महिलाएँ निर्वाचित हुईं, जो कुल सदस्यों का लगभग 14 प्रतिशत है। यह स्थिति उस लोकतांत्रिक विरोधाभास को रेखांकित करती है जिसमें महिलाएँ मतदाता के रूप में निर्णायक हैं, परंतु विधायिका में निर्णय-निर्माता के रूप में सीमित हैं। यही विरोधाभास महिला आरक्षण की संवैधानिक आवश्यकता को जन्म देता है²।

शोध-समस्या

भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी पर पर्याप्त चर्चा हुई है, किंतु प्रतिनिधित्व की संरचनात्मक बाधाओं को दूर करने के लिए संवैधानिक आरक्षण की आवश्यकता पर लंबे समय तक राजनीतिक सहमति विकसित नहीं हो सकी। महिला आरक्षण विधेयक का इतिहास लगभग तीन दशकों तक संसद में लंबित रहा। 1996, 1998, 1999 और 2008 में विभिन्न रूपों में यह विधेयक प्रस्तुत हुआ, किंतु लोकसभा में पारित नहीं हो सका। 2008 का विधेयक राज्यसभा से पारित हुआ, लेकिन लोकसभा में पारित न होने के कारण समाप्त हो गया। PRS Legislative Research ने भी इस दीर्घ विधायी यात्रा को रेखांकित किया है³। शोध-समस्या का मूल प्रश्न यह है कि जब पंचायत स्तर पर महिला आरक्षण ने व्यापक प्रतिनिधित्व और नेतृत्व का आधार तैयार किया, तब संसद और विधानसभाओं में महिलाओं की उपस्थिति क्यों सीमित रही? क्या नारी शक्ति वंदन अधिनियम इस अंतर को भर सकता है? क्या यह अधिनियम केवल संख्यात्मक प्रतिनिधित्व बढ़ाएगा या वास्तविक राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में भी कार्य करेगा? इन्हीं प्रश्नों को इस शोध-पत्र का आधार बनाया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य हैं-

1. पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण के ऐतिहासिक अनुभव का विश्लेषण करना।
2. नारी शक्ति वंदन अधिनियम के संवैधानिक प्रावधानों की समीक्षा करना।
3. संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व के कारणों को समझना।
4. महिला आरक्षण के सामाजिक, राजनीतिक और नीतिगत प्रभावों का मूल्यांकन करना।

शोध-पद्धति

यह अध्ययन गुणात्मक, विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। इसमें संवैधानिक प्रावधानों, संसद की विधायी प्रक्रिया, सरकारी रिपोर्टों, PRS Legislative Research के विधेयक-विश्लेषण, पंचायती राज मंत्रालय के आँकड़ों, अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्रों तथा महिला प्रतिनिधित्व से जुड़े अकादमिक अध्ययनों का उपयोग किया गया है। अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषण प्रमुख है। चट्टोपाध्याय और डुफ्लो का पंचायती राज में महिला नेतृत्व पर किया गया अनुभवजन्य अध्ययन इस शोध के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। उन्होंने पश्चिम बंगाल और राजस्थान की पंचायतों के आधार पर यह दिखाया कि महिला नेतृत्व सार्वजनिक वस्तुओं और स्थानीय विकास प्राथमिकताओं को प्रभावित करता है।⁴

साहित्य समीक्षा

महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर वैश्विक और भारतीय दोनों स्तरों पर विस्तृत साहित्य उपलब्ध है। Hanna Pitkin की प्रतिनिधित्व संबंधी अवधारणा में descriptive representation और substantive representation का अंतर महत्वपूर्ण माना गया है। वर्णनात्मक प्रतिनिधित्व का अर्थ है कि विधायिका में समाज के विभिन्न समूहों की उपस्थिति दिखाई दे; जबकि सार्थक प्रतिनिधित्व का अर्थ है कि वे समूह नीति-निर्माण को प्रभावित भी करें। नारी शक्ति वंदन अधिनियम को इन दोनों दृष्टियों से समझा जा सकता है। भारतीय संदर्भ में नारी आरक्षण की बहस केवल संख्या बढ़ाने का प्रश्न नहीं रही है, बल्कि यह जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और राजनीतिक दलों की संरचना से भी जुड़ी रही है। Nivedita Menon ने महिला आरक्षण विधेयक पर विमर्श करते हुए यह प्रश्न उठाया कि “महिला” कोई एकरूप सामाजिक श्रेणी नहीं है; वह जाति, वर्ग, धर्म और समुदाय की स्थितियों से निर्मित होती है। Shirin Rai ने महिला आरक्षण को भारतीय लोकतंत्र में सत्ता-संरचना, प्रतिनिधित्व और नागरिकता के प्रश्न से जोड़ा। उनके अनुसार प्रतिनिधित्व का प्रश्न केवल विधायिका में प्रवेश तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक दलों, चुनावी संसाधनों और नीति-निर्माण की वास्तविक शक्ति से भी जुड़ा है। PRS Legislative Research ने 2023 के विधेयक पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया कि संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का

प्रतिनिधित्व लंबे समय तक कम रहा है, जबकि स्थानीय निकायों में आरक्षण के अनुभव ने महिलाओं के नेतृत्व को व्यापक बनाया है। PRS के अनुसार 73वें और 74वें संशोधनों ने स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए कम-से-कम एक-तिहाई सीटों के आरक्षण की व्यवस्था की, किंतु लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए ऐसा प्रावधान पहले संविधान में नहीं था।

पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की सबसे ठोस प्रयोगशाला पंचायती राज संस्थाएँ रही हैं। 73वें और 74वें संविधान संशोधनों ने 1990 के दशक में स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक आधार दिया। इन संशोधनों के माध्यम से ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद और शहरी स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षण सुनिश्चित किया गया। इससे भारतीय लोकतंत्र की संरचना में मूलभूत परिवर्तन आया। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रवेश ने राजनीति को केवल उच्चवर्गीय या शहरी नेतृत्व तक सीमित नहीं रहने दिया।⁵ गाँवों, कस्बों और छोटे नगरों की महिलाएँ पहली बार प्रशासन, विकास योजनाओं, ग्रामसभा, बजट, जल-संसाधन, स्वास्थ्य, शिक्षा और स्थानीय न्याय जैसी प्रक्रियाओं से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ीं। भारत सरकार के अनुसार वर्तमान में पंचायती राज संस्थाओं में लगभग 14.5 लाख निर्वाचित महिला प्रतिनिधि कार्यरत हैं और वे कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों का लगभग 46 प्रतिशत हैं। यह संख्या विश्व स्तर पर महिला स्थानीय प्रतिनिधित्व का अत्यंत बड़ा उदाहरण है।

यह अनुभव कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पहली बात, इसने यह सिद्ध किया कि महिलाएँ केवल घर-परिवार तक सीमित रहने वाली सामाजिक इकाई नहीं हैं, बल्कि वे सार्वजनिक जीवन, प्रशासन और नेतृत्व में सक्षम भूमिका निभा सकती हैं। दूसरी बात, इसने ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना का विस्तार किया। तीसरी बात, इसने उन महिलाओं को नेतृत्व का अवसर दिया जिन्हें पारंपरिक दलगत राजनीति में प्रवेश नहीं मिल पाता था।

पंचायत से संसद तक: नेतृत्व की निरंतरता

पंचायती राज में आरक्षण ने महिलाओं को राजनीतिक प्रशिक्षण का वास्तविक अवसर दिया। ग्राम पंचायतों में चुनी गई महिलाएँ केवल पदधारी नहीं रहीं; कई स्थानों पर उन्होंने स्वच्छता, पेयजल, पोषण, विद्यालयी शिक्षा, महिला सुरक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़े मुद्दों को स्थानीय शासन के केंद्र में रखा। चट्टोपाध्याय और डुफ्लो के अध्ययन ने यह दिखाया कि महिला नेतृत्व वाली पंचायतों में स्थानीय सार्वजनिक वस्तुओं की प्राथमिकता बदलती है। पश्चिम बंगाल और राजस्थान के अनुभवों के आधार पर उन्होंने पाया कि महिला प्रतिनिधि उन विकास-क्षेत्रों पर अधिक ध्यान देती हैं जो स्थानीय महिलाओं की आवश्यकताओं से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते हैं, जैसे पेयजल, सड़क, ईंधन और विद्यालयीय सुविधाएँ।⁶

Beaman et al. का अध्ययन यह बताता है कि लगातार महिला नेतृत्व देखने से किशोरियों की शिक्षा और रोजगार संबंधी आकांक्षाएँ बढ़ती हैं। इस अध्ययन के अनुसार जिन ग्राम पंचायतों में दो चुनावी चक्रों तक महिला नेतृत्व रहा, वहाँ लड़कियों और अभिभावकों के बीच लैंगिक आकांक्षा-अंतर कम हुआ। इन शोधों से स्पष्ट है कि महिला प्रतिनिधित्व का प्रभाव केवल विधायी संख्या तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक कल्पना, राजनीतिक भागीदारी और विकास की प्राथमिकताओं को भी प्रभावित करता है। इसलिए पंचायत से संसद तक महिला प्रतिनिधित्व की यात्रा को नेतृत्व की निरंतरता के रूप में देखा जाना चाहिए।

संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का अल्प प्रतिनिधित्व

भारतीय लोकतंत्र में महिलाएँ मतदाता के रूप में सक्रिय हैं, लेकिन उम्मीदवार और निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में उनकी संख्या कम है। 18वीं लोकसभा में 74 महिला सांसद हैं, जो कुल सदस्य संख्या का लगभग 14 प्रतिशत है। यह संख्या 33 प्रतिशत के लक्ष्य से काफी कम है। राज्य विधानसभाओं में स्थिति और भी असमान है। PRS के 2023 के विश्लेषण के अनुसार अधिकांश राज्य विधानसभाओं में महिलाओं की हिस्सेदारी 20 प्रतिशत से कम रही है। इस अल्प प्रतिनिधित्व के कई कारण हैं। पहला, राजनीतिक दल महिलाओं को टिकट देने में संकोच करते हैं। दूसरा, चुनावी राजनीति में धन, संगठन और नेटवर्क की भूमिका बहुत बड़ी है, जहाँ पुरुषों का ऐतिहासिक प्रभुत्व है। तीसरा, पारिवारिक और सामाजिक भूमिकाओं के कारण महिलाओं पर अतिरिक्त बोझ होता है। चौथा, राजनीतिक हिंसा, चरित्र-हनन और सार्वजनिक जीवन की असुरक्षा महिलाओं की भागीदारी को प्रभावित करती है। पाँचवाँ, चुनावी राजनीति में जाति और समुदाय आधारित समीकरणों के भीतर भी पुरुष उम्मीदवारों को प्राथमिकता दी जाती है। इसीलिए संवैधानिक आरक्षण को केवल 'विशेष सुविधा' नहीं, बल्कि ऐतिहासिक असमानता को सुधारने वाला लोकतांत्रिक उपाय माना जाना चाहिए।⁷

नारी शक्ति वंदन अधिनियम: संवैधानिक स्वरूप

नारी शक्ति वंदन अधिनियम, अर्थात् संविधान (एक सौ छठा संशोधन) अधिनियम, 2023, भारतीय लोकतंत्र में महिला प्रतिनिधित्व के लिए एक निर्णायक संवैधानिक हस्तक्षेप है। इस अधिनियम ने संविधान के अनुच्छेद 239AA में संशोधन किया और नए अनुच्छेद 330A, 332A तथा 334A जोड़े। अनुच्छेद 330A लोकसभा में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान करता है। इसके अनुसार लोकसभा में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरी जाने वाली कुल सीटों में यथासंभव एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की जाएंगी। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों में भी लगभग एक-तिहाई सीटें उन वर्गों की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी।

अनुच्छेद 332A राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के आरक्षण का प्रावधान करता है। इसके अनुसार प्रत्येक राज्य की विधानसभा में प्रत्यक्ष निर्वाचन वाली सीटों में यथासंभव एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। अनुच्छेद 334A इस आरक्षण के प्रभावी होने की प्रक्रिया बताता है। इसके अनुसार महिलाओं के लिए आरक्षण उस परिसीमन के बाद लागू होगा जो अधिनियम के प्रभावी होने के बाद पहली जनगणना के प्रकाशित आँकड़ों के आधार पर किया जाएगा। इसी अनुच्छेद में 15 वर्ष की अवधि और सीटों के rotation की व्यवस्था भी है। केंद्र सरकार ने 16 अप्रैल 2026 को अधिसूचना जारी कर इस अधिनियम को प्रभावी कर दिया। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्तमान लोकसभा या वर्तमान विधानसभाओं में महिला आरक्षण तत्काल लागू हो गया है। वास्तविक आरक्षण अभी जनगणना और परिसीमन की प्रक्रिया पर निर्भर है⁸।

जनगणना, परिसीमन और क्रियान्वयन का प्रश्न

नारी शक्ति वंदन अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण और विवादास्पद पक्ष इसका क्रियान्वयन है। अधिनियम के अनुसार महिला आरक्षण उस परिसीमन के बाद लागू होगा जो अधिनियम के लागू होने के बाद पहली जनगणना के आँकड़ों के प्रकाशन के आधार पर होगा। भारत सरकार ने जनगणना 2027 की प्रक्रिया अधिसूचित की है और 2027 की जनगणना की संदर्भ तिथि सामान्य क्षेत्रों के लिए 1 मार्च 2027 निर्धारित की गई थी; बाद की अधिसूचनाओं में कुछ राज्यों/क्षेत्रों के लिए अलग संदर्भ तिथियों का भी उल्लेख हुआ है। इस व्यवस्था का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि आरक्षण नए और अद्यतन जनसंख्या आँकड़ों तथा परिसीमित निर्वाचन क्षेत्रों के आधार पर लागू होगा। इससे प्रतिनिधित्व का गणित अधिक व्यवस्थित हो सकता है। परंतु आलोचकों का तर्क है कि जनगणना और परिसीमन से आरक्षण को जोड़ने के कारण इसका क्रियान्वयन तत्काल नहीं होगा और महिलाओं को प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। 2026 में सरकार ने महिला आरक्षण को शीघ्र लागू करने से संबंधित संवैधानिक और परिसीमन संबंधी विधायी प्रयास किए, किंतु राजनीतिक मतभेदों के कारण वह प्रयास अपेक्षित रूप से सफल नहीं हो सका। PIB ने अप्रैल 2026 में संसद की विशेष बैठक और नारी शक्ति वंदन अधिनियम के शीघ्र क्रियान्वयन से संबंधित सरकारी पहल का उल्लेख किया। इसलिए सितंबर 2026 की स्थिति में यह स्पष्ट है कि नारी शक्ति वंदन अधिनियम संवैधानिक रूप से प्रभावी हो चुका है, परन्तु सीटों पर वास्तविक आरक्षण जनगणना और परिसीमन के बाद ही कार्यान्वित होगा।

राजनीतिक सशक्तिकरण का नया दौर

नारी शक्ति वंदन अधिनियम को केवल सीट आरक्षण का कानून मानना इसकी व्यापक लोकतांत्रिक संभावना को सीमित कर देगा। यह अधिनियम भारतीय राजनीति की संरचना में महिलाओं के प्रवेश का नया मार्ग बनाता है। पंचायतों में महिलाओं के नेतृत्व ने जिस सामाजिक आधार को तैयार किया है, वही आधार संसद और विधानसभाओं में महिला प्रतिनिधित्व को मजबूत कर सकता है। इस अधिनियम से तीन प्रकार के परिवर्तन संभव हैं।

- पहला परिवर्तन **संख्यात्मक प्रतिनिधित्व** से जुड़ा है। यदि लोकसभा और विधानसभाओं में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी, तो महिलाओं की संख्या में ऐतिहासिक वृद्धि होगी। इससे विधायिका में महिलाओं की दृश्यता बढ़ेगी।⁹
- दूसरा परिवर्तन **सार्थक प्रतिनिधित्व** से जुड़ा है। जब महिलाएँ बड़ी संख्या में सदन में उपस्थित होंगी, तो वे स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण, लैंगिक हिंसा, श्रम अधिकार, मातृत्व सुविधाएँ, जल-संसाधन, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा और देखभाल अर्थव्यवस्था जैसे विषयों को अधिक संगठित रूप से उठा सकती हैं।

- तीसरा परिवर्तन **प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व** से जुड़ा है। जब लड़कियाँ और महिलाएँ संसद तथा विधानसभाओं में बड़ी संख्या में महिलाओं को देखेंगी, तो उनके भीतर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश की आकांक्षा बढ़ेगी।

लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व और लैंगिक न्याय

लोकतंत्र केवल बहुमत का शासन नहीं है; वह विविधताओं के न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी है। भारतीय समाज जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, क्षेत्र और लिंग जैसी विविधताओं से निर्मित है। यदि विधायिका में समाज की आधी आबादी की उपस्थिति न्यूनतम हो, तो लोकतंत्र की प्रतिनिधिकता अधूरी रह जाती है। महिला आरक्षण को इसीलिए केवल महिला-हित का प्रश्न नहीं, बल्कि लोकतंत्र की गुणवत्ता का प्रश्न माना जाना चाहिए। जब संसद और विधानसभाएँ अधिक प्रतिनिधिक होंगी, तो नीति-निर्माण का सामाजिक आधार भी व्यापक होगा। नारी शक्ति वंदन अधिनियम इस दृष्टि से लोकतंत्र को अधिक समावेशी बनाने का प्रयास है।¹⁰ यह इस बात को स्वीकार करता है कि औपचारिक समानता पर्याप्त नहीं है। संविधान में समानता का अधिकार होने के बावजूद यदि संरचनात्मक असमानताएँ महिलाओं को चुनावी राजनीति से बाहर रखती हैं, तो विशेष संवैधानिक उपाय आवश्यक हो जाते हैं।

अधिनियम की सीमाएँ और आलोचनात्मक प्रश्न

नारी शक्ति वंदन अधिनियम ऐतिहासिक महत्व का कानून है, किंतु इसके साथ कई सीमाएँ और प्रश्न भी जुड़े हैं।

- पहली सीमा इसके **विलंबित क्रियान्वयन** से संबंधित है। अधिनियम प्रभावी हो चुका है, लेकिन वास्तविक आरक्षण जनगणना और परिसीमन के बाद ही लागू होगा। इससे तत्काल राजनीतिक प्रतिनिधित्व का लक्ष्य पूरा नहीं होता।
- दूसरा प्रश्न **OBC महिलाओं के प्रतिनिधित्व** से जुड़ा है। अधिनियम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों में महिलाओं के उप-आरक्षण का प्रावधान करता है, किंतु अन्य पिछड़ा वर्ग की महिलाओं के लिए पृथक उप-आरक्षण नहीं है। यह प्रश्न संसद की बहस और सामाजिक न्याय के विमर्श में लगातार उठता रहा है। PRS ने भी विधेयक पर विचार करते हुए इस प्रकार की बहसों को महत्वपूर्ण बताया है।¹¹
- तीसरा प्रश्न **rotation system** से जुड़ा है। यदि आरक्षित सीटें प्रत्येक परिसीमन के बाद बदलती रहेंगी, तो प्रतिनिधियों के लिए दीर्घकालिक निर्वाचन-क्षेत्र संबंध बनाना कठिन हो सकता है। कुछ आलोचकों का मत है कि rotation से सांसद/विधायक अपने क्षेत्र में दीर्घकालिक निवेश कम कर सकते हैं।
- चौथा प्रश्न **proxy representation** का है। पंचायतों में कुछ स्थानों पर “सरपंच पति” या पुरुष परिवारजन के प्रभाव की आलोचना हुई है। हालांकि यह समस्या वास्तविक है, पर इसे महिला आरक्षण के विरुद्ध तर्क के रूप में नहीं, बल्कि महिला प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण, आर्थिक स्वायत्तता, कानूनी जागरूकता और प्रशासनिक क्षमता-वृद्धि की आवश्यकता के रूप में समझना चाहिए।
- पाँचवाँ प्रश्न **राजनीतिक दलों की जवाबदेही** का है।¹² यदि दल अपने संगठनात्मक ढाँचे, टिकट वितरण, चुनावी वित्त और नेतृत्व-प्रशिक्षण में महिलाओं को बराबर स्थान नहीं देंगे, तो केवल संवैधानिक आरक्षण पर्याप्त नहीं होगा। इसलिए दलों के भीतर लोकतंत्रीकरण महिला सशक्तिकरण का आवश्यक पक्ष है।

पंचायती अनुभव से सीख

पंचायतों का अनुभव बताता है कि आरक्षण प्रारंभ में भले ही औपचारिक लगे, समय के साथ वह नेतृत्व निर्माण का साधन बन सकता है। पहली पीढ़ी की निर्वाचित महिलाएँ कई बार सामाजिक और प्रशासनिक कठिनाइयों से जूझती हैं, लेकिन अगली पीढ़ी अधिक आत्मविश्वासी और सक्षम रूप में सामने आती है। भारत सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं की महिला प्रतिनिधियों के लिए “सशक्त पंचायत-नेत्री अभियान” जैसे क्षमता निर्माण कार्यक्रम आरंभ किए हैं। इसका उद्देश्य निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को नेतृत्व, प्रशासन, निर्णय-निर्माण और स्थानीय शासन में अधिक सक्षम बनाना है। यही मॉडल संसद और विधानसभाओं के लिए भी उपयोगी हो सकता है। महिला सांसदों और विधायकों के लिए संसदीय प्रशिक्षण, विधायी शोध-सहायता, डिजिटल संसाधन, संवैधानिक अध्ययन और नीति-निर्माण क्षमता-वृद्धि कार्यक्रम आवश्यक होंगे।

नारी शक्ति वंदन अधिनियम और सामाजिक परिवर्तन

महिला आरक्षण का वास्तविक प्रभाव केवल सदनों की संरचना में नहीं, समाज की कल्पना में भी दिखाई देगा। जब संसद और विधानसभाओं में महिलाएँ एक बड़ी संख्या में उपस्थित होंगी, तो राजनीति का पुरुष-केंद्रित स्वरूप धीरे-धीरे

बदलेगा। यह परिवर्तन परिवार, समाज और शिक्षा पर भी प्रभाव डालेगा। लड़कियों के लिए राजनीति एक असामान्य क्षेत्र नहीं रहेगी। माता-पिता भी बेटियों को सार्वजनिक जीवन और नेतृत्व की दिशा में प्रोत्साहित कर सकेंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज ने पहले ही इस परिवर्तन की शुरुआत की है। अब संसद और विधानसभाओं में आरक्षण इस प्रक्रिया को राष्ट्रीय स्तर पर विस्तारित कर सकता है।¹³ यह अधिनियम महिला नेतृत्व को “कल्याण की प्राप्तकर्ता” से “नीति की निर्माता” में बदलने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।¹⁴ इसका अर्थ है कि महिलाएँ केवल सरकारी योजनाओं की लाभार्थी नहीं रहेंगी, बल्कि वे उन योजनाओं की संरचना, बजट, निगरानी और मूल्यांकन में भी भाग लेंगी।

अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

विश्व स्तर पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व में महिलाओं की संख्या बढ़ाने के लिए कई देशों ने quota system अपनाया है। Inter-Parliamentary Union के अनुसार 2026 की शुरुआत में विश्व स्तर पर राष्ट्रीय संसदों में महिलाओं की औसत हिस्सेदारी लगभग 27.5 प्रतिशत थी। भारत की संसद में महिलाओं की हिस्सेदारी इस वैश्विक औसत से कम रही है। इसलिए नारी शक्ति वंदन अधिनियम भारत को वैश्विक लोकतांत्रिक मानकों की दिशा में आगे बढ़ाने वाला कदम भी है। हालांकि भारत का संदर्भ विशिष्ट है, क्योंकि यहाँ जाति, क्षेत्र, भाषा और संघीय संरचना जैसे प्रश्न महिला प्रतिनिधित्व की बहस को अधिक जटिल बनाते हैं।

शोध-विश्लेषण

इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया तीन चरणों में विकसित हुई है। पहला चरण **संवैधानिक समानता** का था, जिसमें महिलाओं को मताधिकार और नागरिक अधिकार मिले। दूसरा चरण **स्थानीय प्रतिनिधित्व** का था, जिसमें पंचायतों और नगर निकायों में आरक्षण ने महिलाओं को राजनीति के जमीनी स्तर से जोड़ा। तीसरा चरण **विधायी प्रतिनिधित्व** का है, जिसे नारी शक्ति वंदन अधिनियम आगे बढ़ाता है। इन तीनों चरणों को अलग-अलग नहीं देखा जाना चाहिए। पंचायतों में लाखों महिलाओं का अनुभव संसद और विधानसभाओं में भविष्य की महिला नेतृत्व-शक्ति का आधार बन सकता है। यदि राजनीतिक दल इस आधार को पहचानें और पंचायतों से उभरी महिलाओं को उच्च स्तर की राजनीति में अवसर दें, तो भारतीय लोकतंत्र में नेतृत्व का सामाजिक आधार व्यापक होगा।¹⁵

नारी शक्ति वंदन अधिनियम का प्रभाव तभी अधिक सार्थक होगा जब इसे केवल संवैधानिक संशोधन के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक-राजनीतिक परियोजना के रूप में लागू किया जाए। इसमें चुनावी वित्त सुधार, राजनीतिक दलों में आंतरिक आरक्षण, महिला सुरक्षा, सार्वजनिक जीवन में सम्मानजनक वातावरण, मीडिया में लैंगिक संवेदनशीलता और विधायी प्रशिक्षण शामिल होने चाहिए।

निष्कर्ष

नारी शक्ति वंदन अधिनियम भारतीय लोकतंत्र में महिला राजनीतिक सशक्तिकरण का ऐतिहासिक संवैधानिक पड़ाव है। यह अधिनियम उस लंबी यात्रा का परिणाम है जिसकी शुरुआत स्वतंत्र भारत में समान मताधिकार से हुई, जिसे पंचायती राज संस्थाओं ने जमीनी आधार दिया और जिसे अब संसद तथा विधानसभाओं तक ले जाने का प्रयास किया जा रहा है। पंचायती राज का अनुभव यह सिद्ध कर चुका है कि आरक्षण महिलाओं को केवल संख्या में नहीं बढ़ाता, बल्कि शासन, निर्णय-निर्माण और सामाजिक चेतना में उनकी भूमिका को भी विकसित करता है। लगभग 14.5 लाख महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों की उपस्थिति भारतीय लोकतंत्र की एक बड़ी उपलब्धि है। फिर भी संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी सीमित है। 18वीं लोकसभा में 74 महिला सांसदों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि बिना संरचनात्मक हस्तक्षेप के राजनीतिक दलों और चुनावी व्यवस्था से स्वतः लैंगिक समानता की अपेक्षा करना व्यावहारिक नहीं है।

नारी शक्ति वंदन अधिनियम इस कमी को दूर करने का संवैधानिक उपाय है। यद्यपि इसका वास्तविक क्रियान्वयन जनगणना और परिसीमन से जुड़ा है, फिर भी इसका वैचारिक और राजनीतिक महत्व अत्यंत व्यापक है। यह अधिनियम महिलाओं को नीति-निर्माण की केंद्रीय प्रक्रिया में स्थान देने की दिशा में ऐतिहासिक कदम है।

अंततः कहा जा सकता है कि “पंचायती राज से संसद तक” की यात्रा केवल राजनीतिक पदों की यात्रा नहीं है; यह भारतीय लोकतंत्र में स्त्री-अस्मिता, समानता, न्याय और नेतृत्व की यात्रा है। यदि इस अधिनियम को प्रभावी क्रियान्वयन,

राजनीतिक दलों की जवाबदेही, सामाजिक न्याय और क्षमता निर्माण से जोड़ा जाए, तो यह भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी और अधिक प्रतिनिधिक बना सकता है।

संदर्भ :-

- ¹ बीमन, एल., डुफ्लो, ई., पांडे, आर., और टोपालोवा, पी. (2012). महिला नेतृत्व लड़कियों की आकांक्षाओं और शिक्षा के स्तर को बढ़ाता है: भारत में एक नीतिगत प्रयोग. *साइंस*, 335(6068), पृ. 582-586.
- ² चट्टोपाध्याय, आर., और डुफ्लो, ई. (2004). नीति निर्माता के रूप में महिलाएं: भारत में एक रैंडमाइज्ड नीतिगत प्रयोग से प्रमाण. *इकोनोमेट्रिका*, 72(5), पृ. 1409-1443.
- ³ भारत सरकार. (2023). संविधान (एक सौ छठा संशोधन) अधिनियम, 2023. *भारत का राजपत्र*, विधि और न्याय मंत्रालय, पृ. 1-3.
- ⁴ भारत सरकार. (2026). *अधिसूचना S.O. 1922(E)*, 16 अप्रैल 2026 से संविधान (एक सौ छठा संशोधन) अधिनियम, 2023 का लागू होना, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत का राजपत्र, पृ. 1.
- ⁵ इंडियन कानून. (2023). संविधान (एक सौ छठा संशोधन) अधिनियम, 2023, अनुच्छेद 330A, 332A और 334A का पाठ, धाराएं 1-5.
- ⁶ मेनन, निवेदिता. (2000). मायावी 'महिला': नारीवाद और महिला आरक्षण विधेयक. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, 35(43), पृ. 3835-3844.
- ⁷ पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार. (2025). *पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों पर PIB विज्ञप्ति*, आधिकारिक डेटा अनुभाग.
- ⁸ पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार. (2026). *सशक्त पंचायत-नेत्री अभियान और निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों पर PIB विज्ञप्ति*, आधिकारिक कार्यक्रम विवरण.
- ⁹ रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त का कार्यालय, भारत. (2026). जनगणना 2027 के चरणों और संदर्भ तारीखों पर PIB की विज्ञप्ति, आधिकारिक अधिसूचना का सारांश.
- ¹⁰ भारत के रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त का कार्यालय. (2026). जनगणना 2027 की संदर्भ-तारीख वाली पिछली अधिसूचना को रद्द करने वाली राजपत्र अधिसूचना, आधिकारिक अधिसूचना का सारांश.
- ¹¹ राय, शिरीन एम., और शर्मा, कुमुद. (2000). भारतीय संसद का लोकतंत्रीकरण: 'महिलाओं के लिए आरक्षण' पर बहस. *जेंडर और लोकतंत्रीकरण पर अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में*, स्रोत सूची में बताए गए अध्याय के पृष्ठ.
- ¹² PRS लेजिस्लेटिव रिसर्च. (2023). महिला आरक्षण विधेयक 2023: संविधान (एक सौ अट्ठाईसवां संशोधन) विधेयक, 2023, विधेयक का सारांश, पृ. 1-2. PRS लेजिस्लेटिव रिसर्च. (2023). विचार करने योग्य मुद्दे: महिला आरक्षण विधेयक, 2023, पृ. 1-4.
- ¹³ राय, शिरीन एम. (1999). लोकतांत्रिक संस्थाएं, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और महिला सशक्तिकरण: भारत में कोटा पर बहस. *डेमोक्रेटाइजेशन*, 6(3), पृ. 84-99.
- ¹⁴ PRS लेजिस्लेटिव रिसर्च. (2024). *18वीं लोकसभा की प्रोफाइल*, महिला सांसदों पर अनुभाग, डेटा पृष्ठ.
- ¹⁵ इंटर-पार्लियामेंट्री यूनियन. (2026). *संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में धीमी वृद्धि*. IPU रिपोर्ट, वैश्विक डेटा अनुभाग.

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinha@muditeducation.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.0), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 8,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

- (a) title page with name(s) of the author(s), affiliation and Email
- (b) Abstract
- (c) Main text
- (d) List of references
- (e) Biographical statement(s)
- (f) Tables and figures in separate documents
- (g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Multilingual Journal (Kokila, Unicode Font Size 14). The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written

in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name and institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA or MLA format of reference.

11. Biographical statement

The bio sketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 1–2 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.



भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित तथा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी (24-25 फरवरी 2025) में प्रस्तुत शोध पत्रों का संकलन 'पदचिन्ह' पत्रिका के विशेषांक में प्रकाशित हुआ। इस विशेषांक का लोकार्पण संगोष्ठी के समापन सत्र में सम्पन्न हुआ।



महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी (अक्टूबर 2024) में प्रस्तुत शोध पत्रों का संकलन 'पदचिन्ह' पत्रिका में प्रकाशित हुआ, जिसका लोकार्पण संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में किया गया।



के. एल. ई. संस्था, कर्नाटक द्वारा 10 जुलाई 2024 को आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्रों का संकलन 'पदचिन्ह' पत्रिका के विशेषांक में प्रकाशित किया गया, जिसका लोकार्पण संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में सम्पन्न हुआ।

**पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी. 30/239, नगवां,
लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30,
विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित।
संपादक : अजय परमार | सह-संपादक : पंकज कुमार सिंह - 9823696685**